

कृषि-कोश

प्रथम खण्ड

('अ' से 'घ' तक)



सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा

कृषिकोश

[भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत जन-समाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान]

प्रथम खण्ड

['अ' से 'घ' तक]

सम्पादक

डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्रीश्रुतिदेवशास्त्री : श्रीराधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना - ८०० ००४

द्वितीय संस्करण : विक्रमाब्द २०५७, ई० सन् २००१

मूल्य : १२५.०० रुपये

मुद्रक : इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल
द्वारा तरुण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

द्वितीय संस्करण की भूमिका

किसी भी भाषा की जीवंतता उसके संवर्द्धनशील शब्दकोश की संपन्नता से निर्धारित होती है। इसके अनेक स्रोतों में सबसे प्रमुख स्रोत है आंचलिक शब्द-स्रोत।

यह सोचते हुए तकलीफ होती है कि शहरीकरण और प्रौद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में अपनी-अपनी बोलियों से, अपने-अपने लोकगीतों और संस्कार-गीतों से हमारी नयी पीढ़ी का संपर्क टूट रहा है।

इसका जो दुखद परिणाम है वह है : हिंदीभाषा में आंचलिक शब्दों का अवरुद्ध प्रवाह, गत्यवरोध और इनके प्रति दयनीय उदासीनता।

ऐसी स्थिति में **कृषिकोश**— जैसे शब्दशोधक ग्रंथ का महत्त्व असंदिग्ध रूप से बढ़ जाता है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने सामूहिक प्रयास और कठिन परिश्रम से कृषिकोश तैयार करवाया था। बिहार की क्षेत्रीय बोलियों में कृषि-संस्कृति में प्रचलित (और अब लगभग विस्मृत) शब्दों का प्रस्तुत कोश परिषद् के शोधकार्यों में उल्लेखनीय माना जाता है।

कृषिकोश के दो खंड क्रमशः प्रकाशित किये गये थे। प्रस्तुत प्रथम खंड में 'अ' से 'घ' तक के शब्द गृहीत हुए हैं। वर्णमाला के शेष शब्द द्वितीय खंड में समाहित हैं।

आशा है, ग्रामीण अंचलों में प्रचलित शब्दों के अर्थ और तत्संबंधी विमर्श की जब भी अपेक्षा होगी, प्रस्तुत कोश निश्चय ही उसमें सहायक होगा।

रामधारी सिंह दिवाकर
(निदेशक)

दीपोत्सव
विक्रम सं० २०५०
२६ अक्तूबर, २०००

कृषिकोश की आवश्यकता

भारत के अनेक भाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'घ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु-विशेष का बोध कराने वाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड भविष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके निर्माण और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'च' से 'न' तक के शब्द होंगे, सम्पादित हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी, कई शब्द ऐसे सुघड़-सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में जड़े जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के घन्घे की तरह दूसरे घन्घों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए तथाकथित आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की नैसर्गिक शोभा निखर उठेगी।

लोक-भाषाओं की शोभा

(अनुवाद)

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'घ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु-विशेष का बोध कराने वाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड भविष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके निर्माण और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'च' से 'न' तक के शब्द होंगे, सम्पादित हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी, कई शब्द ऐसे सुघड़-सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में जड़े जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के घन्घे की तरह दूसरे घन्घों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए तथाकथित आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की नैसर्गिक शोभा निखर उठेगी।

लोक-भाषाओं का जो साहित्य लोक-कण्ठों में बसा हुआ है, उसका उद्धार और प्रचार भी धीरे-धीरे हो रहा है। पारखियों का ध्यान उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि की ओर तेजी से जा रहा है। साहित्यानुरागी पाठक भी लोक-साहित्य के गुणग्राही होते जा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

विश्वविद्यालयों के साथ-साथ आकाशवाणी-केन्द्रों में भी लोक-भाषाओं को आदर मिल रहा है। साहित्य-संसार के विद्वान अनुसन्धायक उनपर शोध, विचार-विमर्श, आलोचन-विवेचन तथा ग्रन्थ-लेखन-कार्य बढ़ी लगन से करने लगे हैं। सभा-सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी महत्ता प्रकट हो रही है।

किन्तु, लोक-भाषाओं का महत्व वहीं तक मान्य होना चाहिए, जहाँ तक वे जनसम्पर्क बढ़ाने, भारत की मौलिक लोक-संस्कृति की सुरक्षा, लोक-कलाओं के विकास और साहित्य की समृद्धिशाली बनाने में सहायक हों। पर यदि राजनीतिक स्वार्थ साधने के उद्देश्य से उनके प्रति अवांछनीय आग्रह दिखाया जायगा, तो देश के खण्ड-खण्ड हो जाने की आशंका है। भाषाधार-प्रान्त-निर्माण का दुष्परिणाम प्रकट हो चुका है। पुनः लोक-भाषाओं के आधार पर टुकड़ों में बँटनेवाले देश की कल्पना अतिशय भयावह है।

यह बात जानकार विद्वानों को मालूम है कि अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के एक चिरस्मरणीय सभापति ने डॉक्टर प्रियर्सन को पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि आपने भारत में तो २४४ भाषाएँ खोज निकालीं, पर यह बताइए कि आपके योरोप और ब्रिटेन में कितनी भाषाएँ हैं। इस जिज्ञासा को डॉक्टर प्रियर्सन ने केवल खेद-प्रकाश द्वारा ही शान्त किया था। तब निष्कर्ष यह निकाला गया कि उन्हें अपने देश में बन्दर-बाँट-नीति बरतना अभीष्ट नहीं था। किन्तु भारत में भाषाओं और धार्मिक सम्प्रदायों अथवा मतमतान्तरों का संख्या-बाहुल्य सारे संसार को दिखाने में चाहे उनका जो भी उद्देश्य निहित रहा हो, यह तो मानना ही पड़ता है कि अँगरेजी लिखे-पढ़े भारतवासियों में लोकभाषाओं के अध्ययन-अनुशीलन का अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय योरोप के कतिपय विद्वानों को ही है, जिसके लिए उपर्युक्त भारतवासी आज भी उनका सादर स्मरण करते हैं।

भारत-संघ के सभी राज्यों में लोक-भाषाएँ हैं। सबके बिखरे साहित्य का संग्रह और अध्ययन होना चाहिए। इससे प्रान्तीय राजभाषाएँ तुष्ट-मुष्ट होंगी और आदान-प्रदान के चक्र-प्रवर्तनानुसार उनसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भी रस-सञ्चय करके लाभान्वित होगी। यहाँ एक बात और भी विद्वानों के लिए विचारणीय है। प्रान्तीय स्वतंत्रता के संरक्षण की दृष्टि से संविधान-स्वीकृत राजभाषाओं को शिक्षा अथवा राजकाज का माध्यम बनाना समीचीन समझा जा सकता है, पर मातृभाषा की परिभाषा को अतीव संकीर्ण करके लोक-भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में करना राष्ट्र की संघ-शक्ति को छिन्न-भिन्न कर डालने के समान है। राष्ट्रीय एकता को अखण्ड रखने के विचार से सावधान रहते हुए लोक-भाषाओं को उचित उत्तेजन अवश्य मिलना चाहिए।

अस्तु; इस कोश के प्रस्तुत प्रथम खण्ड के सुयोग्य सम्पादक डॉक्टर विश्वनाथप्रसाद सारन-जिले के छपरा-नगर-निवासी और हिन्दी-संसार के भाषाविज्ञान-शास्त्रियों में परम प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के साहित्याचार्य और हिन्दी के साहित्यरत्न, संस्कृत और हिन्दी के एम्. ए. तथा बी. एल्. हैं। लन्दन-विश्वविद्यालय से आपने पी-एच्. डी. की उपाधि पाई है। सन् १९५५-५६ ई. में आप डेकन-कॉलेज (पूना) के पोस्ट गैजुएट ऐण्ड रिसर्च इंस्टिट्यूट (राकफेलर फाउण्डेशन, यू. एस्. ए.) में लिग्विस्टिक्स के प्रथम विजिटिङ्ग प्रोफेसर थे। आप पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं, पर इस समय अवकाश लेकर आगरा-विश्वविद्यालय में के. एम्. मुन्शी इंस्टिट्यूट ऑफ हिन्दी स्टडीज ऐण्ड लिग्विस्टिक्स के डाइरेक्टर पद पर आसीन तथा उसके त्रैमासिक मुखपत्र 'भारतीय

साहित्य' के प्रधान सम्पादक भी हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'भोजपुरी कवि और काव्य' नामक पुस्तक गत वर्ष परिषद् से ही प्रकाशित हो चुकी है। जब आप परिषद् के लोक-भाषा अनुसन्धान-विभाग के अध्यक्ष थे, तब आपके ही तत्त्वावधान में मगही-संस्कार-गीतों का एक सटीक संग्रह-ग्रन्थ तैयार हुआ था। आपके द्वारा सम्पादित उस ग्रन्थ का प्रकाशन निकट भविष्य में ही होनेवाला है। आपको इस कोश के सम्पादन-कार्य में अपने जिन अनुसन्धान-सहायकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी योग्यता आदि के विषय में आप स्वयं लिख चुके हैं। उनमें श्रीश्रुतिदेव शास्त्री भागलपुर-जिले और श्रीराधावल्लभ शर्मा धम्मरान-जिले के निवासी हैं।

आशा है कि यह कोश लोकभाषाओं के गुणजों को प्रचुर प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करेगा। साथ ही, हमें यह भी आशा है कि साहित्य के अम्युदय की आकांक्षा रखनेवाले सुधी सज्जन इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों से हमें अवगत कराके अपनी स्वाभाविक सहृदयता का परिचय देने की कृपा करेंगे।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८८१

सन् १९५९ ई०

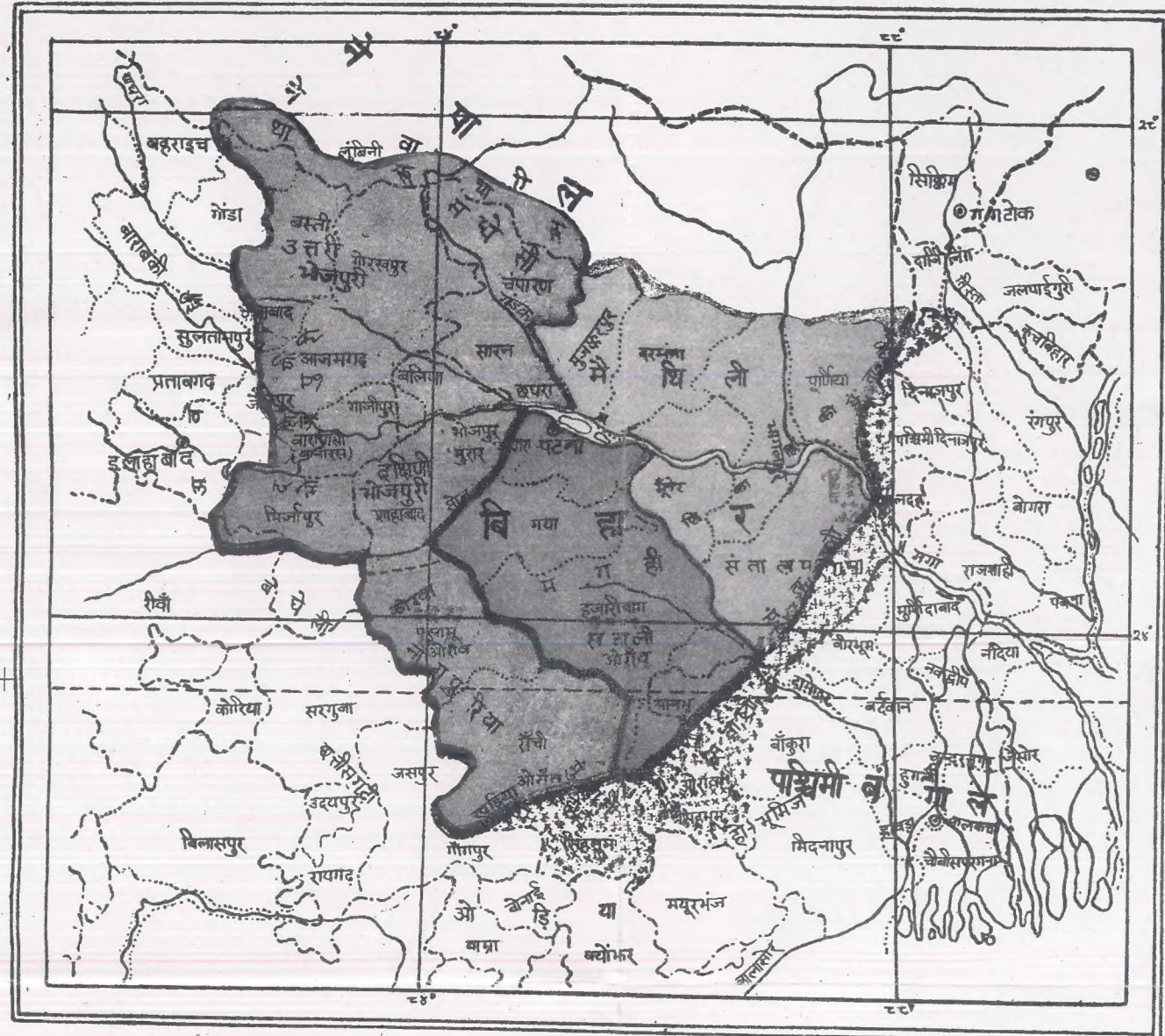
शिवपूजनसहाय

(संचालक)

बिहार की अन्य बोलियों के साथ-साथ भोजपुरी के क्षेत्र, सीमा तथा उसके निविध भेदों का

मानचित्र

माप - एक इंच = ७० मील



निवेदन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के जन्म के तीन-चार साल पहले ही मेरे मन में यह विचार उठा था कि इस प्रकार का एक प्रामाणिक पारिभाषिक कोश तैयार हो, जिसमें जन-समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के सजीव शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से संग्रह हो; क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली के अभाव को केवल अँगरेजी के उच्चार या अनुवाद से नहीं भरा जा सकता, वरन् यह दारिद्र्य तो दूर हो सकता है—हमारी अपनी ही चिरसंचित शब्द-संपत्ति से, जो हमारी जनपदीय बोलियों में खोई-खोई-सी पड़ी हुई है। उसका उद्धार करके उसमें नई प्राण-शक्ति भरी जा सकती है, जिसे वह एक विस्तीर्ण धरातल पर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। उस समय उस विचार को क्रियान्वित करने के लिए मैंने जो एक छोटी-सी योजना बनाई थी, उसमें मुझे विशेष प्रेरणा दो हितचिन्तकों से मिली थी—एक तो पूज्यचरण आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा से और दूसरे स्वर्गीय श्रीरामधारी प्रसाद से। इनके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे पुनः प्रवृत्त करने में बिहार के चिरस्मरणीय शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस्० का, जो इस समय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल हैं, विशेष हाथ था। आप सबके प्रति परम भद्रापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जब से मैंने यह कार्य प्रारंभ किया, तब से मेरी प्रेरणा के स्रोतों में प्रमुख स्थान रहा है, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के सुयोग्य संचालक श्रीशिवपूजनसहायजी का। उनका विशेष सहयोग और साहाय्य न मिला होता, तो इसमें पग-पग करके आगे बढ़ना और आज इस स्थिति में पहुँचना कि इसका प्रकाशन हो सके, मेरे लिए कदापि संभव न होता। इसके संपादन में मुझे अपने आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुबांशु' और श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' से भी पर्याप्त बल और सहायताएँ मिलती रही हैं। उनके सुझावों से हमने बहुत लाभ उठाया है। इनके अतिरिक्त परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष अद्वेय कुमार गंगानंद सिंह, भीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामचन्द्र बेनीपुरी, विद्वद्वर श्रीराहुल सांकृत्यायन, डॉ० कामिल बुल्के, पं० छविनाथ पाण्डेय प्रभृति महानुभावों से हमें जो बहुमूल्य प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त होता रहा है, उसके लिए आप सबके प्रति सादर आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

परिषद् के प्रकाशन-विभाग का भी जो सक्रिय सहयोग हमें मिलता रहा है, उसके लिए श्रीअनूपलाल मण्डल और श्रीहवलदार जिपाठी 'सहृदय' को मेरे हार्दिक धन्यवाद हैं।

परन्तु उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, जो मेरे दायें-बायें हाथ की तरह प्रारंभ से अबतक अनवरत मेरे साथ इस काम में लगे रहे हैं। क्या उनके बिना यह कार्य इस रूप में संभव हो सकता था ! मैं यहाँ अपने कार्य के अभिन्न अंग श्रीश्रुतिदेवशास्त्री (पालि-साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरण शास्त्री, प्रभाकर, पूना स्कूल ऑफ लिक्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित तथा श्री राधावल्लभशर्मा साहित्यालंकार, पूना स्कूल ऑफ लिक्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित का उल्लेख कर रहा हूँ। कितनी लगन से आप दोनों ने मेरे साथ इस कार्य को आरंभ किया था ! मेरे स्नातकोत्तर कक्षा के अन्य छात्रों तथा अनुसंधित विद्यार्थियों की ही तरह सदा मेरे साथ कोश-विज्ञान के इस नये विषय के अध्ययन तथा ज्ञानार्जन में तत्पर, सदा इस लोक-विद्या के अश्ववसाय में निरत, सदा मेरे निर्देशों के यथावत् पालन में तन्मय भाव से लीन आप दोनों की प्रशंसनीय प्रगति का पता मुझसे अधिक और किसको होगा ! इस कार्य में श्रुतिदेवजी का विशेष क्षेत्र था—व्युत्पत्ति निर्वचन और राधावल्लभजी का क्षेत्रीय संग्रह का परीक्षण। हमें अभी कृषि-कोश के दूसरे और तीसरे खंडों को भी, जो प्रायः समाप्तप्राय हैं, अविलम्ब प्रकाशित करना है। आप दोनों की दक्षता और कार्य-तत्परता का हमें पूरा भरोसा है और आशा है कि आप सफलता के साथ इस कार्य के संपादन में दत्तचित्त रहेंगे।

इस कोश-कार्य में अपने सभी सहायकों का उल्लेख करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ :—

सहायक

अनुसन्धान और सम्पादन

१. श्रीश्रुतिदेव शास्त्री

२. श्रीराधावल्लभ शर्मा

३. श्रीविक्रमादित्य मिश्र

संग्रह

१. श्रीगणेश चौबे—आप चंपारन जिले के निवासी हैं। आप लोक-साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं और 'इंडियन फोकलोर' (कलकत्ता) के संपादक-मण्डल में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि भी हैं। आप बहुत दिनों से बिहारी लोक-साहित्य पर कार्य कर रहे हैं। इस कार्य में हमें आपसे सभी तरह की बहुमूल्य सहायता मिली है। लोक-साहित्य के संग्रह आदि में आप सदा सहर्ष सहायता देने को प्रस्तुत रहते हैं।

२. श्रीश्रीकांत शास्त्री—एकंगरसराय (पूर्वी पटना) के रहनेवाले विद्वान् हैं और सदा जागरूक रहकर मगही-साहित्य के उत्थान में तत्पर रहते हैं। आपने लोक-भाषा और लोक-साहित्य के विविध अंगों का संग्रह करके परिषद् को दिया है और हमारी सहायता की है। आप सदा हमारा हाथ बँटाते रहे हैं।

३. श्रीसुरेश्वर पाठक—आप दक्षिणी मुँगेर के निवासी हैं और आजकल यहीं पटना में वयस्क-शिक्षा-विभाग में अधिकारी हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने दक्षिणी मुँगेर के शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह करके परिषद् को दिया है। आप से हमें बराबर उचित सहायता मिलती रही है।

आप तीनों हमारे विशिष्ट सहायक हैं। इनके अतिरिक्त उपयुक्त सभी व्यक्तियों ने हमें यथासमय पूर्ण सहयोग दिया है। हम आप सबके आभारी हैं। इनमें से श्रीविद्यानन्द सिंह, श्रीहरिप्रकाश, श्रीकृष्णदेव, श्रीविक्रमादित्य मिश्र एम० ए०, श्रीपंचानन चौधरी, आशिवकुमार वर्मा, श्रीराजेश्वर प्रसाद ने अपने-अपने क्षेत्रों से शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह कर प्रदान किया है और इस प्रकार हमें बहुत सहायता दी है।

श्रीरामाधार शर्मा, श्रीरामस्वरूप चौधरी, श्रीवाल्मीकि प्रसाद सिंह एम० ए०, श्रीमुसाई झा आदि ने शब्दों की जाँच-पड़ताल में यथासमय यथा-स्थान उपस्थित होकर हमें यथोचित सहयोग दिया है और अपने-अपने क्षेत्र के तत्तत् पर्यायों को समझने-बूझने में तथा निरीक्षण-परीक्षण में हमारी सहायता की है।

संग्रह-कार्य के प्रथम वर्ष में परिषद् द्वारा नियुक्त जो चार क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता वैतमिक रूप में संग्रह-कार्य करते थे, उनका विवरण निम्नांकित है—

श्रीजयानन्द झा—ये दक्षिणी पूर्णियाँ के निवासी हैं। इन्होंने दरभंगा जिले के मधुबनी, सदर सबविजिन और द० पूर्णिया से शब्द संग्रहीत करके दिये थे। कोश में इनके कार्य-क्षेत्र का संकेत-चिह्न दर०-१, पूर्ण०-१ है।

श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण—ये छपरा नगर के निवासी हैं। इन्होंने सारन जिले भर में घूम-घूमकर शब्दों का संग्रह करके दिया था। कोश में इनका संकेत सा०-१ है।

श्रीहृदयनारायण मंडल—ये संतालपरगने के रहनेवाले हैं। इन्होंने संतालपरगने की संताली भाषा के शब्द-संग्रह करके दिये थे। किन्तु इनके शब्दों का उपयोग संताली-कोश के लिए होगा, इसलिए इस कोश में इनका उल्लेख नहीं है।

श्रीजावालिदेव—ये पटना सिटी के निवासी हैं। इन्होंने बहुत थोड़े दिनोंतक कार्य किया। आप पारिभाषिक शब्दों के बजाय सामान्य शब्दों का ही थोड़ा संग्रह कर सके थे। इसलिए इनके शब्दों का भी उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है।

आप सभी सहयोगियों का हम आभार स्वीकार करते हैं।

बिहार के विभिन्न भागों के निवासी जिन भाइयों और बहनों के मुँह से इस कोश

के शब्द संगृहीत किये गये हैं, उनकी सूची देने में तो कई पृष्ठ लग जायेंगे, परन्तु इस प्रसंग में उनको भी कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते।

कोश-कार्य व्यावहारिक भाषाविज्ञान का एक जटिल विषय है; बहुत ही भ्रमसाध्य, समयसाध्य और व्ययसाध्य। अंगरेजी, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के कोश-ग्रंथों के संपादन और संग्रह का इतिहास बतलाता है कि कोश-जैसे महत्वपूर्ण आकर-ग्रंथों के सम्यक् संपादन के लिए पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता होती है। अंगरेजी की 'वेबस्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के प्रथम संस्करण के प्रकाशन में पूरे १०२ वर्षों का समय लगा था। १८०७ ई० में नोआ वेबस्टर ने इसका कार्यारंभ किया था और २१ वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने जॉनसन की डिक्शनरी से केवल १२,००० शब्द और बढ़ाकर उसके मूल रूप को १८२८ ई० में पूरा और प्रकाशित किया। इसके बाद क्रमशः परिवर्द्धन प्राप्त करता हुआ वह अपने बृहत् रूप में आया। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की योजना का श्रीगणेश 'फिलालॉजिकल सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' की ओर से १८५७ ई० में हुआ और उसका कार्य ७६ वर्षों के बाद सन् १९३३ ई० में समाप्त हुआ। इस बीच में उसके एक सम्पादक के जीवन-काल के बाद दूसरे ने और दूसरे के जीवन-काल के बाद तीसरे ने इस कार्य के दायित्व को संभाला। इन्हीं तीसरे और उनके साथ एक चौथे सम्पादक के कार्य-काल में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। कई वर्षों तक उसके संपादन के लिए चार सम्पादक नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त उनके कई सहायक सम्पादक थे, जो पचास वर्षों से भी अधिक काल तक इस कार्य में लगे रहे। प्रारंभ में संग्रह के लिए १०० संग्रहकर्ता नियुक्त थे, जो अंगरेजी साहित्य के विविध क्षेत्रों से शब्दों, मुहावरों आदि का संग्रह करते थे और इनके अतिरिक्त ८०० ऐसे पाठक थे, जो स्वयं-सेवा-भाव से साहित्य के विभिन्न अंगों के ग्रंथों को पढ़कर उनमें से उपयुक्त सामग्री का संकलन करके सोसाइटी के पास भेजा करते थे। तब कहीं अंगरेजी का ऐसा प्रामाणिक कोश तैयार हो सका।

अपने देश में भी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से हिन्दी शब्द-सागर लगातार एक दशक तक कार्य होते रहने के पश्चात् ही खंडशः प्रकाशित होने लगा था और इसके बाद भी लगभग बीस वर्षों में (१९१० से १९२९ तक) उसका संपादन और प्रकाशन पूरा हुआ।

पूना में संस्कृत-कोश के संग्रह-संपादन का कार्य सन् १९४८ ई० में प्रारंभ हुआ। इस समय इस कार्य में लगभग पचास सुयोग्य कार्यकर्ता लगे हुए हैं। कोश-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री वहाँ सुलभ है, लगभग एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उसपर खर्च किया जा रहा है। पर यह सब होते हुए भी अभी तक उसका कोई खंड प्रकाशित नहीं हो सका है।

कोश के कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक योजनानुसार सभी उपलब्ध शब्दों का संग्रह न हो जाय और फिर सभी अपेक्षित दृष्टियों से उनके यथावत्

अध्ययन और विश्लेषण का कार्य पूरा न हो जाय, तबतक प्रकाशन प्रारंभ करने का खयाल नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि एक ओर संग्रह और अध्ययन-अनुसंधान का कार्य भी चलता रहे और दूसरी ओर वर्णानुक्रम या किसी और ही क्रम से एक-एक अंश का प्रकाशन भी होता रहे। अतएव, किसी संहत कोश के प्रकाशन में विलंब होना अपरिहार्य है।

ऊपर जिन दो-एक उदाहरणीय कोशों का उल्लेख किया गया है, उन सबका आधार लिखित और उपलब्ध साहित्य है, जब कि हमारा यह कृषि-कोश अलिखित और दुरुपलब्ध सामग्री पर आधारित है। कोशविज्ञान की नई पद्धति के अनुसार ठेठ ग्रामीण समाज के शब्दों को इकट्ठा करके उन्हें ध्वनि, अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से विविध प्रकार से जाँचकर हमें संकलन करना पड़ा है। शहर से दूर, गाँवों के भिन्न-भिन्न पेशों में लगे हुए कामकाजी स्त्री-पुरुषों के काम-धाम के स्थलों पर स्वयं जाकर या अपने प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को भेजकर उनसे नियमानुसार पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल करके उनके कार्यकलाप-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, अर्थ-निर्धारण तथा प्रयोगादि की जानकारी हासिल करनी पड़ी है।

इसका प्रत्येक शब्द विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले विभिन्न वृत्तियों के लोगों के मुँह से प्राप्त किया गया है। यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके भुक्तभोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति ही बिरले मिलते हैं जो प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। पेशे के काम-धाम में लगे हुए श्रमजीवी व्यक्ति को इतनी फुरसत भी कहाँ कि वह सब-कुछ छोड़कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे। कोई उमंगी किसी प्रकार यदि पकड़ में आया भी, तो फिर उससे अंड-वंड उत्तर मिलते हैं। उपयुक्त सामग्री देनेवाले उपयुक्त व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिल पाते हैं। फिर सर्वदा यह भी संभव नहीं कि उनसे बातें करते समय ही उत्तर लिखते चलें। प्रायः ऐसा होता है कि उत्तरों को कठिनाता-पूर्वक स्मृति में ही संचित करके कुछ समय के उपरान्त लिखना पड़ता है। इस कारण इसमें विशेष सावधानी की अपेक्षा होती है। अपनी संगृहीत सामग्री को प्रकाशित करने के पहले हमने यह आवश्यक नियम कर रखा था कि उन बोलियों के बोलनेवाले तथा तत्तत् भाषा-क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप तथा भरोसे के व्यक्तियों से विशेष रूप से पूछ-ताछ करके उसका पुनः परीक्षण कर लिया जाय। इस प्रकार इस कोश के प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता की यथासंभव जाँच कर ली गई है। इस कोश का प्रत्येक शब्द हमारी जागरूक ममता और देख-भाल का पात्र बनकर ही इस आगार में प्रवेश पा सका है।

बड़े हौसले के साथ हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए। परन्तु हमें अत्यन्त सीमित साधनों, दो-चार संग्राहक कार्यकर्ताओं, लोक-भाषा और लोकसाहित्य के कुछ इने-गिने अनुसंधानियों और बस दो अनुसंधान-सहायकों की सहायता से ही, अन्यान्य कार्यों के साथ-साथ, इतनी स्वल्प अवधि में, इस कोश का पहला खंड निकालना पड़ रहा है। इसे

भी हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि यह काठेन कार्य किसी तरह इस विषय में बचि रखनेवाले महानुभावों के समक्ष प्रकाश में तो आ सका।

संभव है कि कार्य की शीघ्रता अथवा अल्पज्ञता के कारण इस संग्रह में कुछ ऐसे शब्द न आ सके हों, जिनकी जानकारी अन्य सज्जनों को हो। कोई भी कोशकार आखिर अतिमानव तो है नहीं कि सर्वज्ञता का दावा कर सके। कोश-कार्य में त्रुटियों की पर्याप्त संभावना रहती है, जिनका पता तो प्रकाशन के बाद ही चलता है और जिनके निर्देश कोशकार को कुछ तो उदारतापूर्वक मिलते हैं और कुछ तीखे आक्षेपों के साथ। दोनों से ही कृतज्ञ भाव से आगे के लिए शिक्षा-ग्रहण करने को मैं सविनय आग्रह रहूँगा।

वस्तुतः एक ओर कोश-कार्य की कष्टसाध्यता, विशालता तथा अपने बढ़े-चढ़े होसलों को और दूसरी ओर अपनी सीमित शक्तियों तथा साधनों को देखकर हमें कहना पड़ता है—

‘तितीषुर्दुस्तरमोहादुडुपेनास्मि सागरम्।’

विश्वनाथ प्रसाद
संपादक

मंगलवार, मार्गशीर्ष, शुक्ल-६ (स्कन्दपक्षी) सं० २०१५ वि०,
क० सं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ
आगरा-विश्वविद्यालय
आगरा

प्रस्तावना

बिहार-प्रदेश की विविध लोकभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए आरम्भ से ही उसके अन्तर्गत ‘लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग’ मेरे निर्देशन-निरीक्षण में कार्य करता आ रहा है। हमने बिहार की लोकभाषाओं और लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए एक योजना बनाई, जिसके अनुसार लोकभाषा और साहित्य-संबंधी सामग्रियों का संग्रह किया जा सके। तदनुसार गाँवों में बिखरी अलिखित सामग्रियों, लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, पहेलियों, मुहावरों और शब्दों का संकलन प्रशिक्षित वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा कराया जाने लगा। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के गाँवों में जाकर तत्तत्-विषयों के विशेषज्ञों और तत्तद् व्यवसायों के व्यावसायिकों से मिलकर गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि और किसान, बटुई, कुम्हार आदि व्यावसायिकों से उन-उन विषयों के शब्दों का संग्रह करते और कार्यालय को भेजते थे और यहाँ दो प्रशिक्षित अनुसंधायक उनका निरीक्षण-परीक्षण करके उनकी उपयोगिता और औचित्य को जाँचकर उन्हें संग्रहीत करते थे। किन्तु यह प्रणाली एक वर्ष तक ही चली; क्योंकि उन संग्राहक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया कार्य संतोषजनक नहीं प्रमाणित हुआ। अतः वैज्ञानिक कार्य का सिलसिला उठा दिया गया और उसके स्थान में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य के उत्साही कार्यकर्त्ताओं के द्वारा पारिश्रमिक के आधार पर सामग्रियों का संकलन कराया जाने लगा। इसके लिए हमारे विशेष रूप से तैयार किए हुए निर्देशपत्र के अनुसार बिहार की मैथिली, मगही, भोजपुरी और संताली की सामग्रियाँ एकत्र की जाने लगीं। अबतक इन भाषा-क्षेत्रों की प्रचुर सामग्री संग्रहीत हो चुकी है। सरकारी तौर पर इस प्रकार का यह पहला कार्य था, जिसे बिहार-राज्य सरकार ने प्रारम्भ किया और बाद में यह दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय हो गया। दो-तीन वर्षों में कुछ सामग्रियों के संग्रह हो जाने के बाद सबसे पहले दो कार्य शुरू किये गये—पहला ‘मगही संस्कार-गीतों’ का संपादन और दूसरा ‘कृषिकोश’ का। ‘मगही संस्कारगीत संग्रह’ में, विविध संस्कारों के समय गाये जानेवाले मगही-क्षेत्र के लोक-गीतों का संग्रह किया गया है। इस संग्रह में मगही लोक-गीतों का मूलरूप, उनका अर्थ, यथास्थान टिप्पणी, परिशिष्ट आदि देकर एक विस्तृत भूमिका के साथ संपादन किया गया है, जो निकट भविष्य में मुद्रित होनेवाला है।

दूसरा कार्य, जो इस विभाग ने किया है, वह इसी 'कृषिकोश' का संपादन है। यद्यपि बिहार-राज्य के मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के गाँवों में निवास करनेवाले किसान, बट्टई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार आदि सभी प्रकार के व्यावसायिकों के व्यवसायों से सम्बद्ध ग्रामीण पारिभाषिक शब्दों का संग्रह इस विभाग में कराया जाता रहा है और यद्यपि पहले विचार था कि सभी ग्रामीण व्यवसायों के पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् संहत कोश एक ही साथ संपादित करके प्रकाशित किया जाय तथापि उसके लिए और अधिक सामग्री, साधन एवं समय की अपेक्षा का विचार करके उस स्तर पर उसका कार्य तत्काल स्थगित कर दिया गया और ग्राम-समाज की रीढ़ किसानों के द्वारा व्यवहृत खेती के शब्दों का ही कोश पहले निकालने का निश्चय हुआ। तःनुसार खेती के शब्दों का अलग संग्रह करके उनका संपादन किया गया। फलस्वरूप, 'कृषिकोश' का यह पहला खंड आज प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'अ' से लेकर 'घ' तक के शब्द हैं।

इस कोश में कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'कृषि' शब्द हल जोतने के अतिरिक्त खेती करनेवाले किसान तथा खेती के पशु, औजार, प्रणाली, विविध क्रिया-कलाप आदि सबका बोधक है। वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कृषि' के स्थान में अष्टाध्यायी में 'कृषीबल' शब्द आया है। वैदिक काल से ही कृषि हमारे देश का प्रधान व्यवसाय रहा है और इसका जैसा विकास हमारे यहाँ हुआ था, वैसा अन्यत्र नहीं। ग्रीस के लोग भी यहाँ की उपजाऊ धरती और कृषि-कौशल से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः शतान्दियों के परम्परागत विकास के प्रभाव से हमारी कृषि-संबंधी शब्दावली बहुत समृद्ध है।

इस कोश के संगृहीत शब्द बिहार-राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषक-जनसमुदाय में सैकड़ों वर्षों से व्यवहृत होते आ रहे हैं और आज भी जीवित तथा जीवन्त हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरों और अन्य श्रमजीवियों की बोलचाल की भाषा में भी समाज-शास्त्र, शिल्पशास्त्र अथवा उद्योग-धंधे संबंधी बहुतेरे बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलते हैं, जो राष्ट्रभाषा की समृद्धि के समर्थ प्रेरक हो सकते हैं। मित्र-भिन्न व्यावसायिक मंडलियों तथा श्रमजीवियों के समाज में प्रचलित बहुत-से ऐसे नये पुराने शब्द भी मिलेंगे, जिनके पर्यायवाची शब्द साहित्यिक हिन्दी या अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी दुर्लभ होंगे। राष्ट्रभाषा का भांडार भरने के लिए तथा विविध कला-कौशल और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें अपनी इन चिर उपेक्षित अमूल्य निधियों का संचय करना परम आवश्यक है।

बिहार के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न पेशेवालों की मंडली में प्रचलित ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रथम संग्रह प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ॰ ग्रियर्सन ने किया था, जो 'बिहार पीजेंट लाइफ' के नाम से १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह

संग्रह संक्षिप्त था और कुछ और ही अभिप्राय से किया गया था। इससे हमारा उक्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के आधुनिक प्रभावों के कारण समाज के भिन्न स्तरों के लोक-व्यवहार, आचार-विचार, रहन-सहन, रश्म रिवाजों के परिवर्तनों के साथ-ही साथ उनके शब्द-भांडार में भी निरन्तर परिवर्तन होते जा रहे हैं। पुराने शब्दों के स्थान में उन्हीं के आधार पर या उनसे भिन्न रोजमर्रे के नये शब्द बनते जा रहे हैं। इसलिए बिहार और बिहार के बाहर हिन्दी-भाषी तथा हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी नये सिरे से और वैज्ञानिक ढंग से ऐसे शब्दों का सर्वेक्षण और संग्रह कराना आवश्यक है। अन्यथा केवल अँगरेजी शब्दों की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हमें अपनी लोक-भाषा के करोड़ों अर्थपूर्ण उपयोगी और जीवंत पारिभाषिक शब्दों से वंचित होना पड़ेगा और इससे राष्ट्रभाषा की बहुत बड़ी क्षति होगी। इस प्रकार तो 'गिलावा', 'सुरखी' और 'बँडेड़ी' जैसे रोजमर्रे के शब्द भी हमारे पारिभाषिक कोश में स्थान नहीं पा सकेंगे; क्योंकि अँगरेजी में कोई एक पारिभाषिक शब्द ऐसा नहीं है, जो ठीक-ठीक इनका पर्यायवाची हो और जिसके अनुवाद के लिए इनकी अपेक्षा हो। 'गिलावा' के लिए अँगरेजी में एक नहीं, अनेक शब्दों की आवश्यकता होगी। ग्रियर्सन ने 'गिलावा' के लिए Moistend clay used as mortar, 'सुरखी' के लिए Thepounded bricks used as a substitute for sand और "बँडेड़ी" के लिए Ridge pole का व्यवहार किया है। सर्वेक्षण के द्वारा लोक-भाषा के ऐसे शब्दों का संग्रह कर लेने के बाद उन्हें हम स्वतंत्र रूप से अपने पारिभाषिक शब्द-कोश का अंग बना सकते हैं।

इस दृष्टि से बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के जनसमुदाय में व्यवहृत होनेवाले विभिन्न प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद के लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग द्वारा कराया गया। अब तक बिहार की मैथिली, भागलपुरी, मगही, भोजपुरी और संताली भाषाओं के ५४२७७ पारिभाषिक शब्द संगृहीत हो चुके हैं। ये सभी शब्द गाँवों में बसनेवाले विविध व्यवसायियों, शिल्प-जीवियों और किसानों के मुख से संगृहीत हुए हैं। किंतु जैसा कि ऊपर निवेदित किया जा चुका है, प्रस्तुत कृषिकोश में केवल कृषि से संबंधित शब्द ही लिये गये हैं।

जनपदीय शब्दावली का कार्य—हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हो सका है। अँगरेजी ने इस क्षेत्र में जो थोड़ा कार्य किया था; उसका मुख्य उद्देश्य था—मामले-मुकदमे तथा कचहरी की कार्यवाहियों को समझने में सुगमता के साधन जुटाना। ग्रियर्सन से भी पहले हिन्दी-प्रदेश में इस प्रकार का कार्य पैट्रिक काने'गी ने किया था। 'कचहरी टेक्निकैलिटिज' के नाम से उनका शब्द-संग्रह सन् १८७०-७५ ई० के लगभग प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८७७ ई० में निकला था। उसके प्रारंभिक अंशों का डॉ॰ अम्बाप्रसाद 'सुमन' द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर हमने 'भारतीय साहित्य'

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, २-३, जुलाई, १९५७, पृष्ठ ४३६-४४३) में प्रकाशित किया था। पैट्रिक काने'गी के संग्रह के दो वर्षों बाद सन् १८७६ ई० में विनियम क्रक ने अपना संग्रह 'मैटिरियल्स फार ए रूरल एण्ड एग्रिकल्चरल ग्लोसरी अव द नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवघ' (गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद)—इस नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद १८८५ में ग्रियर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने से पहले के दोनों ग्रंथों से निस्सन्देह अधिक सफल था; क्योंकि इसके सम्पादक ने लिखित सामग्री का आभय छोड़कर विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों से शब्दों का संग्रह किया और कराया। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ ई० में गवर्नमेंट प्रिण्टिङ्ग प्रेस, बिहार एण्ड उड़ीसा, पटना से प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सन के वर्षों बाद बीसवीं सदी में इस दिशा में सबसे पहला प्रयास डॉ० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से उर्दू में 'इस्तिला हाते पेशावरों' के नाम से आठ छोटी-छोटी जिल्लों में अंजुमने तरकिए उर्दू, दिल्ली (१९३९-४४ ई०) से मौलवी जाफर उर रहमान साहब देहलवी के संपादन में प्रकाशित हुआ। इस कोश में लगभग दो सौ पेशों के बीस हजार शब्द संग्रहीत हैं। परन्तु ये शब्द गाँवों के पेशेवरों से नहीं, केवल कुछ मशहूर शहरों और कुछ नई-पुरानी किताबों (जैसे 'गुलजारे काश्मीर', 'आईने अकबरी' आदि) से संग्रहीत किये गये थे। शहरों में भी दिल्ली, आगरा और जयपुर आदि कुछ चुनो हुई जगहों से ही अधिकांश शब्द लिये गये थे और वे ही शब्द जो कि सम्पादक के नजर में 'मेयारी' यानी स्टैंडर्ड भाषा के अंग प्रतीत हुए। इस कोश में यह भी नहीं बताया गया है कि कौन-सा शब्द किस क्षेत्र या स्थान से प्राप्त हुआ। फिर भी इसमें बादशाही जमाने के पुराने खानदानों के कारीगरों से या शहरों के कई पेशेवरों से जो शब्द लिये गये हैं, वे मूल्यवान् हैं।

हर्ष है कि इधर हिन्दी में भी इस क्षेत्र में ग्रियर्सन के ही ढंग पर दो उल्लेखनीय कार्य विश्वविद्यालयों के अनुसंधितसुओं द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक तो डॉ० हरिहर-प्रसादजी गुप्त द्वारा आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के परगना अहिरौला के आचार पर 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' (प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टरेट का शोध-प्रबन्ध, १९५१ ई०) और दूसरा डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आचार पर 'कृषक-जीवन संबंधी शब्दावली' (शोध-प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, १९५६ ई०)। ये दोनों कार्य अपने-अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण कहे जायेंगे। डॉ० हरिहरप्रसाद का शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है।

(राजकमल प्रकाशन, दिल्ली आदि, १९५६)। तुलना के लिए हमने अपने इस कोश में उसका उपयोग भी किया है। तुलनात्मक अध्ययन करके हम इन कोशों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहाँ तक समानता है और कहाँ तक अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 'कृषि-शब्दावली' नाम से श्री प्यारेलाल

गर्ग द्वारा संपादित एक छोटी-सी ३३ पृष्ठों की पुस्तिका 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' से भी सं० २००० वि० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें केवल कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय-मात्र हैं।

उधर हाल में 'वृत्तिपदकोष' के नाम से तेलुगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली के संग्रह के लिए दक्षिण में इस ढंग का एक आयोजन आँध्र विश्वविद्यालय के डा० म० कृष्णमूर्ति ने किया है। जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इस प्रकार का कार्य विभिन्न प्रदेशों में शीघ्र होना चाहिए, जिससे हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें कि इनमें से कितने शब्द ऐसे हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर आवश्यक रूपान्तरों के साथ हम ग्रहण कर सकते हैं।

मराठी क्षेत्र में पूना के निकट के गाँवों के कुछ 'मुहार' जाति के घरों में व्यावसायिक शब्दों की जाँच करते हुए मुझे कई ऐसे शब्द मिले जो बिहार में भी प्रायः उसी रूप में प्रचलित हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश में केवल संस्कृत की तत्सम तथा साहित्यिक शब्दावली का ही अखिल भारतीय प्रसार नहीं है, वरन् दिनानुदिन के विभिन्न व्यावसायों में लगी हुई ग्रामीण जन-मंडली की लोकवाणी में भी भाषा की यह मूलभूत समरूपता एक अन्तर्धारा के समान किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है, परन्तु इसकी व्यापकता की जाँच तथा व्यावहारिक उपयोग तब तक असंभव है जब तक देश के विभिन्न भागों में जनपदीय शब्दावली के संग्रह और अध्ययन का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न न हो।

अपने देश में तो अभी नहीं, पर इंग्लैंड के स्कॉटलैंड प्रदेश में जनपदीय शब्दावली के क्षेत्र में एक उदाहरणीय और अनुकरणीय कार्य हो रहा है। वहाँ १९२९ ई० में इस कार्य के लिए स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हुई और उसने आक्सफोर्ड इंग्लिश लोकभाषा कोश के आदर्श पर कार्य प्रारंभ किया। इस 'स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी' को १० जिल्लों में और ३ रतनों के कुल ३२०० पृष्ठों में प्रकाशित करने की योजना बनी। लगभग २८ वर्षों तक कार्य करके १९५७ ई० तक यह सोसाइटी इस डिक्शनरी के केवल तीन खंडों का प्रकाशन अभी तक कर सकी है। इस कोश में स्कॉटलैंड के ग्रामीण अंचलों में बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों के प्रतिनिधि व्यक्तियों और पुरा काल के प्रकाशित साहित्य से शब्दों को संग्रहीत करके उन्हें सम्पादित किया जा रहा है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के पर्याय, स्थान-निर्देश, उच्चारण और प्रयोग यथास्थान दे दिये गये हैं। किसी प्रदेश की लोकभाषा-संबंधी कोशों में इससे अच्छा कोश मैंने अब तक नहीं देखा। स्कॉटलैंड के एबर्डीन नगर में जाकर और इस कोश के विद्वान् सम्पादक मि० डेविड डी० मूरिंसम के साथ रहकर मैंने अपनी आँखों उनके कार्य-क्रम और प्रणाली को देखा। इस डिक्शनरी के संग्रह और संपादन में कई विद्वान् और संग्रह-वर्त्ता काम कर रहे हैं। वर्तमान संपादक उसके दूसरे संपादक हैं। २८ वर्षों में यह कोश अपने पहले संपादक के जीवन-काल का

अतिक्रमण करके अब अपने दूसरे सम्पादक के कार्य-काल में प्रकाशित हो रहा है। इस सोसाइटी के पास कोश-विज्ञान-संबंधी सभी आवश्यक साधन हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का संग्रह, उनके शुद्ध उच्चारण आदि की बातें प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। वहाँ के कार्य को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी के समान ही हमने भी अपने इस कोश में विभिन्न अर्थ, पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया है। इनके अतिरिक्त इसमें भाषा-विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोकभाषा के शब्दों के व्युत्पत्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासंभव के दिये गये हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य प्रादेशिक बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा प्रयास रहा है कि यह कोश, हमारी भाषा में अपने ढंग का पहला कोश कहा जा सकता है, यथासंभव प्रामाणिक और उपादेय हो सके।

हमारे लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग का कार्य मार्च १९५१ ई० से प्रारंभ हुआ था। इन सात वर्षों की अवधि में कोश का कार्य तो आरंभ से ही होता आया है; किन्तु उसके साथ ही लोकसाहित्य संबंधी दूसरे कार्य भी होते रहे हैं, जिनमें लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि का संग्रह-कार्य और विशेषकर मगही के संस्कार गीतों के सम्पादन का कार्य भी सम्मिलित है। सन् १९५६ तक कार्यालय में अनुसन्धान कार्य करनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे। अब इधर तीन हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में एक-आध बार महीने-दो महीने के लिए दो-तीन अतिरिक्त व्यक्तियों से भी कुछ काम लिया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वल्प साधनों के रहते हुए भी इस छोटी-सी अवधि में हम किसी प्रकार कृषि-कोश का पहला खंड पूरा करके निकाल रहे हैं। अपनी परिस्थिति की परिसीमाओं के कारण हम इसे जैसा रूप देना चाहते थे, वैसा नहीं कर सके हैं और इसमें अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हैं, जिन्हें हम आगे के खंडों और परिशिष्ट में यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करेंगे।

कार्य-प्रणाली

इस कोश के सम्यक् उपयोग के लिए हमें अपनी योजना की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, संकलन व्यवस्था, शब्दार्थ-निरूपण, व्युत्पत्ति-निर्वचन तथा क्रमादि संबंधी कुछ आवश्यक परिचय दे देना उचित है।

प्रामाणिक शब्दों के हमारे इस संग्रह-कार्य के लिए पहले परिपद की ओर से चार वैतनिक कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये थे। मैंने उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दे कर विभिन्न निर्धारित केन्द्रों में संग्रह के लिए भेजा। वे पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के विविध जनबगों के प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों से पूछकर शब्दों अर्थों और यथास्थान उनके प्रयोगों को यथोच्चरित रूप में लिख लेते थे और उन्हें परिपद-कार्यालय में भेज देते थे। यहाँ मेरे निर्देशानुसार उनकी परीक्षा दो विशेष रूप से प्रशिक्षित अनुसन्धायक किया करते थे। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस ढंग से संग्रह-कार्य में सन्तोषजनक

प्रगति न होने के कारण पहले की वैतनिक पद्धति हटा दी गई और उसके स्थान में तत्तत्स्थलों के लोक-साहित्य और लोकभाषा के संग्रह में अनुराग और योग्यता रखनेवाले लोगों को यथानियम पारिश्रमिक देकर संग्रह-कार्य कराया जाने लगा। इस पद्धति से संग्रह-कार्य में संतोषजनक प्रगति हुई।

कोश में शब्दों के साथ-साथ मुहावरों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। कृषि-सम्बन्धी लोक-कहावतों में प्रयुक्त शब्दों को भी समाविष्ट कर लिया गया है। ग्रियर्सन के 'बिहार पीप्लेट लाइफ़' के लगभग दस हजार शब्दों की भी हमने अपनी प्रणाली से जाँच की कि उनमें से अब कितने प्रचलित हैं और कितने अप्रचलित तथा प्रचलित रूपों में भी इस बीच में अर्थगत या ध्वनिगत कितने परिवर्तन हो गये हैं।

अपनी संगृहीत सामग्री के पुनः परीक्षण के लिए विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप उभयुक्त व्यक्तियों को बुलाकर कोश में आये हुए प्रत्येक शब्द के स्वरूप, अर्थ-प्रयोग और पर्याय के बारे में नियमित रूप से पूछ-ताछ करके आवश्यक संशोधन किया गया। ये व्यक्ति उनसे भिन्न थे जिनसे प्रथमतः शब्द संगृहीत किये गये थे। इस प्रकार पुनः जाँच करने से हमें कई नये शब्द और अर्थ भी प्राप्त हुए जिन्हें यथास्थान समाविष्ट कर लिया गया है।

अपने संग्रहकर्त्ताओं के लिए हमने निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये थे जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना आवश्यक था—

संग्रह-कर्त्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

१. जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।
२. जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उसके सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।
३. जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।
४. जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक् और स्वतंत्र विषय समझा जायगा।
५. कार्य-कर्त्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल सुलभित जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनकी स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।
६. शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिये और उनको ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

७. ए० शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।
८. अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।
९. प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासंभव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप-विभाग भी कर लेना उचित है।
१०. जो पारिभाषिक शब्द न हों, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।
११. निर्देश-पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यान-पूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।
१२. शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को पृथक् पृथक् पत्रों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द लिखे जायें, वहाँ दूसरे विषय न लिखे जायें।
इन निर्देशों के अनुसार शब्द-संग्रह करने के लिए कार्य-कर्त्ताओं को एक सुव्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी :—

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था:—

संग्रह की तालिका का विवरण

१. (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
२. जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सबडिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।
३. भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।
४. आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके तो पूछताछ से पता लगाकर अंदाज से देना होगा।
५. जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, क्रिस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, खरवारो, संताली, उराँव, किसान, जमींदार, बड़ई, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक है, कौन कम है, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।
६. मिलविलेवार संख्या।
७. शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतंत्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिङ्ग का भी (स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, उभयलिङ्ग या अलिङ्ग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा।

- ये शब्द वहाँ जन-समाज में वस्तुतः जिस लिङ्ग में व्यवहृत होते हों, उसीका उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।
८. अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में देना होगा। जटिलता दूर करने और अर्थ को तथा प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उदाहरण देने की जरूरत होगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण के वाक्य उसी भाषा के हों, जिसके क्षेत्र में काम किया जा रहा हो या अपने बनाये हुए हिन्दी के सरल वाक्य हों।
 ९. (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जन-समूह में भी। जैसे, खटिया आदि शब्द जो सामान्यतः प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर', 'पदमा', 'परई' आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायेंगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है :—

वृत्तियों की विषय-सूची

१. पेशे के औजार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत, बीज आदि।
२. पेशे के ढंग और उनके काम आनेवाले जानवर।
३. पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।
४. पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुवाई, खुदाई, सिंचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)
५. पेशे की पैदावार के भेद।
६. पेशे या पेशे की सामग्रियों की वाघाएँ और ऐन।
७. पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचानेवाली चीजें।
८. खाने-पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बननेवाली चीजें।
९. मछाले।
१०. खाना बनाने की सामग्रियाँ।
११. घर के सामान, आसन, शय्या आदि।
१२. कपड़े-लत्ते और कपड़ों के नाम (छींट आदि)।
१३. गहने और भूंगार के सामान।
१४. पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।
१५. जमीन और मिट्टी के भेद।
१६. मौसम, हवा, पानी, बादलों के भेद।
१७. तौल और माप।

१८. दूरी, दिशा और समय-सूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि) ।
 १९. घरेलू और पालतू जानवर, उनके रंग-ढंग, रहन-सहन, भेद, रहने के स्थान बीमारी, चरागाह, भोजनादि की सामग्रियाँ ।
 २०. पशु-पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि) ।
 २१. घर-बाहर तथा जल-थल के कीड़े-मकोड़े (चूँटे-चोटी, हड्डे, सर्प, गोजर आदि) ।
 २२. लेन-देन, माहवारी हिसाब ।
 २३. जमीन के लगान और उसके भेद ।
 २४. घर, कोपड़े और मन्दिर-मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, जैसे छत, छपर, छवाई आदि ।
 २५. शादी-व्याह के शब्द ।
 २६. शादी-व्याह के रस्म-रिवाज, (क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) किस्तानों के, (घ) आदिवासियों के ।
 २७. (क) जात-कर्म (१) हिन्दुओं के (२) मुसलमानों के (३) किस्तानों के (४) आदिवासियों के ।
 (ख) जनेऊ ।
 २८. मृत्यु-संस्कार (क) हिन्दुओं के (ख) मुसलमानों के (ग) किस्तानों के (घ) आदिवासियों के ।
 २९. सोहनी-रोपनी की संस्कार-विधियाँ ।
 ३०. पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे-संबंधी कचहरी के शब्द ।
 ३१. अन्धविश्वास
 ३२. तिजारत और बाजार
 ३३. महाजन और कर्जदार के हिसाब-किताब ।
 ३४. जमींदार और किसान के हिसाब-किताब ।
 ३५. कर्ज, सद्, रेहन आदि ।
 ३६. व्रत, त्योहार (तीज, छठ, होली, ईद, बकरीद, क्रिसमस) और उनकी सामग्रियाँ ।
 ३७. रिक्शा, टमटम, फिटिन, वेवफा, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से ।
 ३८. मार-पीट और युद्ध के हथियार ।
 ३९. खेल-कूद, आखेट, मनोविनोद आदि, उनके भेद तथा तत्संबंधी सामग्रियाँ ।
 (आँखमुँदौवल, कबड्डी, गोटी चौपड़, शतरंज, कुश्ती, कसरत, अखाड़े, मनोविनोद, गुल्लीडंडा, पतंग, कबूतरबाजी आदि)
 ४०. गाली-गलौज ।
 ४१. आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार ।
 ४२. नाच, गान, रासलीला के शब्द और गीत ।

४३. मजहब, जात-पाँत के भेद ।
 ४४. फूल, फल, पेड़-पौधे, घास-फूस और उनके भेद ।
 ४५. बीमारियों के भेद ।
 ४६. घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, संबंधसूचक (माँ, बाप, भाई, बहन, चाची, पड़ोसी, जवार) ।
 ४७. गुण, भाव, सुख-दुख, राग-द्वेष आदि मन के विकार तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक वा भावात्मक शब्द ।
 ४८. उत्पातक—(क) प्राकृतिक—भूचाल, आँधी ।
 (ख) मानवीय—चोरी, डकैती, उसके भेद, व्यापार आदि (सँघ आदि) ।
 ४९. प्राकृतिक संबंधी—नदी, नद, फरने, मैदान, पहाड़ तथा मनुष्यकृत ताल-तड़ाग, पुल, बाग, बागीचे, कुएँ आदि ।
 ५०. शरीर के विभिन्न अंग—आदमी के (पुरुष के, स्त्री के), जानवरों के, पशु-पक्षियों के, कीड़े-मकोड़ों के ।
 ५१. ज़ियों में प्रचलित खास शब्द और मुहावरे तथा उनकी गृह-कलाओं से संबद्ध शब्द ।
 ५२. संख्यावाचक शब्द और गिनती ।
 ५३. सर्वनाम के शब्द ।
 ५४. रंगों के भेद और उनके नाम ।
 ५५. खान आदि के शब्द ।
 ५६. भिन्न-भिन्न कामों के भेद तथा कामों की विविध अवस्थाओं के भेद ।
 ५७. स्वतंत्र मुहावरे ।
 ५८. कहावतें ।
 ५९. विविध ।

संग्रहकर्त्ताओं को विषय-सूची के इन सभी पक्षों की सार्थकता को मली-भाँति समझाकर संग्रह-कार्य में इनका सदा ध्यान रखने को बता दिया गया था ।

जन-समाज के वर्ग

जन-समाज के जिन विभिन्न वर्गों के बीच भेजकर संग्रह-कर्त्ताओं से संग्रह कराया जाता था, उसके लिए भी एक सूची तैयार की गई थी, जो यहाँ दी जा रही है :—

- | | |
|---------------------------------------|----------------|
| १. किसान | ७. मजदूर |
| २. जमींदार | ८. बढ़ई |
| ३. साहूकार, महाजन और बनियाँ | ९. लुहार |
| ४. पुरोहित | १०. चमार-चमाइन |
| ५. नाई | ११. दुसाध |
| ६. राज तथा मकान की छाजनी आदि करनेवाले | १२. घोनी |

- | | |
|---|---|
| १३. धुनियाँ | ३६. माली |
| १४. जुलाहा | ४०. गंधी |
| १५. कुँजड़ा | ४१. बारी, पमरिया |
| १६. रंगसाज | ४२. कचहरी और कानूनी मुकद्दमे के शब्द |
| १७. कुँहार | ४३. कलाओं के शब्द (लोकगीत, लोक-
वाद्य, लोकनृत्य) |
| १८. कहार | ४४. तम्बू-कनात-लीमे के काम करनेवाले |
| १९. दरजी | ४५. आतिशबाजी |
| २०. तेली | ४६. तैराकी |
| २१. बजाज | ४७. वैद्य और हकीम के सामान्य शब्द |
| २२. हलवाई | ४८. साधु-सन्त तथा ओम्फा-गुणी, जादू-
टोना आदि । |
| २३. मङ्गूँजा | ४९. नट नटवे, बहुरूपिया और बाजीगरी |
| २४. बुझिहारा-बुझिहारिन | ५०. शार्ङ्ग, नौकर, चपरासी, प्यादे आदि |
| २५. अहीर-अहीरिन | ५१. सिपाही, चौकीदार आदि । |
| २६. पठवारी | ५२. कानू |
| २७. कारपरदाज | ५३. मछुआ-मल्लाह |
| २८. सुनार | ५४. पटवा |
| २९. मुशहर | ५५. ठठेरा |
| ३०. पासी, चिड़ीमार | ५६. कोयरी |
| ३१. मेहतर | ५७. झोम |
| ३२. बाउरी (चनवाद की ओर) | ५८. कसाई |
| ३३. चेरो | ५९. दफ्तरी और जिल्दसाज |
| ३४. चेरो-बाटो | ६०. विविध—सुप, सिलवट, खरादी, कलई,
मधु का काम, नालबंदी, ईंट-पत्थर,
ताला-चाभी, गृहोद्योग—चरखा, बन
बिनना, कपास ओटना, चक्की चलाना,
दही बिलोना । |
| ३५. कुली | |
| ३६. खान, रेलवे, मिलों और फैक्ट्रियों
में काम करनेवालों के शब्द | |
| ३७. बीड़ीवाला | |
| ३८. तमोली और पानवाला | |

बिहारी भाषा या भाषाएँ

वास्तव में 'बिहारी' नाम की कोई भाषा न तो बिहार के किसी भाग में बोली जाती है, न बिहार के बाहर। बिहार में किसी से भी पूछा जाय तो कोई भी 'बिहारी' भाषा का नाम नहीं लेगा। न तो प्राचीन शिष्ट साहित्य में ही और न लोक-साहित्य में ही,

किसी भाषा के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा के अर्थ में तो यह एक नया अपनाया हुआ नाम है, जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में ग्रियर्सन द्वारा बिहार की प्रमुख भाषाओं—मगही, मैथिली, भोजपुरी—और उनके भेदों के लिए प्रयुक्त किया गया था। जैसे उन्होंने राजस्थान की बोलियों के लिए एक नया नाम गढ़ा था—'राजस्थानी', वैसे ही बिहार की इन बोलियों का 'बिहारी' नाम रख दिया था। अतएव महाराष्ट्र की भाषा को जिस अर्थ में 'मराठी', गुजरात की भाषा को जिस अर्थ में 'गुजराती', बंगाल की भाषा को जिस अर्थ में 'बंगला' और उड़ीसा की भाषा को जिस अर्थ में 'ओड़िया' कहते हैं, उस अर्थ में भाषार्थक 'बिहारी' शब्द को नहीं ग्रहण किया जा सकता। 'बिहारी' कोई एक भाषा या बोली नहीं, किन्तु उपर्युक्त तीनों भाषाओं का बोधक शब्द है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों भाषाओं की सीमा बिहार में ही सीमित नहीं है। इनमें से भोजपुरी-भाषी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में है। इसी प्रकार मगही-भाषी क्षेत्र का एक भाग (मानभूम का कूरमाली भाषी अंश) अभी हाल में बंगाल में मिला लिया गया है। मैथिली क्षेत्र के भी कुछ अंश बंगाल में सम्मिलित हैं। वस्तुतः ग्रियर्सन ने बिहार में इन बोलियों के विस्तार-प्राधान्य तथा इनमें जो एक विशिष्ट और चनिष्ठ समरूपता है; इन्हीं आधारों पर उनका यह एक समान नामकरण कर दिया था। इन बोलियों या भाषाओं की यह व्यापक समानता उन्हें एक ओर बंगला से पृथक् करती है और दूसरी ओर अवधी तथा अन्य पच्छिमी बोलियों से भी भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। इन समानताओं को अभिव्यक्त करने के लिए, इनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए 'बिहारी' निस्संदेह एक सार्थक संज्ञा है। यहाँ जो संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम इसी अर्थ में इस शब्द का आवश्यकतानुसार प्रयोग करेंगे।

इस दृष्टि से 'बिहारी' उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में छोटानागपुर पठार तक और पूर्व में बंगाल की सीमा से लेकर पश्चिम में मध्य प्रदेश के सरगुजा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, फैजाबाद और बस्ती जिले के पूर्व तक बोला जाता है। इस प्रकार 'बिहारी' भाषा के पूर्व में बंगला, दक्षिण में ओड़िया, पश्चिम में छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी जो हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाएँ हैं, और उत्तर में नेपाली बोली जाती है।

इस सीमा के अंदर इस भाषा के साथ-साथ आदिवासियों में संताली, मुंडारी, हो, खड़िया, कोरकु और भूमिज आग्नेय या निषाद कुल की और ओराँव या कुड़ुँख तथा मालतो द्रविड़ कुल की हैं।

'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी इन तीनों 'बिहारी' बोलियों के बोलनेवालों की संख्या क्रमशः एक करोड़, पैंसठ लाख तथा दो करोड़ से ऊपर है। ये 'बिहारी' बोलियाँ आर्यभाषा परिवार की हैं; परन्तु उनमें यहाँ की

कोल और द्रविड़ भाषाओं के भी प्रचुर प्रभाव हैं। ये हिंदी प्रदेश के पूर्वी अंचल की अंतिम उपभाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में भी 'बिहारी' भाषा-क्षेत्र हिंदी प्रदेश के ही अंतर्गत रखा गया है। पूर्व में इनके आगे बँगला का अंचल प्रारम्भ हो जाता है।

बिहार में बोली जानेवाली भाषाओं की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हमने एक विशेष मानचित्र तैयार किया है, जो इस कोश के आरंभ में दिया जा रहा है। उससे बिहारी भाषाओं के विस्तार, परिधीमा आदि का परिचय अनायास हो सकेगा।

‘बिहारी’ का हिन्दी और बँगला से संबंध

बँगला और ‘बिहारी’ के संबंध का विचार करते हुए ग्रियर्सन ने बँगला के ‘अ’ से ‘बिहारी’ (मैथिली) के ‘अ’ का साम्य दिखलाया है, किन्तु उन्हीं के लेखानुसार ‘बिहारी’ का ‘अ’ अल्प आयत (Broad sound) है, जब कि बँगला का ‘अ’ अधिक आयत। और यह साम्य भी भोजपुरी-मगही में तो कदापि नहीं है। इस संबंध में ‘आयत’ से उनका आशय स्पष्टतः ‘वर्तुल’ से था।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि बँगला में दंत्य ‘स’ के स्थान में तालव्य ‘श’ का उच्चारण होता है, जिसे प्राकृत व्याकरण में मागधी का लक्षण बताया गया है। पर आज किसी भी बिहारी बोली में ऐसा नहीं होता। बिहारी में सर्वत्र तालव्य ‘श’ और मूर्धन्य ‘ष’ के स्थान में दंत्य ‘स’ का ही उच्चारण होता है। उर्दू में तालव्य ‘श’ और संघर्षी ‘ज’ के लिए जो लिपि-चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनपर नुक्ते दिये जाते हैं। इस संबंध में मजाक करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि दुनिया भर के नुक्ते एक साथ मिलकर भी किसी बिहारी से ‘श’ को ‘स’ के सिवा तथा ‘ज’ को ‘ज’ के सिवा और कुछ कदापि उच्चारित नहीं करा सकते (बिहार पीजेंट लाइफ, भूमिका, पृ०-३)। हिंदी प्रदेश की दूसरी बोलियों में भी यही विधान है। शब्द-भंडार तथा परसर्गादि के रूप-संबन्धी अनेक व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी ‘बिहारी’ का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है।

‘बिहारी’ के भेद-उपभेद

उपर्युक्त तीन उपभेदों के अतिरिक्त हज़ार व्याकरण-संबन्धी प्रयोगों के कुछ अन्य दृश्यमान अंतरों के आधार पर दो और नाम कल्पित करके ‘बिहारी’ के तीन के स्थान में अब कुछ लोगों के द्वारा पाँच उपभेद बताये जाने लगे हैं:—

मैथिली, अंगिका या भागलपुरी, वज्जिका, मगही और भोजपुरी। इनमें से अंगिका या भागलपुरी को ग्रियर्सन ने ‘छिकाछिकी’ नाम से मैथिली की ही एक उपभाषा बतलाया है, और वज्जिका को पश्चिमी मैथिली। स्वतः भोजपुरी के अंतर्गत पूर्वी, पच्छिमी और दक्खिनी (नागपुरिया) — ये भेद तो किये ही जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी भेदों और उपभेदों में आंतरिक साम्य होते हुए भी कुछ-न-

कुछ अपनी-अपनी पृथक् विशेषताएँ भी हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन सबको केवल दो भेदों में विभक्त करके मगही को सरलता से मैथिली के ही अंदर ले लिया जाय। मगही और मैथिली का गठन कई अंशों में परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण में भी पार्थक्य है। शब्दरूप और किर्यारूप भी भिन्न-भिन्न हैं।

वस्तुतः बिहार की ये सभी उपभाषाएँ पूर्वकाल में संभवतः किसी एक ही मूल से निकलकर नये स्रोतों की तरह अपने पृथक्-पृथक् मार्गों से भिन्न रूपों में प्रवाहित होती आ रही हैं। यह मूल भाषा ‘मागधी’ बताई जाती है, जो बँगला, असमी और ओड़िया का भी उद्गम मानी जाती है। इस दृष्टि से ये सभी बहनें हैं। एक रूप नहीं, समरूप हैं। मगही और मैथिली से भोजपुरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर है। संभव है, उस पर अर्ध-मागधी का भी कुछ प्रभाव है। सच पूछें तो भारतवर्ष की किसी भी आधुनिक भाषा को किसी विशेष प्राकृत या अपभ्रंश के साथ हम निश्चयात्मक रूप से संबद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जैसा टर्नर (R. L. Turner, Gujarati, Phonology, J. R.A.S., १९२५ ई., पृ०-३२६) और ब्लॉक (J. Block, La Formation de La Langue Marathi) महोदयों ने इंगित किया है।

प्राचीन प्राकृत या अपभ्रंश काल में किसी विशेष जनवर्ग द्वारा वास्तविक रूप में बोली जानेवाली भाषा का कोई प्रामाणिक लिखित उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं है। और दूसरी ओर वर्तमान देशी भाषाओं में तीर्थ-यात्रा, सांस्कृतिक-एकता, शादी-व्याह के संबंध, देश-प्रदेश के यातायात तथा भाषागत समान परिवर्तनों के कारण बहुत कुछ मिश्रण हो चुका है। ऐसी दशा में प्राकृतिक वैयाकरणों की शब्दावली का आश्रय ग्रहण करके हम अधिक-से-अधिक यही कह सकते हैं कि ‘बिहारी’ प्राच्यभाषा-वर्ग के अंतर्गत आती है, जिसके पश्चिमी रूप अर्धमागधी और पूर्वी रूप मागधी, इन दोनों के बीच के प्रदेश से संबद्ध होने के कारण उसमें कुछ-कुछ दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।

कुछ सामान्य नियम

बिहारी की विशेषता में उसकी ध्वनियों के रागात्मक तत्त्व भी उल्लेखनीय हैं। कई ध्वनिराग तो ऐसे हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। उनका विस्तृत विश्लेषण, जहाँ तक भोजपुरी के संबंध में लागू है, मैंने लंदन विश्वविद्यालय के अपने शोध-प्रबंध में किया है। उच्चारण तथा बिहारी शब्दों के यथावत् अभ्ययन के लिये इनका थोड़ा परिचय अपेक्षित है। उदाहरण के लिये एक लिखित-रूप लीजिए—“देखल।”

बिहारी में यह विभिन्न रागों में उच्चारित होकर तीन विभिन्न अर्थों का द्योतक है—

देख लऽ—देख लो।

देख लऽ—तुमने देखा।

देखल—देखा हुआ।

पदान्त के ‘अ’ का उच्चारण बिहारी में कुछ स्थितियों में होता है। समझाने के लिए ग्रियर्सन (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द—१, भाग—१, १९२७ ई०, जिल्द—५,

भाग—२, १६०३ ई०) ने बहुत प्रयत्न किया। पर ध्वनि-विज्ञान की प्रणाली के बिना उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन था। इस ध्वनि-संकेत के लिए नागरीलिपि में 'ऽ' इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

बिहारी वाक्यों तथा शब्दों के संगठन में बलाघात, स्वराघात तथा मात्रा की बड़ी रोचक तथा विशिष्ट व्यवस्था है। मात्रा-व्यवस्था के संबंध में एक महत्वपूर्ण नियम यह है कि कुछ खुले हुए दीर्घाक्षरों की घातुओं—जैसे, खा, जा, आदि के रूपों को छोड़कर किसी शब्द या पद के अंतिम स्थान से दो स्थान पूर्व का कोई अक्षर दीर्घ रूप में नहीं टिक सकता। उसका ह्रस्वीकरण अवश्यमावी है। जैसे—

बाहर—बाहरी

बोली—बोलिया

देखल—देखली

इनमें दाहिनी ओर के रूपों में प्रथमाक्षर के स्वरों का उच्चारण ह्रस्व होता है। ग्रियर्सन ने इस रागात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख 'उपधापूर्व का नियम' इस नाम से किया है।

मात्रा की रागात्मक प्रक्रिया

अ—आकार की मात्रा का एक वह रूप है, जो सामान्यतया हिन्दी की सभी उपभाषाओं में है। यथा—अग्नि, अटल।

दूसरा रूप वह है, जो अतिह्रस्व या अर्ध-ह्रस्व है और जो शब्दों के बीच में आया करता है। यह शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता है अथवा अर्धश्रुत जैसा होता है। इसे ग्रियर्सन ने 'अश्रुत स्वर' कहा है। यथा—'केतरपारा', 'पतरवाहा', इन शब्दों के तीसरे 'र' में स्थित 'अ' मात्रा का अवयव नहीं होता है। यह एक ऐसा 'अ' है जो द्रुतगति के भाषण में शून्यवत् मूल्य भी ग्रहण कर ले सकता है। ऐसे शब्दों को लिखा तो जाता है, केतरपारा, पतरवाहा के रूप में; किंतु उच्चारण के अनुसार ये 'केतर्पारा' 'पतर्वाहा' जैसे हो जाते हैं।

सामान्यतः शब्दों के अंतिम 'अ' का उच्चारण नहीं होता है। कुछ विशेष रूपों को छोड़कर अन्यत्र शब्दांत का 'अ' अनुच्चरित रहता है और अंतिम वर्ण हिन्दी के समान ही हलंतवत् उच्चरित होता है; यथा—'कल'। किंतु लिखने में वह हलंत न लिखा जाकर पूरा लिखा जाता है।

जिन रूपों में अंतिम 'अ' उच्चरित होता है, उनमें उसका कुछ वृत्त उच्चारण होता है।

यत्र-तत्र भागलपुरी रूपों में यह अंतिम 'अ' 'ओकार' रूप में इस कोश में अंकित किया गया है, क्योंकि शब्द-संग्रह करनेवालों ने उसे उसी प्रकार उल्लिखित किया है।

आ—दीर्घ 'आ' की मात्रा का उच्चारण एक तो वैसा ही होता है जैसा कि सामान्यतः हिन्दी की दूसरी उपभाषाओं में। किंतु इसका बिहारी भाषाओं में ह्रस्व उच्चारण भी होता है। जैसे—आसमान, मालपूआ आदि में आदि का 'आ'।

इ-उ—शब्द के अंत में ह्रस्व इ, उ की ध्वनि अर्धश्रुत होती है, जैसे—मैथिली में 'कयलन्हि', 'करियहु', 'पानि' प्रयोगात्मक प्रणाली से जाँच करने पर भोजपुरी में व्यवहृत इस अंतिम ह्रस्व 'इ' और 'उ' की ध्वनि फुसफुसाहट की ध्वनि सिद्ध होती है, जैसे आगि, मधु।

ए—ओ

ये दोनों दीर्घस्वर बिहारी में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व भी होते हैं। इनके ह्रस्वीकरण के नियम वे ही हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उदा०—अंगेझिहा, अगोरिया। इन दोनों शब्दों में अंतिम दो अक्षरों के पूर्व के ए और ओ ह्रस्व हो गये हैं। यही निबम सर्वत्र लागू है। इसलिए कोश में इनके लिए कोई पृथक चिह्न देना आवश्यक नहीं समझा गया।

सन्ध्यक्षर स्वर

पश्चिमी हिन्दी में नियमित रूप से सन्ध्यक्षर स्वर व्यवहृत होते हैं, परंतु बिहारी बोलियों में ये प्रायः संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। इसलिए हम इन्हें स्वरानुक्रम या याव् श्रुति रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यथा 'ऐ' के स्थान में 'अइ', 'अय्' और 'औ' के स्थान में अउ-अव्। उदाहरण—एँठा के स्थान में अइँठा, चैत के स्थान में चइत, घौर के स्थान में घउर।

साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें 'ऐ' का उच्चारण 'अय्' और 'औ' का उच्चारण 'अव्' होता है।

यथा—घौद के स्थान में घवद। बैर के स्थान में बयर। बैल के स्थान में बयल।

संभव है, ये 'अय्'। अव् राग वाले शब्द पश्चिम के आगत शब्द हों।

साधारण बोलचाल में द्रुतगति के उच्चारण में सन्ध्यक्षर स्वर के रूप में भी इनका उच्चारण सुना जाता है, जिसमें 'ऐ' के एक उच्चारण में सन्ध्यक्षर की गति 'अ' से 'इ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ए' की ओर एवं 'औ' के एक उच्चारण 'अ' से 'उ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ओ' की ओर रहती है।

कोश में इन में दोनों के प्रदर्शन के लिए अलग लिपि-चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बिहारी बोलियों में जो रूप सामान्यतः प्रचलित हैं, वही दिये गये हैं। अइ और अउ के उच्चारण में तो स्वरांशुक्रम वाला रूप दिया गया है और अय् तथा अव् वाले रागात्मक रूपों को सन्ध्यक्षर द्योतक लिपि-चिह्न ऐ तथा औ द्वारा ही संकेतित कर दिया गया है। बिहारी उच्चारण के अनुसार तो अय् और अव् वाले रूप ही देना चाहिए

या, किंतु हिंदी में और इन रूपों में संध्यन्तर स्वर तथा इन्हीं मात्राओं का प्रयोग होता है, इसलिए इस कोश में इसी हिंदी प्रचलित रूप का आश्रय लिया गया है।

यदि किसी क्षेत्र से 'अइ' और 'अउ' वाले रूपों का रूपांतर 'ऐ' और 'औ' वाला रूप प्राप्त हुआ है तो उन रूपों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है। यथा—कैंत, कैंत, कउर, कौर।

य, व की भुति

किसी शब्द में इकार या उकार के बाद यदि कोई दूसरा स्वर हो तो दोनों स्वरों के बीच क्रमशः 'य' और 'व' की भुति होती है। यह भुति बराबर लिखी नहीं जाती है। इसलिए हमने कहीं भुति सहित रूपों का व्यवहार किया है और कहीं भुति रहित। जहाँ भुतियों का व्यवहार नहीं किया गया है, वहाँ भी ये उपयुक्त रूप में समझी जा सकती हैं। यथा—करिआ-करिया, अँलुआ-अँलुवा।

अनुस्वार और अर्धानुनासिक

इस कोश में शब्द के मध्य के निःस्वर पंचमवर्ण अनुस्वार के रूप में व्यवहृत हुए हैं और स्वरों के अनुक्रम में ये सबसे पहले रखे गये हैं।

बिहारी के किसी शब्द में अंत के दो या दो से अधिक अक्षरों के पूर्व का अनुस्वार अर्धानुनासिक रूप में परिणत हो जाता है। यथा—अँटल, अँगेकिहा, अँकुर, अँकरियाइल।

संस्कृत के अनुस्वारयुक्त तत्सम शब्द यदि दो अक्षरोंवाले हों तो बिहारी के तद्भव रूप में उस शब्द के पंचमवर्ण के पूर्व का 'अ' स्वर दीर्घ और अर्धानुनासिक हो जाता है। यथा—पंक से पाँक, षंड से बाँट, षंड से साँढ़।

कोश में सर्वत्र अनुस्वार की तरह अर्धानुनासिक भी वर्णानुक्रम में स्वरों के पूर्व ही रखे गये हैं। अनुस्वार और अर्धानुनासिक में कोई पौर्वापर्य नहीं बरता गया है।

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण का संयुक्त रूप

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण के बाद यदि तृतीय या चतुर्थ वर्ण का संयोग हो तो बिहारी में ऐसे शब्दों के चार रूप संभव हैं—पंचम के साथ पंचम, अर्धानुनासिक के साथ मात्रा समतोलन के नियमानुसार दीर्घीकरण अथवा दीर्घीकरण के साथ पंचम वर्ण का व्यवहार। चतुर्थ वर्ण अनुनासिक के साथ तो अपने असली रूप में रहता है, अन्यथा 'ह' के साथ संयुक्त होकर महाप्राण नासिक ध्वनि के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे—अनुस्वार अथवा

पंचम और तृतीया या चतुर्थ के संयुक्त रूप	द्विस्व या नासिक महाप्राण	अर्धानुनासिक	नासिक
लंभा/लम्बा	लम्भा	लँभा	लामा
खंभा/खम्भा	खम्भा	खँभा	खाम्हा
कंभा/कम्भा	कम्भा	कँभा	कान्हा

इनमें से प्रथम दो रूप, जो अधिक प्रचलित हैं, वे ही यहाँ इस कोश में दिये गये हैं।

इ और र

बिहारी भाषाओं में 'इ' और 'र' का भेद तो है, किन्तु इन दोनों के उच्चारण में नियमितता नहीं है—विशेषतः मैथिली में। अतः एक ही शब्द में ये दोनों उच्चारण संभव हैं, कभी 'इ' कभी 'र'। यथा—अँगेकिहा, अँगेरिहा; अँगेङी, अँगेरी। इस कोश में यथासंभव ये दोनों ही रूप दिये गये हैं। किंतु जहाँ ऐसे दोनों रूप नहीं भी हों, वहाँ भी दो रूप संभावित समझने चाहिए। 'इ' और 'र' के इस विकल्प से मूल शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। ऐसे स्थलों में उन्हें सस्वन ही मानना संगत होगा।

मगही में कभी-कभी महाप्राण ध्वनि में विपर्यय भी हो जाता है, यथा—'चढ़ के' के स्थान में 'चहड़ के'।

हमने कोश में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया है—

कोश में व्यवहृत क्रम

१। कोश के आरम्भ में अक्षर-शीर्षक 'अ', 'आ' आदि १६ प्वाइंट काले में दिया गया है।

२। इसके बाद वर्णानुक्रम से कृषिवाची मूल शब्द दिये गये हैं। ये १२ प्वाइंट सं० १ में हैं।

३। शब्दों के पश्चात् निर्देश चिह्न (—) देकर गोल कोष्ठ में व्याकरण संकेत (सं०, क्रि०) आदि-दिये गये हैं।

४। तत्पश्चात् मूल शब्द का प्रधान पारिभाषिक अर्थ दिया गया है। यदि एक शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हैं, तो किसी भी अर्थ के पहले कोष्ठक में संख्या-क्रम देकर विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रयास यही रहा है कि अर्थ की प्रधानता के अनुसार ही उनका क्रम भी हो। यदि उस शब्द का कोई सामान्य अर्थ भी है, तो वह उसी क्रम में अंत में दिया गया है।

५। अर्थ के पश्चात् जिस क्षेत्र में वह अर्थ प्रचलित है, उस क्षेत्र का संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिया गया है। यदि एक से अधिक क्षेत्रों में वह अर्थ प्रचलित है, तो उन सभी क्षेत्रों का संक्षिप्त रूप दिया गया है। इस संक्षिप्त रूप का अर्थ है कि या तो वह शब्द उस अर्थ में निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रचलित है, अथवा उक्त अर्थ में उस क्षेत्र से संगृहीत हुआ है। उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि केवल उक्त क्षेत्र में ही वह शब्द अथवा अर्थ प्रचलित है। संभव है, वह दूसरे क्षेत्रों में भी हो। यहाँ मुख्यतः इसलिए उस क्षेत्र का उल्लेख किया गया कि उक्त शब्द अथवा अर्थ निर्दिष्ट क्षेत्र से ही संगृहीत हुआ है।

अर्थ संकेत पादक सं० १ मोनो टाइप में दिया गया है।

६। कोष्ठक में क्षेत्र-निर्देश के पश्चात् यदि उक्त शब्द का कोई दूसरा भी पर्यायवाची शब्द है, तो उसका भी 'दे० (देखिए)' के बाद उल्लेख कर दिया

गया है। यह दे० “.....” कभी-कभी मूल शब्द के बाद में ही प्रयुक्त हुआ है और वहाँ अर्थ न देकर केवल पर्याय का निर्देश कर दिया गया है, जिससे कि उस पर्याय के आगे वह देख लिया जाय।

७। इसके उपरान्त ‘पर्याय’ (पर्याय) देकर पारिभाषिक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं और प्रत्येक पर्याय के आगे गोल कोष्ठक में क्षेत्र का संक्षिप्त रूप है। एक से अधिक पर्याय के रहने पर सभी का पूर्वोक्त क्रम से उल्लेख किया गया है। ये सभी पर्याय विहारी भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द हैं। यत्र-तत्र आजमगढ़ और बनारस के आस-पास के भी शब्द दे दिये गये हैं; क्योंकि ये दोनों स्थान भोजपुरी से सम्बद्ध हैं। ऐसे शब्दों के आगे भी स्थान-निर्देश कर दिया गया है।

८। पर्यायों के बाद बड़े कोष्ठकों में कोश के मूल शब्द के व्युत्पत्तिक या पुनर्निर्मित समरूप दिये गये हैं। इनमें यथासंभव शब्द के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखा गया है। साथ ही कहीं व्युत्पत्ति के साथ और कहीं बिना व्युत्पत्ति के भी मूल शब्द के तत्सम संस्कृत शब्द और आगे तदभव, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के पर्याय रूप दे दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के आगे कोष्ठक में तत्सद् भाषा का संक्षिप्त रूप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त इसी कोष्ठक में शब्दों की व्युत्पत्ति या पुनर्निर्मित-विषयक विभिन्न मत भी यथास्थान निर्देश के साथ दिये गये हैं। यहाँ जिस पुस्तक अथवा लेखक का नाम लिखा गया है, उसके संक्षिप्त रूप के पहले एक निर्देश-चिह्न लगा दिया गया है।

हमारी लोकभाषाओं में कई ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो संस्कृत के विभिन्न कोशों में तो उसी रूप में सम्मिलित हैं, पर संस्कृत पालि और प्राकृत के साहित्य में उनका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसे स्थलों में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के कोशों से उन शब्दों के उद्धरण दे दिये गये हैं और अन्त में उन कोशों के संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिये गये हैं। जैसे—‘काका’ के लिए ‘कटाह’ और ‘पैड़ा’ के लिए ‘पैड़’।

यत्र-तत्र आवश्यकतावश कोष्ठक के अन्दर और कहीं-कहीं बाहर भी, शब्द की विशेष व्याख्या के लिए ‘टि०’ (टिप्पणी) देकर विस्तृत विवरण या अर्थ दिया गया है।

कोष्ठक के अन्दर व्युत्पत्ति आदि के रूप तिर्यगक्षर (१२ प्वाइंट इटालिक) में दिये गये हैं।

शब्दार्थ-निरूपण

इस कोश में बिहार प्रदेश के विभिन्न जिलों अथवा क्षेत्रों में बसनेवाले कृषक-वर्गों में प्रचलित और प्रयुक्त होनेवाले कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्द ही रखे गये हैं। इसमें यथाभूत मूल शब्द रखे गये हैं, उनमें कोई साहित्यिक संशोधन नहीं किया गया है। इन शब्दों के मूल रूप में होते हुए भी इनमें उच्चारण-ध्वनि का निर्देश नहीं किया गया है। ध्वनि के लिए आगे कुछ प्रक्रियात्मक नियम दिये जा रहे हैं, जिनसे उनकी मूलगत ध्वनि का ज्ञान हो जाने से ऐसे ध्वनि-चिह्नों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

ये सभी मूल शब्द प्रातिपदिक रूप में रखे गये हैं। इनके विभक्त्यन्त रूप का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। बिहार की तीनों भाषाओं में शब्दों के जहाँ समान रूप हैं, वहाँ वे उन्हीं रूपों में दिये गये हैं। पर किसी शब्द के रूप में भेद होने पर उस भिन्न रूप शब्द को मूल शब्द मानकर पृथक् अपने अनुक्रम में रखा गया है।

अर्थ समान होने पर तीनों भाषाओं में पाये जानेवाले भिन्न रूप शब्द पर्याय के रूप में मूल शब्द के आगे या अर्थ के बाद दे दिये गये हैं।

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर उन अर्थों को अनुक्रम-संख्या देकर अलग-अलग दिखाया गया है।

जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ वस्तुओं के अर्थ और रूप को स्पष्ट करने के लिए चित्र भी दे दिये गये हैं।

इन शब्दों को मैथिली, मगही, भोजपुरी या भागलपुरी आदि बोलियों की सीमा में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि तत्सद् भाषा-क्षेत्र के अंतःपाती क्षेत्र-विशेष के नाम का संकेत कर देना ही हमारा आशय है। अतः सामान्यतः हमने जिलों अथवा उनके अन्दर के क्षेत्रों के नाम-दे दिये हैं। मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि का उल्लेख असार्वत्रिक है। किन्तु ये सभी उल्लिखित क्षेत्र मे०, मग०, भोज० और भाग० के अन्दर ही आते हैं। इन भाषाओं के क्षेत्र की सीमा के बाहर का कोई क्षेत्र इनमें सम्मिलित नहीं है।

अवतक भाषा-वैज्ञानिकों ने बिहार की पटना कमिशनरी, तिरहुत कमिशनरी, और भागलपुर कमिशनरी के संतालपरगने के कुछ भागों और संताली को छोड़कर सभी जिलों में बोली जानेवाली बोलियों का मैथिली, मगही और भोजपुरी के ही नाम से वर्गीकरण किया है। कोश में दिये हुए अपने मानचित्र में भी हमने इसी मान्यता का अनुसरण किया है। परन्तु इसके प्रतिकूल आज भागलपुरी क्षेत्र के कुछ कंटों से सहज मातृभाषा-प्रेम से प्रेरित एक अस्फुट आन्दोलित स्वर सुनाई पड़ रहा है कि सहरसा जिले के उत्तरी भाग को छोड़कर संपूर्ण भागलपुर कमिशनरी की बोली ‘भागलपुरी’ है, जो मैथिली से सर्वथा भिन्न है। ग्रियर्सन ने इसे ‘छिका-छिकी’ कहा है। किन्तु हमें यहाँ न तो इसका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत करना है और न इसके पक्ष-विपक्ष में हमारा कोई आग्रह ही है। कोश प्रस्तुत करते समय मुख्यतया हमारा यही ध्यान रहा है कि भाषाओं का क्षेत्रीय महत्त्व होने के कारण उनका निर्देश भी क्षेत्र-विशेष के नाम से ही हो। अतः हमने सर्वत्र क्षेत्र-विशेष का उल्लेख किया है, न कि किसी भाषा-विशेष का। तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए क्षेत्रीय विविधताओं का निर्देश अधिक-उपयुक्त है। क्षेत्रीय विविधताओं के निर्देश में यहाँ केवल जिलों का ही निर्देश नहीं किया गया है, प्रत्युत जिलों के अघान्तर क्षेत्रों का भी निर्देश दिया गया है। यथा—द० मु०, द० भा०, द० प० याहा० आदि।

क्रिया का मूल रूप

(१) इस कोश में क्रिया का मूल रूप 'ल' प्रत्ययान्त लिया गया है। यथा—
अँटल=अँटना, करल=करना आदि।

सामान्यतया बिहार की तीनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय ही लगता है। इसलिए यहाँ यही सामान्य रूप लिया गया है। इसके अतिरिक्त 'व' प्रत्ययान्त एक और रूप भी है, जो मैथिली क्षेत्र में प्रचलित है। यथा—लाएव, जाएव आदि। परन्तु यह रूप विशेष स्थलों में ही व्यवहृत होता है। इसलिए क्रियार्थक संज्ञा का यहाँ सामान्य रूप 'ल' प्रत्ययान्त ही रखा गया है।

मगही, मैथिली, भोजपुरी और भागलपुरी सभी भाषाओं में समान रूप से 'व' भविष्यार्थक प्रत्यय है, किंतु मगही में विशेष क्षेत्र में 'व' के बदले 'म' का भी प्रयोग होता है, यथा=जाएव=जाँँगे, जायम=जाँँगे।

बिहारी भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में सामान्यतया 'ल' प्रत्यय लगता है। यह 'ल' कृत् प्रत्यय है। अतः यह सामान्यभूत और दूसरे भूतकालिक भेदों का भी प्रत्यायक है। साथ ही यह 'ल' क्रियाजन्य विशेषण प्रत्यय भी है।

उदाहरण—अँटल=अँटा हुआ, समाया हुआ।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया का मूल रूप 'आवल' प्रत्यय लगाकर रखा गया है। यथा—अँटल का अँटावल, अँटकल का अँटकावल।

'आवल' का कहीं-कहीं 'आयल' रूप होता है। यथा—अँटकल से अँटकायल। अँटकावल और अँटकायल—इन दोनों रूपों में क्रमशः 'व' और 'य' की भ्रुति है। तदनुसार इनके रूप आउल, आओल और आइल, आएल भी लिखे जा सकते हैं। इन रूपों का समावेश सर्वत्र नहीं किया गया है; क्योंकि उन्हें स्वयं समझा जा सकता है। 'य' या 'व' भ्रुतिविषयक नियम आगे दिये जा रहे हैं।

(३) 'आवल' और 'आयल' प्रत्यय प्रातिपदिक रूपों से घातु (नाम-घातु) बनाने में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—अँगुरी > अँगुरियावल, अँखुमा > अँखुमायल।

क्रिया का उपयुक्त रूप ही इस कोश में व्यवहृत हुआ है। काल, वचन आदि के अनुसारी रूप इसमें छोड़ दिये गये हैं। हिन्दी का 'ना' प्रत्ययान्त रूप बिहारी भाषाओं में नहीं होता।

जहाँ-जहाँ क्रिया के मूल रूप के लिए 'ल' प्रत्ययान्त क्रियार्थक संज्ञा का रूप यहाँ दिया गया है, वहाँ-वहाँ क्रिया के साथ प्रायः (वि०-विशेषण) का निर्देश करके विशेषण-विशिष्ट अर्थ भी दिये गये हैं। यदि कहीं ऐसा न भी हो, तो ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'ल' प्रत्ययान्त क्रिया रूप को विशेषण भी समझ लेना चाहिए और वहाँ वैसे अर्थों का अवबोध कर लेना उचित है।

क्रियाओं के आन्तरिक भेद—सकर्मक, असकर्मक का व्याकरण-संबंधी निर्देशों में उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है; क्योंकि यह तो अर्थ और प्रयोग से ही जाना जा सकता है।

व्याकरण, व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विषयक संक्षिप्त रूप

अ० क्रि०	असकर्मक क्रिया
अनु०	अनुकरणात्मक
अनुवा०	अनुवादात्मक
अल्पा०	अल्पार्थक
अल्पा० प्र०	अल्पार्थक प्रत्यय
अव्य०	अव्यय
अस्	अस्त्यर्थक
उदा०	उदाहरण
कहा०	कहावत
क्रि०	क्रिया०
क्रि० प्र०	क्रिया-प्रत्यय
क्रि० वि०	क्रिया-विशेषण
टि०	टिप्पणी
दे०	देखिए
देशी	देशी
देशी प्र०	देशी प्रत्यय
भा०	घातु
ना० घा०	नाम घातु
ना० घा० प्र०	नाम घातु प्रत्यय
निषे०	निषेवात्मक
पुं०	पुंलिंग
प्रेर०	प्रेरणार्थक
मिज्ञा०	मिलाइए
मु० प्र०	मुस्लिम प्रयोग
मु० री०	मुस्लिम रीति
मुहा०	मुहावरा
यो०	योगिक
ला०	लाक्षणिक
लोको०	लोकोक्ति
वि०	विशेषण
वि० प्र०	विशेषण-प्रत्यय
विशे०	विशेष प्रयोग
वे०	वैकल्पिक प्रयोग

सं०	संज्ञा
संभ०	संभवतः
स० क्रि०	संकर्षक क्रिया
साइ०	सादृश्यार्थक
सामा०	सामान्य
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्वा० प्र०	स्वायिक प्रत्यय

< से व्युत्पन्न ।

> रूप-परिवर्तन ।

✓ संस्कृत के मूल धातु ।

= सम, समार्थ, अर्थ ।

? संभावित, संशयापन्न ।

[] व्युत्पत्ति, दूसरी भाषाओं के पर्याय ।

() (१) शब्द के आगे व्याकरणविषयक निर्देश, शब्द और विवरण के आगे स्थान-निर्देश, भाषा-निर्देश, कहीं-कहीं स्पष्टीकरण ।

(२) मूल धातु के आगे उस धातु का अर्थ, कहीं मूल रूप में, कहीं हिंदी में ।

(३) बड़े कोष्ठ के अन्तर्गत पुस्तक-निर्देश, भाषा-निर्देश, श्रवण-निर्देश ।

x गुणात्मक, यौगिक वा समस्त पद का विग्रहीत रूप ।

— पुस्तक-निर्देश, अर्थ का स्पष्टीकरण ।

• संक्षिप्त रूप के आगे ।

❧ पुनर्निर्मित शब्द का संभावित रूप ।

भाषाविषयक संक्षिप्त रूप

अंग्रेजी	अंग्रेजी
अ०	अरबी
प्रब०	अवधी
अस०	असमिया
उ० प० मै०	उत्तर-पश्चिम मैथिली
उ० पू० मै०	उत्तर-पूर्व मैथिली
उ० मै०	उत्तरी मैथिली
उर्दू	उर्दू
ओ०	ओड़िया
क०	कन्नड़
कश्मी०	कश्मीरी
काफि०	काफिरिस्तानी

कुमा०	कुमाऊँनी
गु०	गुजराती
ग्री०	ग्रीक भाषा
जर०	जर्मन भाषा
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
द० प० मै०	दक्षिण-पश्चिम मैथिली
द० पू० मै०	दक्षिण-पूर्व मैथिली
द० मै०	दक्षिण मैथिली
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा सदर और मधुबनी सबडिविजन की मैथिली
दरदी०	दरदी (कश्मीरी) भाषा
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
प० मै०	पश्चिमी मैथिली
पश्त०	पश्तो
पहा०	पहाड़ी
पा०	पालि
पुर्त०	पुर्तगाली
प्रा०	प्राकृत
प्रा० फा०	प्राचीन फारसी
फा०	फारसी
बिहा०	बिहारी
भोज०	भोजपुरी
मग०	मगही
मग०-५	मगही ५—दक्षिण-पूर्वी अर्थात् शेखपुरा, बरबोधा (मुँगेर) में प्रयुक्त मगही

म० भा०	मध्य भारतीय (मिडिल इंडोआर्यन)
मरा०	मराठी
मल०	मलयालम
मार०	मारवाड़ी
मै०	मैथिली
रोमा०	रोमानी—योरप के ज़िप्सियों की भाषा
ल०	लहँदा

लै०	लैटिन
लो० जर०	लोअर जर्मनी
संता०	संताली
संस्क०	संस्कृत
सि०	सिंधी
सिंह०	सिंहली
हि०	हिंदी

भौगोलिक आधारविषयक संक्षिप्त रूप

अमे०	अमेरिका
आन०	आजमगढ़
उ०	उत्तर
उ० प०	उत्तर-पश्चिम (बिहार प्रदेश का उत्तरी पश्चिमी भाग)
उ० प० बि०	उत्तर-पश्चिम बिहार
उ० पू०	उत्तर-पूर्व बिहार
उ० भा०	उत्तर भागलपुर
उ० मुँ०	उत्तर मुँगेर
गं० उ०	गंगा के उत्तर (बिहार)
गं० द०	गंगा के दक्षिण (बिहार)
गया	गया (जिला)
चंपा०	चंपारन
चंपा०-१	चंपारन-१, बंगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा०-२	चंपारन-२, अजगरवा, बड़कागाँव, चंपारन (पूर्वी चंपारन)
द०	दक्षिण (बिहार)
द० प०	दक्षिण-पश्चिम (बिहार)
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
द० पू०	दक्षिण-पूर्व (बिहार)
द० बि०	दक्षिण बिहार
द० भा०	दक्षिण भागलपुर
द० मुँ०	दक्षिण मुँगेर
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा-१, मधुबनी और सदर सबडिविजन
द० शाहा०	दक्षिण शाहाबाद
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
प०	पश्चिम

पट०	पटना
पट०-१	पटना-१—नारायणपुर, एकंगरसराय, (पूर्वी) पटना
पट०-२	पटना-२—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-३	पटना-३—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-४	पटना-४—पटना नगर से दक्षिण का भाग
प० बि०	पश्चिम बिहार
प० शाहा०	पश्चिम शाहाबाद
पू०	पूर्व
पूरि०	पूरिया
पूरि०-१	पूरिया-१—दक्षिण पूरिया
पू० बि०	पूर्वी बिहार
बिह०	बिहटा—साउथ बिहार शुगर मिल्स, बिहटा, पटना (पटना नगर से १७ मील पश्चिम)
बिहा०	बिहार (प्रांत)
ब्राजि०	ब्राजिल (अमेरिका)
भाग०	भागलपुर
भाग०-१	भागलपुर-१—बिसनपुर, शंभुगंज (बाँका सबडिविजन), भागलपुर (द० भाग०)
भाग०-२	भागलपुर-२—मोहदीनगर, अमरपुर (पो०), भागलपुर (द० भा०)
मग०-५	मगही-५—बरबीवा, मुँगेर
म० प्र०	मध्य प्रदेश
म० शाहा०	मध्य शाहाबाद
मुँ०	मुँगेर
मुँ०-१	मुँगेर-१—तारापुर, मुँगेर (द० मुँ०)
मुज०	मुजफ्फरपुर
मै०-२	मैथिली-२—मुजफ्फरपुर का उत्तरी-पश्चिमी भाग
री०	रीगा—रीगा शुगर मिल्स, रीगा (पो०) (सीतामढ़ी सबडिविजन) मुजफ्फरपुर (उत्तरी-पश्चिमी भाग)
शाहा०	शाहाबाद
शाहा०-१	शाहाबाद—श्रीशिवकुमार वर्मा, मन्सवारी (डुमराँव), शाहाबाद (द० शाहा०)
सा०	सारन
सा०-१	संपूर्ण सारन से तत्काल संगृहीत शब्द
हजा०	हजारीबाग
हरि०	हरिनगर—हरिनगर शुगर मिल्स, हरिनगर, चंपारन (पश्चिम चंपारन)

शब्द-संग्रह के विविध क्षेत्रों की सूची तथा उनका निर्देश

क्षेत्र-संकेत	संग्रहकर्ता का नाम	पता-ठिकाना
चंपा-१	श्रीगणेश चौवे,	बैंगरी, पो-बैंगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा-२	श्रीविद्यानन्द सिंह,	अजगरवा, डाक०-बड़कागाँव, चंपारन (पूर्व)
दर०-१	श्रीजयानन्द झा,	सलेमपुर, डाक०-खैरा, कोढ़ा (थाना), पूर्णियाँ (द०)
पट०-१	श्रीकांत शास्त्री,	नारायणपुर, डाक०-एकंगरसराय, पटना (पूर्व)
पट०-२	श्रीहरिप्रकाश,	सोहसराय, बिहारशरीफ, पटना (पूर्व)
पट० ३	श्रीकृष्णदेव,	" "
पट० ४	श्रीरामाधर शर्मा,	महेन्द्र, पटना-६ (पटना-नगर से दक्षिण के निवासी)
बिह०, री०, हरि०	श्रीविक्रमादित्य मिश्र,	भावल, रामनगर, चंपारन (द० प०)
भाग०-१	श्रीरामस्वरूप चौधरी,	बिसनपुर, शम्भुगंज, भागलपुर (दक्षिण)
भाग०-२	श्रीपंचानन चौधरी,	मोहदीनगर, अमरपुर, भागलपुर (दक्षिण)
मग०-५	श्रीबालमीकिप्रसाद सिंह,	बरबीघा, मुँगेर
मु०-१	श्रीसुरेश्वर पाठक,	तारापुर, मुँगेर (दक्षिण)
मै०-२	श्रीमुसाई झा,	अथरी, कटरा, मुजफ्फरपुर (उ० प०)
शाहा०-१	श्रीशिवकुमार जाल,	मकवारी, डुमराँव, शाहाबाद (उत्तर)
शाहा०-२	श्रीराजेश्वर प्रसाद,	मुरार, भोजपुर (परगना), शाहाबाद (द० प०)
शा०-१	श्रीअवधेशदेव नारायण,	दहियाँवा, छपरा

निर्देश-ग्रन्थ और उनके संक्षिप्त रूप

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
अग्रवाल०—	हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति	डॉ० बासुदेवशरण ना० प्र० पत्रिका	अग्रवाल काशी	५४, २००६ वि०, ४०-८६
अथर्व०—अथर्ववेद				
अने०—अनेकार्थसंग्रहकोश		श्रीहेमचंद्र	विद्याविलास प्रेस काशी	१६८५ वि०
अमर०—अमरकोश (त्रिकांशोपसहित)		श्रीविष्णुदत्त शर्मा, खेमराज	श्रीकृष्णदास, बंबई	१६२६ ई०
" "		रामाश्रमी टीका	" "	१९४४ ई०
अवधी०—अवधी कोश		श्रीरामाशा द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी	इलाहाबाद	१६५५ ई०
आक्स०—आक्सफोर्ड इंग्लिश-डिक्शनरी		आक्सफोर्ड, लंदन		१९५२ ई०

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
आप्टे०—आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी		श्रीवामनशिवराम आप्टे	प्रसाद-प्रकाशन, पूना	१९५७ ई०
	(परिवर्धित संस्करण)			
इंग० संस्कृ०—इंग्लिश-संस्कृत-डिक्शनरी		श्रीमोनियर विलियम	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१६५७ ई०
इटि० या०—इटिमोलोजीज ऑफ़ यास्क		डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा	होशियारपुर	१६५३ ई०
गुज० इंग०—गुजराती-इंग्लिश-डिक्शनरी		श्रीबेलशरे	बंबई-२	
गुत०—ग्रामोयोग और उनकी शब्दावली		डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त	दिल्ली	१६५९ ई०
ग्रामे०—ग्रामेटिकल संस्कृत इंग्लिश-डिक्शनरी		डा० सूर्यकांत शास्त्री		
ग्रिय०—बिहार पीजेंट लाइफ		जार्ज ग्रियर्सन	गवर्नमेंट प्रेस, पटना	१६२६ ई०
घाव०—घाव और मझुरी		श्रीरामनरेश त्रिपाठी	प्रयाग	१६४९ ई० (द्वितीय संस्करण)
चेम्बर्स०—चेम्बर्स इंग्लिश-डिक्शनरी		रेवरेंड टी० डेविडसन	लंदन	१९४६ ई०
त्रिक०—त्रिकांशोपकोश		श्रीविष्णुदत्त शर्मा	बंबई	१६२६ ई०
देशी०—देशी नाममाला		श्रीहेमचंद्र कलकत्ता-विश्वविद्यालय,	कलकत्ता	१६३१ ई०
देशी ना०—	"	"	पिशल पूना	
दो० को०—दोहाकोश		प्रो० बागची द्वारा संशोधित		
निष०—निषण्टु निरुक्तसहित		दुर्गस्वामीकृत टीकासहित	बंबई,	
निर०—निरुक्त		" "	" "	
नेग०—नेगाली-इंग्लिश-डिक्शनरी		डा० आर० एल० टर्नर	लंदन	१६३१ ई०
पा० स० म०—पाइअ-सह-महयन्त्रावो		प० हरगोविंददास	टी० सेठ कलकत्ता	१६७६-८० ई०
पाणिनि०—सिद्धांतकौमुदीस्थसूत्र-वाचस्पति			वाराणसी	१६४६ ई०
पाणिनि ग्रा०—पाणिनि'ज ग्रामेटिक			जर्मनी	
पालि०—पालि-इंग्लिश-डिक्शनरी		टी० डब्ल्यू रेज डेविड्स	लंदन	१६५२ ई०

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
मालि० इ०—	पान्ति-इंगलिश-डिक्शनरी	आर० सी० चाइल्डस	लंदन	
		द्वारा संपादित		
फैलन०—	ए थ्यू हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन	वाराणसी	१८७६ ई०
बैंगला०—	बैंगला-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	सर ग्रेव० सी० हॉटन	लंदन	१८३३ ई०
बिहारी०—	बिहारी सतवई			
बृहत्०—	बृहत् हिंदी-कोश	शानमंडल, वाराणसी		२००६ वि०
ब्राह्म०—	ज्यूल ब्राह्म का 'मराठी भाषेचा विकास' (ला फार्मेशन लैंगुए मराठे)	अनु० श्रीवासुदेव गोपाल परांजपे	पूना	१९४१ ई०
भा० नि०—	भावप्रकाश निघंटु	श्रीब्रह्मशंकर मिश्र, विद्याविलास प्रेस,	काशी	२००६ वि०
भारतीय०—	भारतीय साहित्य (शीघ्र-पत्रिका)	डॉ० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी-विद्यापीठ, आगरा-विश्वविद्यालय,	आगरा	
मरा० हि०—	मराठी-हिंदी-शब्द-संग्रह	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४६ ई०
माडर्न गुज०—	माडर्न गुजराती-इंगलिश-डिक्शनरी	मेहताद्वय द्वारा संपादित	बकौदा	१९२५ ई०
मुंडारी०—	मुंडारी-इंगलिश-डिक्शनरी	भादुरी	कलकत्ता-	१९३१ ई०
मेदि०—	मेदिनीकोश	विश्वविद्यालय		
		विद्याविलास प्रेस	काशी	१९६७ वि०
मैथिली०—	मैथिली-भाषा-कोश	पं० दीनबंधु का	दरभंगा	१८७२ शकाब्द
मो० वि० डि०—	संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	एम० एम० विलियम्स	लंदन	१९५१ ई०
लिग्वि०—	लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इंडिया	जार्ज ग्रियर्सन	कलकत्ता	१९२७-१९३० ई०
	(जिल्द-१, भाग-१; जिल्द ५, भाग २)			
रा० स०—	राजतरंगिणी			

बंबई

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
म्यु० को०—	मराठी-व्युत्पत्ति-कोश	श्रीकृष्णा नी पांडुरंगजी कुलकर्णी केशवजी भिकाजी धवले	बंबई-२	१९४६ ई०
शब्दा—	शब्दार्थ-चिंतामणि	सुखानंद-कृत	आगरा	१९२१ वि०
शारव०—	शारवत कोश	श्रीरियटल बुक-	पूना	१९२६ ई०
		एजेंसी, पूना		
शिव०—	शिवकोश	श्रीशिवदत्त मिश्र	पूना	१९५२ ई०
संता० डि०—	संताली-इंगलिश-डिक्शनरी	ए० कैमरेल	पोंडुरिया, मानभूम	१८६६ ई०
संस्क० शब्द०—	संस्कृत-शब्द-सागर	श्रीजीवानंद विद्याभार कलकत्ता		१९०० ई०
सुश्रुत०—	सुश्रुत-संहिता			
स्कोटिश०—	स्कोटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड)	डा० विलियम ग्रांट और डेविड डी० म्यूरसिम, एडिनबर्ग		१९४१-५२ ई०
हला०—	हलायुध-कोश		सरस्वती-भवन, वाराणसी	२०१४ वि०
हला०—	„	थामस आफरेट	एडिनबरा	१८६१ ई०
हास्य०—	हास्यन जासन	कर्नल हेनरी पुले	लंदन	१९०३ ई०
हिंदी उ०—	हिंदी-उद्-कोश	श्रीराधचंद्र वर्मा	हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई	१९०१ ई०
हिंदु०—	हिंदुस्तानी कोश	श्रीहरिशंकर शर्मा	आगरा	२००९ वि०
हिंदु० इंग०—	हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन (डॉ० सूर्यकांत द्वारा संपादित)		
हि० मरा०—	हिंदी-मराठी-व्यवहार-कोश	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४९ ई०
हि० श० स०—	हिंदी-शब्द-सागर	श्यामसुंदरदास आदि	ना० प्र० स० काशी	१९१६ ई०

कृषिकोश

अ

अँइठा—(सं०) संस के समान
एक कीड़ा। घोंघा(बं०-१)।
[आवेष्ट, (सं०), ऐंठा—
(हिं० सां० सां०)]



अँइठी—(सं०) (१) वह मजदूर,
जो मिट्टी ढोते समय कुबाल चलानेवाले के पास
रहता है (बं०-१)। (२) खेत के बीच का
वह भाग, जहाँ तक सोह कर मजदूर दूसरा 'पाह'
आरंभ करता है (बं०-१)। [देशी, मिलां-
आवेष्ट]

अँकटा—(सं०) गेहूँ, चना, मसूर, खेसारी आदि
के दानों में मिलनेवाला घास की जाति का एक
अनाज, जिसमें छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं;
इसकी दाल भी बनाई जाती है। (बं० सं०,
बर०-१, पट०-४)। पर्यां—अँकरा, अँकरी
(बं० सं०, शाहा०)। अटका (भाग-१)।
[अँकटा < अकटा < अकतअ < अकतक,
मिलां—अकट (प्रा०; दो० को० ७६)]

अँकड़र—(सं०) कंकरीली मिट्टी (शाहा०)।
दे०—अँकड़ी। [अँकड़+उर < अँकरपूर]

अँकड़ही—(बि०) दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०)।

अँकड़ा—(सं०) (१) बड़ा कंकड़ (शाहा०)।
(२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार
का कंकड़। दे० अँकरा। पर्यां—गँगटा—
(बं०-पू०), अँकड़ (भोज०, पट०)। [अँकुर]

अँकड़ाह—(बि०) वह मिट्टी, जिसमें कंकड़ हो
(बं०)। पर्यां—अँकड़ही—(बिहा० आज०)
[अँकड़+आह (प्र०) < अँकुर]

अँकड़ी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं
का खाद्य है (प०)। दे०—अँकता। पर्यां—अँकरी
(पट०-४)। (२) छोटी और महीन कंकड़ (बिहा०,

आज०)। पर्यां—गँगटी—(बं० पू०) अँकड़ी
(आज०)। अँकड़ी, (३) अनाज में पाया
जानेवाला छोटा कंकड़। [देशी (?) मिलां-
अँकुर]

अँकड़ल—(बि०) कंकड़ीली मिट्टी—(सां०)।
दे०—कँकराही। [अँकड़+एल < (इल)—
(सं०)]

अँकड़ौर—(बि०) कंकड़ीली मिट्टी—(प०)। दे०—
कँकराही। [अँकड़+और (प्र०)]

अँकता—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं
का खाद्य है (प० पट०, गया, बं० पू०)।
पर्यां—अटका, अकटा (बं० भाग०), अँकरी,
अँकड़ी (प०), भेखरी (गया, उ० प०),
भिलोर (उ०-प०)। [अँकता < अकतअ <
अकतक, मिलां अकट (प्रा० अप०)—दो०
को०—७६]

अँकरहिया मटर—(सं०) एक प्रकार की छोटी
मटर (भोज० आज०)। [अँकर+हिया (प्र०)
+मटर]

अँकरा—(सं०) गेहूँ में मिलनेवाला एक प्रकार का
घासपात, (प० सं०, शाहा०)। दे०—अँकटा। [दे०—
अँकटा]

अँकरी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जो
पशुओं का खाद्य है (प०)। दे०—अँकता। (२)
गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का
घासपात (प० सं०, शाहा०)। दे०—अँकटा।
[अँकर+ई० < अँकरा, [दे०—अँकटा]

अँकवार, अकवार—(सं०)

(१) दोनों भुजाओं के
अंदर भर जानेवाली फसल
का परिमाण। पर्यां—
अकवारा, पाँजा (पट०,



अँकवार

द०-पू० में०, चंपा०), अंकवार (आज०) ।
(२) दोनों भूजाओं से आलिंगन या अंक में
लगाने की रीति, इस अर्थ में प्रायः भेंट शब्द
के साथ समस्त रूप में प्रयोग होता है, यथा—
अंकवार भेंटल, मिला०-अंकौर । [अंकपालि,
अंकमाल]

अंकुड़ा—(सं०) मिलों में कोयला टालने या
उसकाने के लिए व्यवहृत होनेवाली लोहे की
छड़, जिसका अगला छोर टेढ़ा और दूसरी
ओर मूठ-जैसा बना होता है, जो हाथ से
पकड़ने लायक होता है (हरि०, री०) ।
पर्या०—कोलटारा (बिह०) [मिला० अंकुर,
अंकुरा]

अंकुड़ा—(सं०) गेहूँ का नया अंकुर (उ०-प०) ।
पर्या०—अंकुर (भाग०-१) डिम्भी, डाम्भी
(भाग०-१), सुइया (भाग०-१) । [अंकुर]
अंकुरा—(सं०) प्रथम-प्रथम जमीन से उगा हुआ
पौधा । [अंकुर]

अंकुराएल—(बि०) वह ऊल, जिसमें सबः अंकुर
निकला है (गया), अंकुरित। दे०—पुवारी ।
पर्या०—पनपा (पट०-४) । [अंकुरा+एल]
अंकुरी—(सं०) (१) पकने के पहले भोजन के
लिए कटा हुआ कच्चा अनाज (ब० भाग०,
चंपा०) दे०—गदरा । (२) पानी में फुलाया हुआ
चना, जिसमें अंकुर निकल
आया हो ।

अंकुसी—(सं०) (१) पेड़ से
फल तोड़नेवाली लम्बी के
अंतिम छोर पर बाँधी हुई
एक छोटी लकड़ी । पर्या०—
कानी (सं०-भाग०, पट०-४, चंपा०) । (२) हाथी के नियंत्रण के
लिए महावत द्वारा प्रयुक्त लोहे का
एक प्रसिद्ध हथियार, जिसको 'अंकुश'
भी कहते हैं । [अंकुश]

अलमुदनी—(सं०) मवेशियों की आँख
ढँकने के लिए बाँस की कमानों का बना
हुआ ढक्कन, जिसके ऊपर कपड़ा मड़ा रहता
है । पर्या०—पट्टर (भोज०), टप्पर

(चंपा०), छोपनी
(शाहा०), टोकनी—
(पट०, गया), खोलसा
(सं०) । [अल+
मुदनी<अल्लि+मुद्रणी]



अल्वरा—(बि०) ऐसा अलमुदनी
टोकड़ा, जिसके छेदों को बन्द करने के लिए
मिट्टी और गोबर नहीं लगाया गया हो ।
(चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१, गया)
[अल्वर=अ+ल्वर (=खाल)=शुद्धि]
अल्वरा—(सं०) ऊल के टोने का आँख-जैसा वह
स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (ब० प०
शाहा०, भाग० १) दे०—आँख । [अल्व]

अल्विया—(सं०) (१) ऊल का अंकुर (उ० में०),
(पट०-४) । दे०—आँख । (२) ऊल के टोने
का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निक-
लता है (उ० में०) । दे०—आँख । पर्या०—
अल्विया (भाग०-१) (३) गेहूँ और चावल के
आटे को मिलाकर तथा उसे गूँधकर और आँख
की आकृति का पिंड बनाकर पानी में उबाला
हुवा पीठा (पट०-४) । [अल्व, अल्वि, अल्विका]
अल्वियाय—(सं०) ऊल के टोने का आँख-जैसा
वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (ब०
भाग०) दे०—आँख । [अल्व, अल्विका, अल्विव]
अल्वइल—(बि०) दे०—अल्वइल ।

अल्वइल—(सं०) (१) ऊल के टोने का आँख-
जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है
(पट०, पू० में०, भाग०-१) । दे०—आँख ।
(२) ऊल का अंकुर (पट०, भाग०-१, आज०) ।
दे० आँख । (३) चावल से निकला हुआ वह कण,
जिसमें अन्न का कुछ अंश रहता है (चंपा०-१) ।
[अल्व+उल्लि<अल्लि, अल्लि] (४) बाजरे
का पहला अंकुर । पर्या०—सूआ, टिभिआ
(ब० में०), सुइया (ब० भाग०), अल्वइल,
अल्वइल (आज०) अल्वइल (बि०)=अंकुर
फूटना । सूआएल (बि०)=अंकुर फूटना ।
[अल्व, अल्वि, अल्विव] [सूआ, सुइआ<
सू/चका । (सूआएल=सूआ+एल-बि० प्र०)]
अल्वइल—(बि०) (१) अंकुरित पौधा
(शाहा०-१, चंपा०) । (बि०) (२) अंकुरित

(शाहा०-१) । [अल्वइल+इल (प्र०)<अल्वइल
<अल्व, अल्वि, अंकुर]

अल्वइल—(बि०) वह ऊल, जिसमें सबः अंकुर
निकला हो (पट०) । दे०—पुवारी । पर्या०—
अल्वइल (भाग०-१) [अल्वइल+एल
(=इल-बि० प्र०)<अल्वि]

अल्वइल—(सं०) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं)
में लगी हुई घुरी, जिस-
पर लाठा लटकता है
(ब० में०, पट०-४) ।
दे०—अल्वइल । पर्या०—
अल्वइल (भाग०-१)



[अल्ववत्, अल्ववत्] अल्वइल
अंग उंग—(सं०) दे०—अंग उंग ।

अंगउ—(सं०) सल्लिहान में तैयार नये अन्न में से
ब्राह्मण के लिए निकाला हुआ अंश (प०) ।
दे०—अंगउ तथा विसुनपिरित । [अंगउ]
अंगउंग—(सं०) गृहस्थ के द्वारा ब्राह्मण के लिए
अन्न में से निकाला हुआ अंश (शाहा०) ।

अंगरवार—(सं०) तुरत कटे हुए ऊल के रखने का
स्थान (शाहा०) । दे०—टोनियारी । [अंगर
अप्रकाएड, अंगर+वार<अप्रकाएड-वाट]

अंगरा—(सं०) (१) तेज पछवा हवा के कारण
होनेवाला अनाज का एक रोग (पाला) (उ०
प०, चंपा०, शाहा०) । पर्या०—भरका (सा०,
मं०, पट०-४), सुरका=अफीम में लगा एक
रोग (चंपा०) । (२) धान की फसल का एक
रोग, इससे धान का पौधा पीला हो जाता है और
जलने लगता है (चंपा०) । [अंगरा] टि०—
इस रोग से बचने के लिए केले का थंभ खेत
में गाड़ दिया जाता है (चंपा०-१) ।

अंगरवाह—(सं०) कोल्हू के लिए ऊल के लंबे-
लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (प०) । दे०—
कानू । [अंगर+वाह<अप्रकाएड+वाह]
टि०—'वाह' या 'वाहा' 'हलवाहा' का शब्दांश
है, जो दूसरे शब्दों के अंत में जुटकर 'करने-
वाला' आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है—जैसे,
चरवाहा=चरानेवाला, भैंसवाहा=भैंस चराने-
वाला आदि ।

अंगवरिया—(सं०) मजदूरी में नगद या अनाज न

लेकर तीन दिन खेत के मालिक का हल चला
लेने के बाद एक दिन के लिए उसी हल से अपना
खेत जोतनेवाला हलवाहा । पर्या०—अंगव-
रिया, अंगवार (प०), सेपटा (सा०, चंपा०,
मं०, उ० पू० में०, आज०), तिसरी, तिसरिया ।
[अंग+वरिया (=वार)<अंगवार, अंकपाल]
अंगवार—(सं०) (१) दे०—अंगवरिया । (२)
दवाई (बौनी) किए हुए अन्न की राशि में हल-
वाहे का भाग (भाग०) ।

अंगवारा—(सं०) (१) सम्मिलित खेती में अपने-
अपने हल-बैलों से बारी-बारी करके अपने खेत
जोतनेवाले किसान (प०) । (२) दे०—
अंगवरिया ।

अंगा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान, जो
विशेषतया ऊँची जमीन में पैदा होता है और
इसका धूक काला होता है (चंपा०-१, मं०) ।
(२) कुरता, चपचकन । [अंगम मो० बि० डि०]
अंगारी—(सं०) कोल्हू में डालने के लिए काटी
हुई ऊल की टुकड़ी (ब० प० शाहा०) ।
दे०—गेंड़ी । [अपकांड, अंगारिका]

अंगुरियावल—(बि०) किसी फल की बतिये
को उँगली दिखाना । 'किंवदंती' ऐसी है कि इस
तरह उँगली दिखाने से वह बतिया सूख जाती
है (चंपा०-१) । [अंगुर+इयावल (ना०
धा० प्र०) = 'अंगुलीयति' के अर्थ में]

अंगेड़ीहा—(बि०) ऊल की खड़ी फसल को काटने
वाला । पर्या०—गेंड़वहिया (उ० प०), पजवाहा
(मं०), पगरवाह (मं०), पंगरवाह (मं०),
गेंड़छीला (शाहा०), छोलवा (ब०-प०
शाहा०), केतरपार (पट०, गया), केतरपारा या
पतरपारा (ब० में०), घुरकट्टा या कटनिया
(ब० भाग०) । [अप्रकांड-वाह, अंगेड़ी+हा]

अंगेर—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊल के
ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग के
बजाय-जल्दी उगता है (सा०) । पर्या०—
अंगेरा (गया), अंगारी (पट०), अंगरा
(ब० में०), अंगा (ब० भाग०) बधिया (मं०
उ०), फुनगी (उ० प० में०), अंगोर,
अंगोरी (आज०) । [अप्रकांड—कांड का
अप्रभाग, अम, अंगारिका] (२) चारे के

लिए काटा गया ऊँख के ऊपर का हरा भाग (सा०, पट०-४) दे०—अंगेर । [अग्रकांड]
अंगोरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊँख के ऊपर का (सिरा) टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (गया) । दे०—अंगेर । [अग्रकांड]
अंगोरी—(सं०) (१) ऊँख के ऊपरी भाग की पत्तियाँ । (२) ऊँख के ऊपर का भाग । (३) चारे के लिए काटा गया ऊँख के ऊपर का हरा भाग (गया, पट०, बिह०) ।—कड़ल—(मुहा०) ऊँख के सूखे और हरे पत्तों को अलग करके उसे साफ करना (बिह०) । दे०—अंगेर । [अग्रकांड, अंगारिका]
अंगौठी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए एक प्रकार का लंबा नोकदार फावड़ा (पट०-४) । दे०—आभी, फोरा । [देशी]
अंगोरा—(सं०) गोयटे, लकड़ी आदि की आग का लहलहाता हुआ पिंड (चंपा०-मुं०-१, भाग०-१) । मुहा०—अंगोरा टरल—क्रिस्मत में आग लगना (मुं०-१) [अंगार]
अँचताहर—(सं०) गुड़ बनाने के समय चूल्हे में आग शोकनेवाला व्यक्ति । (ब० मुं०, पट०-४, गया) । दे०—कानू । [अँचता+हर<अँच (ता-आगम)+हर<अँचिहर]
अँचवाहा—(सं०) चूल्हे में आग शोकनेवाला व्यक्ति (पट०, भाग०-१) । दे०—कानू । [अच+वाहा<अँचिवाह]
अँडिया—(सं०) चूल्हे के ऊपर का छिद्र (मुं०), जिस पर पान रखा जाता है (पट०-४, भाग०-१) । दे०—आँधी । [अँचि, अँडि]
अँजुर—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अंजलिमात्र) अन्नपरिमाण (शाहा०) पर्या०—आँजुरी (गया) । [अँजलि]
अँजुरा—(सं०) अन्न बोने के समय मजदूरों को दिया जानेवाला अंजलिमात्र अन्न का उपहार (भाग०-१) । [अँजलि]
अँजुरी—(सं०) (१) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रति हल एक या दो सेर लिया जानेवाला अंश (सा०, पट०) । पर्या०—

आँजुर (शाहा०) (२) दोनों हथेलियों को मिलाकर कटोरी जैसी बनाई गई आकृति, अंजलिपुट । (३) अन्न की राशि में से तोलते समय दोनों हथेलियों से दान देने के लिए निकाला हुआ अनाज । [अँजलि]
अँजोर—(सं०) उजाला [अरुणज्योतिर, उज्ज्वल—(हि० श० सा०)]
अँजोरिया—(सं०) शुक्लपक्ष की रात, जबतक आकाश में चंद्रमा उदित रहता है (चंपा०-१) । पर्या०—अँजोरापाख—(आज०) = शुक्लपक्ष; दे०—अँजोरिया [अँजोरिया' इँजोरिया <इन्दुज्योतिर या ज्योतिस्, अँजोर<उज्ज्वल—(हि० श० सा०)]
अँटकल—(कि०) किसी सँकरे छेद में किसी चीज का बीच में ही रुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१) । [अँटक+ल=अ+टिक (ल)—(हि० श० सा०)]
अँटकाइल—(कि०) अँटकाना, फँसाना । अँटक+आइल (प्र०)<अटक]
अँटकारल—(कि०) पानी की गहराई का किसी चीज से अंदाज करना (चंपा०-२) ।
अँटकाव—(सं०) रोक, प्रतिबन्ध (सा०-१) । उदा०—हमरा खेत में पानी के अँटकाव नइ ले ।
अँटकावल—(कि०) अँटक क्रिया का प्रेरणापथक रूप, अँटकाना । (बि०) अँटकाई हुई ।
अँटल—(कि०)—समाना, घुसना, ठीक-ठीक बैठ जाना । पहुँच जाना (मुं०-१, पट०-४) ।
अँटल—(बि०)—समाया हुआ । ठीक आया हुआ । (चंपा०-१, भाग०-१) ।
अँटावल—(प्र० कि०) आगे चलनेवाले को छू लेना । घुसाना । आँट देना (मुं०-१) ।
अँटिया—(सं०) (१) अँवाँसा या ओल्ला से भी बड़ी फसल की राशि (आँटी) । पर्या०—पसही (चंपा०, उ० पू०—नं०), दोमड़ा (ब० पू० शाहा०) । टि०—आँटी या अँटिये का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है—यथा अगली लोकोक्ति से स्पष्ट है—'कोड़ कटनिहार के मुँगर सन आँटी' [हि०-आँटी—(हि० श० सा०) । अँडिका>अँडिआ>

अँडिआ>अँडिआ>अँटिया। अँडिका = चार जो का एक परिमाण (मु० बि० टि०) । पसही<प्रसूतिः । दोमड़ा<द्विमोट (मोट = बंडल-मु० बि० टि०)]
(२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा बढ़ई को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (आँटी-भर) धान (चंपा०) । पर्या०—सौंगन (पट०-४) दे०—बोसा ।
(३) रोपने के लिए तैयार उखाड़े हुए बीजों के पीवों का पूला (बंडल) (गं० उ०, ब०-पू०, अँटिया आज०) । दे०—आँटी [अँडिका] (४) अनाज निकालने के बाद पुआल की आँटी (बंडल)—(गं० ब०, सा०, आज०) दे०—पूला (५) घास, लकड़ी या किसी फसल आदि का बाँधा हुआ पुल्ला या गट्टा, जो दोनों हाथों से पकड़ा जा सके । (चंपा०-१, भाग०-१) । (६) आँटी, पुल्ला, छोटा बोझा (मुं०-१) । [अँडिका]
अँटियावल—(कि०) (१) अँटिया या पुल्ला बाँधना (मुं०-१, पट०-४) । (२) गायब या हजम करना । दे०—अँटिया । [अँटिया+ना<अँटिया<अँडिका]
अँटियावल—(बि०) घास, लकड़ी या धान आदि का बाँधा गया मुट्ठा (चंपा०-१, पट०-४) । [अँटिया+आवल<अँटिया<अँडिका]
अँटिया—(सं०) एक प्रकार का केला (बर०-१) । [आँटी+इया<अँडिल]
अँटियावल—(कि०, ना० वा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, आम आदि फलों में आँटी होना (मुं०-१, पट०-४) [अँडियन]
अँठिली—(सं०) (१) आम की गुठली । (२) दे० अँठली । [अँडिलिका]
अँठुली—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गया) । पर्या०—अँठिली, अँठी (ब० पू० शाहा०, गया) । [अँठिल—(मिला०—अन्नच्छा चाम्लोप्याम्—(मेवि०)]
अँडू—(सं०) रेंडी का पीघा (उ० पू० नं०,

ब० भाग०) । दे०—रेंड । पर्या०—अँडी (भाग०-१) । [एरंड]
अँडूकी—(सं०) रेंड का बीज (उ० पू० नं०, ब० भाग०) पर्या०—अँडी (भाग०-१) ।
अँडूरी—(सं०) रेंड का बीज, जिससे तेल निकलता है । (उ० पू० नं०, ब० भाग०) । दे०—रेंडी । [अँडूर+ई<एरंड]
अँडा—(सं०) रेंडी का पीघा । (नं०, ब० भाग०) । दे०—रेंड । [एरंड (संस्कृ०), अँडेरि (ने०)]
अँडास—(सं०) दे०—अँडास ।
अँडिआवल—(कि०) बँल के रुक जाने पर उसके अंडकोष में खोदकर उसे आगे बढ़ाना (सा०-१, पट०-४, भाग०-१) [अँडियाव+ल, अँडि+इयाव (ना० वा० प्र०), अँडि<अँड]
अँडिया—(बि०) बधिया न किये हुए बँल आदि पशु (मुं०-१) । पर्या०—अँडू (पट०-४, भाग०-१), अँडीवा—(भाग०-१) । [अँडिक, अँडवान]
अँडी—(सं०) (१) रेंड का पेड़, रेंड का बीज । (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा (नं०, ब० भाग०, भोज०, मग०) । दे०—रेंडी [एरंड (संस्कृ०) अँडेरि (ने०)]
अँडि
अँतरा, अँतर—(सं०) पान की लताओं या पंक्तियों के बीच का स्थान । पर्या०—दौज (ब० पू०), दौंगर (पट०, गया०), पाहे (ब० पू० नं०) [अन्तरा>अँतरा>अँतर । पार्श्व>पाह>पाहे]
अँदार—(सं०)—अनार (पट०-१) [अनार (का०)]
अंधड़—(सं०) आँधी (बर०-१, पट०-४, भाग०-१ चंपा०, भोज०) पर्या०—अंधर (भाग०-१) । [अंध—(हि० श० सा०), अंधकार । अंधः>अंधा, अंधकी रात्रि (नेपा०)]
अंधरी पटावन—(सं०) ऊँख की पहली सिचाई (ब० भाग०) । दे०—गडाबार पर्या०—मिलानी—(भाग०-१) । [अंधरी+पटावन]



अधियारी—(सं०) मवेशियों की आँख का दक्कन (पट०)। दे०—अनपट पर्या०—टोकनी (पट०-४), खोलसा (भाग०-१) [अन्ध, अन्धकारी]

अधेरी—(सं०)—प्रायः माघ महीने में की जाने-वाली ऊख की पहली कोड़नी (सा०, ६० मं०) पर्या०—अन्हरी, मुरनी (भाग०-१)। दे०—अधेरी कोरन।

टि०—संभवतः कृष्णपक्ष (अन्हरिया) में पहली कोड़नी के कारण इसे अधेरी (अंध) कहते हैं। यह कोड़नी प्रायः ऊख उगने के पहले की जाती है, इसलिए भी संभव है।

अधेरी कोरन—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कर्मनी (कोड़ाई)। पर्या०—चालन (पट०), उलमन (गया, प०), अधेरी, माड़नी (सा०, ६० मं०), अन्हरी कोरनी (भाग०-१), मुरनी (६० भाग०)। गं० उ० में इसका कोई विशेष नाम नहीं है।

अँवरा—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़ या फल, जो दवा, मुरब्बा, अचार आदि के काम में आता है (शाहा०-१)। दे०—औरा। [अमलक]

अँवासा—(सं०) मूठा या प्ला से बड़ी फसल की राशि (उ०-१०)। पर्या०—ओल्हा (उ०-मं०), आहुल, अहुला (पू०-मं०) [देशी]

अँसुआढार—(सं०) बैलो का एक दोष। इसमें बैलों की आँखें लाल और मलिन रहती हैं तथा आँखों से आँसू गिरते रहते हैं। यह बैल अत्युत्तम माना जाता है (पट०-१) [अँसुआ + ढार < अँसु + अश्रु; ढार ढाल < धाल < ध्वल?]

अउठिआवल—(क्रि०) ढँकी में किसी चीज को कूटते समय ओखल के बाहर गये हुए अल को भीतर करना (चंपा०-१)। [(अउठिआव + ल - अउठि + आवल < अवस्थापन), अउठी < ओछी, ओछीयन]

अउल—(सं०) काफी गर्मी पड़ना और हवा का बंद हो जाना (चंपा०-१)। [आकुल]

अउस—(सं०) हवा का बंद हो जाना और काफी गर्मी पड़ना (चंपा०-१), पर्या०—गुमसा (भाग०-१)। [ऊष्मा, ओष < उष दाहे]।

अउसल—(क्रि०), गर्मी के कारण किसी कच्चे

चीज (खानेवाली चीज) का मलायम होकर सड़ने लगना (चंपा०-१, पट०-४) पर्या०—अउसाइल, गुमसाइल (भाग०-१)। [अउस + ल < अउस < ऊष्मा, ओष < उष]

अकटा—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (६० भाग०)। दे०—अकता। पर्या०—अकटा—(बर०-१); अटका (भाग०-१)। [अ + कटा < अकटा < अकता < अकतअ > अकृतक, मिला० अकट (सं०) को०-७६]।

अकड़ी—(वि०) बिना छाँटा हुआ चावल आदि (६० मं०-१, चंपा०)। पर्या०—एकड़ी (पट०-४), अकड़ी चाउर—(भाग०-१)। [अकड़ + ई > अकड़ < अकट < अकत < अकृत, मिला० अकुर]

अकराह—(सं०) बारीक कंकड़ी मिली हुई कड़ी मिट्टी (गं० उ०, प०, ६० मं०)। छराही (६० पू० मं०)। [अकरा + ह < अकरा < अकुर]

अकरी—(सं०) बिना साफ किया चावल। पर्या०—एकरी, एकरी। [अकर + ई < अकर < अकट < अकत < अकृत]

अकवार, अँकवार—(सं०) दोनों भुजाओं के अंदर भर कर आने वाला फसल का परिमाण (६० पू० मं० चंपा०)। अकवारा पाँजा—(भाग०-१) दे० पाँजा [अकमाल, अकपालि]

अकवारा—(सं०) दे० अकवार (भाग०-१) [अकमाल, अकपालि]

अकालगीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। दे० अकालबीर [अ + काल + गीर, अकालबीर < अ + काल + बीर < अकालधीहि]

अकालबीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (पू० मं०)। पर्या०—अकालगीर (सा०), कालागीर (उ० पू० मं०) (यह केवल गंगा के उत्तर विशेषकर पूर्वी भाग में प्राप्त होता है)।

[अ + काल + बीर < अकालधीहि]

अकासी—(सं०) खेत से बिड़िया आदि को अगाने

के लिए किसी पेड़ में डोरी बाँधकर लटकाया हुआ ताड़ का पत्ता या टिनका टुकड़ा, जो डोरी खींचने से आवाज करता है। (६०-पू० मं०) दे०—डबडबा। [आकाशीय, अंकुरा < अकसी < अकासी]।

अखउत—(सं०) पानी पटानेवाले लाठे की वह छोटी लकड़ी, जिसमें घुरी लगी रहती है तथा जिस पर लाठा बँटाया हुआ रहता है (शाहा०-१) [अस + उत < अक्षवत्]।

अखेना—(सं०) मछली पकड़ने के लिए पानी से सटा हुआ खोदा गया गड्ढा, जिसमें मछलियाँ कूद कर पड़ तो जाती हैं, पर निकल नहीं सकती (चंपा०-१)। [अ + खेना, अस + ना < अक्ष (?)]

अखरा—(वि०) १ बिना धोया कूटा हुआ (अन्न)। २ बिना धी लगाई हुई (रोटी) (शाहा०-१) [अ + खरा < अ + क्षाल]। ३ बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ धो (पट०-४) दे० गुरी। पर्या०—अखरी (६० मं०), अखरो (६० भाग०); आँवट (उ०-प० वि०, ६० पू० मं०, भाग०-१)। [अ + खाल, अ (सं०) + खरा (हि०) - (हि० शा० सा०)]।

अखरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ धो (६० मं०) (दे०-अखरा) पर्या०—अखरो बिना भिगोया हुआ (भाग०)। [अ + क्षाल]।

अखरो—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ धो (६० भाग०)। दे०—अखरा पर्या०—अखरS—भाग०-१ [अ + क्षाल > अखर > अखरो (श्री बर्णामण स्थानीय उच्चारणार्थ)]

अखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी पशु द्वारा सींग से नाद या जमीन को कोड़ना (चंपा०-१, पट०-४) (२) खेत की गहरी कोड़ाई करना (चंपा०-१) पर्या०—अखनवाही; डुरS—(भाग०-१); सिझाडS भाग०-१)। [उखाड़ + ल < उत्खातन, < उत्खनन उत्खनन < उत् + खन्]।

अखादी कोड़न—(सं०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो अखाड़ या भार्वा नक्षत्र में होती है। पर्या०—अदरा के कोड़नी, असाई कोड़न (प०), पासा (गया)। [आषाढीय + कुदलन (?) = कोड़न]

अखाद—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म ऋतु का अंतिम मास, जून के अंतिम और जुलाई के आदि के १५ दिन। (इस मास की पूर्णिमा के दिन प्रायः उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है, अतः आषाढ़ नाम पड़ा है)। पर्या०—आसाद। अखाद (भाग०-१) [आषाढ़] टि०—असाढ़ मास में ही धान की बोवाई होती है, अतः इसका बहुत महत्व है। इस महीने में धान की बोवाई होती है और धान रोपने के लिए खेतों को जोत-कोड़ कर तैयार किया जाता है। भार्वा में धान की रोपनी प्रायः हो जाया करती है, कभी-कभी वर्षा की देरी से पुनर्वसु और पुष्य तक भी होती है। किंतु, बाद का रोपा धान अधिक फलवान नहीं होता। असाढ़ मास की महत्ता तो सर्वसोभावेन है जैसा कि अगली कहावत से प्रतीत होता है—

“जेकर बनल अखड़वा रे तेकर बारहो मास।” —जिस किसान के खेत आषाढ़ महीने में तैयार हो जाते हैं उसके बारहो मास अच्छे ही रहते हैं।

अखादी—(सं०) (१) आषाढ़ में बोयी जानेवाली मील की दूसरी खेती (गं० उ०)। दे० फगुनी। २-आषाढ़ में उत्पन्न होनेवाली फसल या धांस आदि—(भाग०-१)। [अखाद + ई < आषाढीय] अखेता—(सं०) खेत की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई घुरी, जिस पर लाठा लटकता है (गया, पट०)। दे०-अखेता [अक्षवत्, अक्षकूट]

अखेद—(सं०)—[गया०, पट०] दे० अखेता। दे०-अखेता [अक्षवत्, अक्षकूट]

अखेन—(सं०) (भाग०-१)। दे० अखेना।

अखेना—(सं०) खलिहान में दोनों के समय पुवाल या डंडल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लम्बी, जिसके अंतिम छोर में लोहे का काँटा आदि लगाकर उसे मुकीला बनाया जाता है। (पट०, गया, ६० मं०, भाग०-१)।

अखेना दे० अखेता पर्या०—अखेनS (भाग०-१)।



[आखनन (हि० शा० सा०), अक्षायि = अक्ष + आयि]
 अखैत—(सं०)—दे०—अखैत। पर्या०—खेना, अखेना (पट०, गया, मुं०), अखैत, अखैना (द०-प० शाहा०), अखैनी (द० भाग०), अखैत—भाग-१, अखैनी (आ०)। [आखनन (हि० शा० सा०), अक्ष+अयि = अक्षायि]।
 अखैता—(सं०) खलिहान में दोनो के समय पुआल, टंठल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लगी, जिसके अंतिम छोर में लोहे का टेढ़ा काँटा लगाकर या उसी लगी की पतली (करची) शाखा को छोड़कर नोक बनायी जाती है।
 अखैला—(सं०) वह घुरी जिस पर ढेंकी काम करती है (पट०) दे०—अखौता। [अक्ष + कालि]
 अखौतो—(सं०) पानी पटाने के लिए गाड़े गये खंभे की दोनो कानियों (शाखाओं) में लगी हुई घुरी, जिस पर लाठा लटकता है (द० भाग०)। दे०—अखौता। पर्या०—अखौत—(भाग-१) [अक्षवत्, अक्षकृत]।
 अखौत—(सं०) (१) ढेंकी की घुरी। पर्या०—अखौता, माँझा (चंपा०, उ० पू० मं०) बोलनी (उ० पू० मं०), डंडा (उ० पू० मं०), रनकी (पट०), असकलाइ (द० भाग०), सारा (द० पू० शाहा०) (२) (सं०) दे०—अखौता। (३) पानी पटाने के काम के लिए कुएँ में लगी घिरनी की घुरी, जिस पर घिरनी नाचती है। पर्या०—अखौता डंडा (चंपा०, द० पू० मं०), सररा (द० पू० शाहा०), टोना (पट०)। [अक्षवत्, अक्षकृत, अक्ष+औत]।
 अखौता—(सं०) (१) वह घुरी जिस पर ढेंकी काम करती है (पट०, सा०)। पर्या०—अखौता (गया), अखैला (पट०), माँझा (चंपा०, उ० पू० मं०), किल्ला (द० पू० मं०), डंडा (पू० मं०)। (२) पानी पटाने के लिए लगे खंभे की दोनो कानियों (शाखाओं) में लगी हुई घुरी, जिसपर लाठा लटकता है।



अखौता

(दे० अखौत) पर्या०—अखौत, अखौतो (द० भाग०), अखौता (द० मुं०), अखैता, अखैद (पट० गया), माँझा (चंपा०, गया), टोना (पट०)। [अक्षवत्, अक्षकृत]।
 अगडड़—(सं०) मजदूरों की दो जानेवाली अग्रिम मजदूरी (चंपा० १)। दे०—फाजिल। अगडर (भाग-१) [अग्रहर, अग्रवलि, अग्रिम]
 अगडून—(सं०) दे०—अगार।
 अगड़ा—(सं०) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊँर का हरा भाग (द० मुं०, भाग-१) दे०—अगेंड़। [अग्र+डा/अग्रकारण, अगारिका]
 अगड़ा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—बलकट। [अग्र+डा/अग्रकारण]
 अगदौर—(सं०) (द० भाग०) दे०—फाजिल पर्या०—अगौर—(भाग-१)। [अग्र+दौर/अग्र+दौर, दौर/दौक/दौक]
 अगदाई—(सं०) दोनो में घूमनेवाला रुख से तेज बेल (पट०, द० मुं०, भाग-१) दे०—पाट। पर्या०—एकदईआ (पट०-४)। [अग्र+दई/अग्रदमिन्]
 अगदाइन—(सं०)—(गया)। दे०—पाट। [अग्र+दाइन/अग्रदमिन्]
 अगदाएँ—(सं०)—द० पू० मं०)। दे०—पाट। [अग्र+दाएँ/अग्रदमिन्, अग्रदम्य]
 अगदैयों—(सं०) (गया)। दे०—पाट। [अग्र+दैयों/अग्र+दम्य, (+दमिन्)]
 अगवर—(सं०) गृहदेवता (भूमिनेस) के लिए नए तैयार अन्न में से निकाला गया अंश (शाहा०)। दे०—अगौ। पर्या०—अगहर—(द० शाहा०)। [अग्र+वर/अग्रवलि]
 अगरपाट—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जलप्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (उ० पू० मं०, चंपा०)। दे०—अपटा। [अगर+पाट—देशी (१)]
 अगरबन्धू—(सं०) काटने के लिए तैयार ऊख का पोषा (पट०)। पर्या०—अगरबन्धू (गया), डाँड़ (द० पू०) (अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है)। [अग्र+बन्धू/अग्र+बन्ध (P)]।
 अगरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के

ऊँर (विर) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (पट०-४)। दे०—अगरी। पर्या०—छिप (भाग-१)। [अग्र, अग्रकारण]।
 अगरी—(सं०) बोझों की कतार (चंपा०—१)।
 अगला—(सं०) धान के ढंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चंपा०, गया)। दे०—बलकट। [अग्र+श]।
 अगलो—(सं०) बाँस की फुनगी की ओर का हिस्सा (चंपा०-१)। पर्या०—अगगा (भाग-१)। [अग्र+श]।
 अगवद—(सं०) १—हलवाहे की अगाऊ (अग्रिम) से जानेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०—अगवार अघार (भाग-१); अगौरी (द० पू० मं०), हकीरी (उ० पू० मं०), लगुआ (सामा०)। [अग्र+वद/अग्रवृत्ति, अग्रवलि (बलि=भाग, अन्न, भोजन, अन्न)]। २—अगारु (अग्रिम) मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर, (उ० पू०)। पर्या०—अगवदजन (उ० पू०), साओख (द० भाग०), कमाई (प०), कनियाँ (पट०, गया, द० मुं०), लगुआजन पहले से लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। सटीअर (भाग-१) [अग्रवलि]
 अगवदजन—(सं०) (उ० पू०)। दे०—अगवद। [अग्र+वद+जन/अग्रवृत्ति+जन, अग्र-वलि+जन]।
 अगवन—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूब (द० पू० शाहा०)। दे०—आधी। पर्या०—छोड़िया (पट०-४)। सवेया, दोबरा, डेड़िया (भाग-१)।
 अगवन—(सं०)—(शाहा०)। दे०—फाजिल। [अग्र+वन/अग्रपण्य, अग्रिमान्न]।
 अगवर—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (द० पू०, पट०-४)। दे०—अगवार। [अगवर/अवर?]।
 अगवरिया—(सं०) दे०—अगवरिया।
 अगवार—(सं०) (१) फसल के बोझों को हटाने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (गं० उ०—सामा०), पर्या०—सहार (भाग-१), अगवार, अगवारी (प०)=ओसाने के समय हवा में भूसा

के साथ उड़नेवाला (निष्फल=खल्ला) अनाज। भाठ (गं० उ०—सामा०), तरी (सा०, गं० द०)। [अवर]। (२) घर के सामने का भाग (चंपा०-१)। (३) खेतिहर मजदूर के लिए खलिहान से निकाला हुआ अन्न का भाग (चंपा०-१)। [अग्र+वाट=स्थान]।
 अगवार, अगवारी—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (प०)। पर्या०—अगाड़ (चंपा०, पट०, गया), अगवर (द० पू०)। [अवर]।
 अगवारी—(सं०) दे०—अगवार।
 अगवांसा—(सं०) घर के आगे की जमीन (शाहा०-१)। [अग्र+वांसा/अग्र+वांस]।
 अग्रस्त—(सं०) एक प्रकार का लंबा वृक्ष, जो शरद ऋतु में फूलता है और जिसका फूल सफेद होता है (पट०-१)। [अग्रस्त्य]।
 अगहन—(सं०) आग्रहायण, भारतीय वर्ष का नवम और हेमन्त ऋतु का पहला महीना। (आयः नवम्बर के अंतिम और दिसम्बर के आदि के पंद्रह दिन)। इस मास की पूर्णिमा के दिन भृगुशिरा नक्षत्र का उदय हुआ करता है। अतः इसका नाम मार्गशीर्ष भी है। (मार्गसर पं०) < मार्गशीर्ष)। कभी इस महीने के बाद से वर्षारंभ होता था, इसलिए इसे आग्रहायण (अग्रहायण-मस्य = इसके आगे वर्षारंभ होता है) कहते हैं (सर्वत्र)। [आग्रहायण (< अग्र+हायन) > अगहन]।
 अगहनिया—(वि०), (शाहा०-१)। दे०—अगहनी। [अगहन+इया/अगहन < आग्रहायण/अग्र+हायन]।
 अगहनी—(सं०)-(१) अगहन महीने में होनेवाला धान या अन्य फसल (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) अगहन महीने में कटनेवाली फसल (धान) (द०-१; भाग०-१ आ०)। [अगहन+ई/अग्रहायणीय]।
 अगहनुआ—(सं०)-(१) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (सा०, चंपा०)। दे०—लरही। यो—अगहनुआ कुट्टी—अगहन मास में की जानेवाली चावल, चूड़ा आदि की कुटाई (भाग०-१)। [अगहन+उआ (वि० प्र०)]।

अगहर—(सं०)—(२० शाहा०)। दे०—अगवर।
[< *अग्रहार]।
अगाउर—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (२०-५० मं०)। दे०—फाजिल। [अगाउर, अग + आउर, अगा + उर < *अग्रवलि]।
अगाड़—(सं०) ओसाने के समय हुआ मँ भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (चंपा०, पट०, गया)। दे०—अगवार। [अग्र, अवकर]।
अगार—(सं०)—(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०)। दे०—फाजिल [अगार < अगवार < *अग्रवृत्ति < *अग्रवलि २-शील का वह छोर, जहाँ उसका अंत हुआ हो—(चंपा० १)। [अग्र]।
अगार, अगारी—(सं०)—हुए के ऊपर बरहे (मोटा रस्ता) से जुड़े हुए ढँकुल के डंडे का अगला भाग (भाग०-१)। पर्या०—अगड़न (पट०-४)। [अगार < अगार < *अग्र]।
अगारी—(सं०)—(१) बीज के लिए काटे गये ऊँस के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्द उगता है (पट०)। दे०—अंगेरी। [अग्रकाण्ड, अंगेरी=ऊँस का टुकड़ा (दे०-ना० सा० हेम०)]। (२) दे०—अगार। [अग्र]।
अगिया—(सं०) एक प्रकार की घास, जो घान के पौधे को जला देती है। [अग्नि]।
अगोड़—(सं०)—(१) पशुओं को चारे के रूप में दिया जानेवाला ऊँस का ऊपरवाला भाग (पट०-४, प०)। [अग्रकाण्ड]। (२) ऊँस के ऊपरवाले शिखर की पत्तियाँ। (३) चारे के लिए काटा गया ऊँस के ऊपर का हरा भाग (सा०)। पर्या०—गोड़ (२०-५० शाहा०), अंगेरी (गया, पट०), अगारा (पट०), पगार (मं०), छीप (पू० मं०), पगड़ा (२० पू०), अगड़ा, पगड़ा (भाग०-१)। [अग्रकाण्ड, पगार < *प्रायःप्र + अग्र, *पत्राय, छीप < *क्षिपा, क्षीप]।
अगोड़—(सं०) ऊँस के ऊपर का कटा हुआ हरा भाग, जो चारे के काम में आता है (सा०)। पर्या०—अंगेरी (सा०), गोड़ (चंपा०, शाहा०), अंगेरी (गया, पट०), अगारा (पट०), अगाड़

(२० मं०), पगार (मं०), पगड़ा (२०-भाग०)। [अग्रकाण्ड, पगार < पगड़ < *प्रायःप्र, पत्राय]।
अगोरबंधू—(सं०) (गया)। दे०—अगरबंधू। [अगोर + बंधू < अग्रबन्ध]।
अगोरनिहार, अगोरिया—(सं०) फसल या अनाज की रखवाली (रक्षा) करनेवाला (पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगोरा (चंपा०, २० मं०)। [अगोरनि + हार (वि० प्र०), अगोर + इया (वि० प्र०)]।
अगोरबटाई—(सं०) खलिहान में होनेवाला बंटवारा। यहाँ बंटवारा होने तक अनाज की देखरेख करनी पड़ती है, अतः इसे 'अगोर-बटाई' कहते हैं। दे०—बटाई खरिहानी। [अगोर + बटाई]।
अगोरल—(क्रि०) खेत आदि की रखवाली करना (चंपा०, मं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अग्र + गोचरन, अग्र + गोपन, अगोरना (हि०) < अग्र—(हि० शा० सा०)]।
अगोरा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (रक्षा) करनेवाला (चंपा०, २० मं०, पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगोरिया, अगोर-निहार, जोगवार (भाग०-१)। अगोरी = रखवाली। [अगोर + आ, अगोर + इया, अगोरनि + हार (वि० प्र०)]।
अगोरिया—(सं०)—दे०—रखवारी। [अगोर + इया]।
अगोरिया, अगोरनिहार—(सं०)। दे०—रखवार। अगोरनिहार।
अगोरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०-४)। दे०—रखवारी।
अगो—(सं०) गृहदेवता (भूमिगर्नेस) के लिए नये तैयार अन्न से निकाला गया अंश। पर्या०—अगबड़ (शाहा०), रसुआड़ (चंपा०), (भाग०-१); रसवड़ (चंपा०)। [अग्रान्न]।
अगोअ—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश (प०)। दे०—बिसुनपिरित। [< *अग्रान्न]।
अगोड़ी—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम कार्य की मजदूरी (२० मं०)। दे०—फाजिल। [अग्र + ओड़ी < अग्र +

आहार, अग्र—चाउर (बाबल), अग्र + ऊढ = अग्रोढ]।
अगोतिया—(सं०)—(१) आगे का। (२) समय के शुरू होते ही अथवा कुछ पहले ही रोपी-बोई जानेवाली और पहले तैयार होनेवाली फसल (मं०-१)। पर्या०—अगात्तर (भाग०-१)। [अग्र + औतिया < *अग्र + उत्त]।
अगोरी—(सं०) हरबाहे को अगाऊ दी जानेवाली मजदूरी (२० प० मं०)। दे०—अगवड़। [अग्र + ओरी < अग्र + आहार = अग्राहार, अग्र + चाउरी (बाबल) = अगाउर > अगोरी, अग्र + ऊढ = *अग्रोढ]।
अग्रा—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अगरा। [अग्र]।
अग्निभूष—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [अग्नि + भूष]।
अछार—(सं०)—(१) पानी में ही बीज खसाने (बोने) की प्रक्रिया (बर०, पूर्ण० १, चंपा०)। (२) जोंरों की वर्षा, बोछार। (३) वृद्धि, उछाल। [< *आसारः (आसार = मूसलाधार वृष्टि), उच्छाल]।
अछारा—(सं०) खेत में पूरा पानी रखकर बीज बोया जाना (मं०-१, भाग०-१)। [आसार (आसार = मूसलाधार वृष्टि)]।
अछारी—(सं०) उतनी वृष्टि, जितने से जमीन में हाल होकर पानी बसा हो जाता है (मं०-१)। [आसार]।
अछेवट—(सं०) पीपल, बरगद और पाकड़ का संयुक्त वृक्ष (पट०-१)। [अछे + वट < *अन्नयवट]।
अजमोदा—(सं०) अजवाईन, एक प्रकार का मसाला। पर्या०—बनजवाईन (मं०), पितरसेली, चितरसेली (मं०)। [अजमोद, अजमोदा (संस्कृत), अजमोद, अजमुदा (हि०), वनयमानी (मं०) अजमोद, बोडी अजमोद (मु०), आजामोदा (ते०), अजमो-दावोना (मरा०)]।
अजवाईन—(सं०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (गया, २० मं०)। पर्या०—जवाईन (प०, चंपा०, पट०, २० भाग०),

जेवाईन (मं० उ०)। खोरासानी जवाईन—यह वस्तुतः इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [यवानी, खोरासानी जवाईन = पारसीक यवानी (संस्कृत)]।
अजवारल—(वि०) (१) अन्न आदि निकालकर खाली किया गया बर्तन; (चंपा०-१, पट०-४, सर्वत्र)। (क्रि०)—(२) किसी बर्तन को खाली कर देना (भाग०-१, सर्वत्र)। [अजवार + ल (प्र०) < अजवार (?)]।
अजान—(सं०) छोट कर (बाबल) बोया जाने वाला खेत वर्ण का घान (२० मं०) [देशी]।
अजुरा—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—मजूरी। [अंजलि = (कभी-कभी अंजलि से नापकर ही मजदूरी दी जाती है)]।
अजू—(सं०)—(१) फसल (मकई) की बिना पकी बाल (मं०)। दे०—डुड़ा। (२) किसी फल की कोमल बतिया (चंपा०-१)। पर्या०—खिन्ना—(भाग०-१)। [आद्र]।
अटका—(सं०)—(२० भाग०)। दे०—अंकता। [अटका < अंकता < अकृतअ < *अकृतक]।
अटकमिसिया—(सं०) खेत में उपजनेवाली एक प्रकार की घास (मं०-१, भाग०-१) [अटका + मिसिया < *अकृतक + मिथित]।
अठकठिया—(सं०) (१) आठ कट्टे का खेत (मं०-१, भाग०-१)। (२) आठ लकड़ियों (?) की (नाब) (मं०-१)। [अठ + कठिया < अठ + कट्टा + इया < *अष्ट + काष्ठा]।
अठनिया—(सं०) भूमिकर में से अर्धवार्षिक वृक्षी (किल्ल)। (चंपा०, भाग०-१) दे०—अबसर। [अठनी + इया < आठ आना, < आयुवक—मिला० 'अयुः'—(नेपा०)]।
अठनी—(सं०) दे०—अबसर। आठ आने का सिक्का।
अठवारा—(सं०) गाय चराने या दूहनेवाले को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग०-१)। दे०—बारा। [आठ + वार (विन) < *अष्टवार]।
अड़कल—(क्रि०) उस खेत के पानी का सूख जाना,

जिसमें धान की फसल बोई गई हो, किंतु फसल अभी तक हरी-भरी न हो पाई हो। (शाहा०)।
[अड़क + ल < अड़क (?)]।

अड़कल—(वि०) अड़का हुआ। दे०—अड़कल।

अड़गड़ा—(सं०) अपराधी मवेशियों को बाँध देने का सार्वजनिक स्थान (सं०-१, भाग०-१)।
पर्या०—फाटक, काँजी-हाउस। [अड़ + गड़ा < अड़ + घर]।



अड़गड़ा

अड़गड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ जमीन। [देरी]।

अड़हुल—(सं०) एक प्रकार का फूल, जो लाल रंग का होता है (बर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—उड़हुल (पट०-४), अड़ुल (भाग०-१), ओड़ुल (चपा०)। [ओड़ुपुष्प]।

अड़रनेवा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल, पपीता (बर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—पपीता, रूमेवा (भाग०-१, चपा०)। [एरंड + मेवा]।
अड़ाँस, अँडास—(सं०) कुएँ के मुँह का वह भाग, जहाँ पानी गिरते समय कूँड उठर जाता है (कहीं-कहीं यह लकड़ी का बना होता है)। (पट०-४, गया, भाग०-१, मग०-५, सं०-२ चपा०)। [मिला०—अड़ेस (ने०) = (मुकना, रोकन), अड़ (प्रा०) = कूप, कूप के पास का गर्त, तट (पा० सं० म०)]।

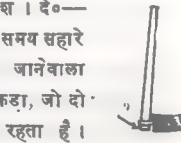
अड़ा—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी (गया)। दे०—पासा।
[अड़ा, मिला०—अड़ (उछमे), अड़ुड, (अभियोगे), अल (भूषणपर्याप्ति बारम्बे)।
अड़ (प्रा०) = रोक, जो आड़े आता हो, बाधक होता हो (पा० सं० म०); अड़ा (संता०) = मध्याह्न में पशुओं को बैठाने की जगह (संता० डि०)।

अड़ान—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी। (पट०, भाग०)। दे०—पासा। पर्या०—अलान (पट०-४)। [*आलान, अल (उछमे) अल (भूषणपर्याप्तिबारम्बे) अड़िनु (ने०) = रुकना; उठरना (मेपा०) अड़ा। (संता०) = मध्याह्न में पशुओं को बैठाने की

जगह (संता० डि०)। अड़ान, अड़ार (आब०)।
अड़ानी—(सं०)—(१) कुदाल के डंठे के नीचे-वाला गोटदार अंतिम बंध। दे०—

हरा। (२) डेंकी चलाते समय सहारे के लिए हाथ से पकड़ा जानेवाला बाँस या लकड़ी का टुकड़ा, जो दो लम्बों के बीच बँधा रहता है। (पट०-४, ब० सं०)

दे०—अक्षयम। [आलान, अड़ + अनी < *अर + अणि]।



अड़ार (सं०) (१)— अड़ानी (शाहा०) दे०—अड़ान और पासा। (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (शाहा०)। दे०—परती। पर्या०—गोचर। [अड़ा (संता०) = मध्याह्न में पशुओं के बैठाने की जगह (संता० डि०)।]

अड़ाव—(सं०) रुकावट (सा०-१)। [मिला०—अड़ (उछमे), आलान]।

अड़ीवा—(सं०) (सं०-१)। दे०—बड़िया। [अड़ (= बंध) + ईवा < अण्डवान्; (संस्क०) अड़ुवा (ने०)।]

अड़इवा बेल—(सं०)—बड़ा-बड़ा, लयमय दो-बाई सेर तक का फलनेवाला बेल—(पट०-१)। [अड़इ + बा + बेल < (अड़ाई) अर्द्ध + दिव + बिल्व]।

अड़ुल—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अड़हुल।
अड़ाहल—(वि०)—खेत को बार-बार जोत-कोड़कर संभार करना (बर०, पूर्णि०-१)।

अड़ैया—(सं०) ठाई सेर का बटखरा (बिह०, हरि०, री०)। [अर्ध + दि]।

अतार—(सं०) एक प्रकार का कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (उ० प०)। दे०—लतार। [अतार < लतार, अता (लता) + र]।

अदंत—(सं०) वह बाछा, जिसके दूध के दाँत न टूटे हों और नये दाँत नहीं निकले हों, शिशु गोवत्स (पू०, बर०, पूर्णि०-१, भाग०-१)। दे०—उदंत। [अ + दन्त]।

अदरक—(सं०)—दे०—अदरक। [*आद्रक (संस्क०), आद्रु (गु०) आलें (मरा०)।]

अदरख—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसका उपयोग मसालों और औषधों में होता है। यह तीता होता है। पर्या०—अदरक, आदी, आद, (ब०-पू० सं०, भाग०-१)। [आद्रक (संस्क०), आद्र (गु०), आलें (मरा०)।]

अदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा। (पट०-४, चपा०, भाग०-१) दे०—अदरा।

टि०—आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा फसल के लिए नितान्त आवश्यक मानी जाती है।

कहा०—अदरा मास जे बोए साठी।
दुख के मार निकाल लाठी॥

—आर्द्रा नक्षत्र में यदि साठी धान बोया जाय तो आप लाठी मारकर दुख को मार भगाएँ।
[< *आर्द्रा (संस्क०), आर्द्रा (मरा०)]

अदरा के कोड़नी—(सं०), दे०—अलादी कोड़नी। [अदरा + के + कोड़नी—यौ०]।

अदरा कोरन—(सं०)—(चपा०, ब०-पू०)। दे०—अलादी कोरन। [अदरा + कोरन—यौ०]।

अदरिजा—(सं०) एक प्रकार का आम, जो आर्द्रा नक्षत्र में पकता है (पट०-१)। [अदरि + वा (प्र०) < *आर्द्रा]।

अदलई-बदलई—(सं०) परस्पर आदान-प्रदान (पट०-४, भाग०-१, चपा०)। [अदलई + बदलई, —बदल की आवृत्ति; अदला-बदल—(मरा०)]।

अदारी—(सं०)—(१) वह बेल जो काम में कभी न रुके (सं०, शाहा०, द० भाग०)। पर्या०—अदारी, औदार (पट०, गया), अवाँ (ब० सं०)। (२) वह बेल, जिसे अभी तक हल में नहीं लगाया गया हो (चपा०, भाग०-१)। [अदारी (संता०) = सँद; आद्रत = अ + द्रु + त, उदार < उद् + आर (कील, रस्सी) < उद्गत + आर (= बंधन या सीमा से पार)]।

अदारी—(सं०)—दे०—अदारी।

अधकनु (वि०)—अधपका फल (चपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अध + कनु, अधाकचा (मरा०), अधकशों (ने०),]।

अधकड़ किस्त—(सं०)—(ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—अधवर। [अध + कड़ + किस्त, अर्ध + कर (संस्क०) + किस्त (क०)]।

अधकर—(सं०)—(गं० उ०)। दे०—अधखर। [अध + कर < *अर्धकर]।

अधखर—(सं०) भूमिकर में से अर्धवार्षिक चुकती (किस्त)—(गं० उ० भाग०-१)। पर्या०—अधकर, (गं० उ०)। अठनिया, अठनी (तामा०), अधकड़ किस्त (ब० भाग०)। अध + खर = *अर्ध + कर]।

अधझी—(सं०) प्रतिमास दो पैसे प्रति रुपये सूद की दर (ब० पू० भाग०-१)। दे०—टकही। अध + अजी = अध (< अर्ध) + आना]।

अधपड़, अधपई—(सं०) आधा पाव या दो छटाँक माप का बटखरा (भोज०, मग०, आज०)। दे०—अधपोआ। [अध + पड़ < अध + पाइ < *अर्धपाद]

अधपक्कू—(वि०) फसल की अधपकी बाल (गया, भाग०-१, चपा०-१)। दे०—हवसाएल। पर्या०—डँभाएल (ब० भाग०) डम्हाएल (चपा०) [अर्धपक्व]।

अधपौआ—(सं०) आधा पाव या दो छटाँक वजन का बटखरा (री०)। पर्या०—अधपड़, अधपई (भोज०, मग०, आज०)। [अध + पौआ < *अर्धपाद]।

अधबटिया—(सं०) भावली या जिरान जमीन की उपज में से किमान और जमींदार के बीच आधे-आध की बटाई (चपा०, ब०-पू०)। दे०—अधिया [अध + बटिया (= बटाई) < अध + वंटन]।

अधबटैया—(सं०) (पट०, गया, भाग०-१) दे०—अधिया [अध + बटैया]।

अधबलिया—(सं०) गाड़ी का एक हिस्सा (दर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—अधवल्ला [अध + बलिया < *अर्धवल्य]।

अधभरी—(सं०) वह धान जिसके दानों में चावक पूर्णतया विकसित नहीं होते, बल्कि आधा भूगा हो जाता है (ब० सं० भाग०-१) [अध + भरी]।
अधमना—(सं०) आधे मन का बटखरा। आधा मन बीस सेर का होता है; अतः इसे 'विमसेरा' भी कहते हैं (बि०, हरि०, री०)। [अध + मना < *अर्ध + मान, मानक (?)]।

अधरसा—(वि०)—(शाहा०) दे०—अधरासा। [अध + रसा < *अर्ध + रस]।

अधरासा—(वि०) किसी फल आदि का पूर्ण रूप से न पकना (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—अधरसा (शाहा०-१)। [अर्ध+रासा < *अर्ध+रस]।

अधलप्पा—(सं०)-(१)(प०-मं०)। दे०—अधलावा। (२) मवेशी को पोसने के लिए दिये जाते समय की वह शर्त, जिसमें मवेशी को कीमत आँककर दिया जाता है और उसे बेचते समय उस मवेशी की कीमत से आँकी हुई कीमत बाद करके शेष रकम को दो भागों में बाँट दिया जाता है, आधी रकम और आँकी हुई कीमत मवेशीवाले को मिलती है और शेष रकम पोसनेवाले को (चंपा०-१)। [अध+लप्पा < *अर्धलाम (?)]।

अधलावा—(सं०) पशु आदि के खरीदने या कुआँ बनाने के लिए दी जानेवाली अग्रिम प्रव्यराशि (पू० मं०)। पर्या०—करजा, तगावी (मं०-६०), अधलप्पा (प०-मं०, चंपा०)। इस तरह का कर्ज किसानों को दिया जाता है। ऋणवाता दिये गये कर्ज का द्रव्य और पशु की वाय का आधा द्रव्य ले लेता है।।। [< *अर्धलाम]।

अधवाड़—(सं०) बाँस आदि के ऊपर का आधा भाग (चंपा०-१, पट०-४, भाग०)। [अध+वाड़ < अर्ध+फलक या चल]।

अधसेरा—(सं०) आधे सेर का बटखरा (बिह०, हरि०, री०)। अध+सेरा < *अर्ध+सेटक]।

अधिया—(सं०)-(१) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (मं०-३०, भाग०-१)। पर्या०—आधेआध (शाहा०)। [अर्धिक (संस्कृत), अधियाँ (ने०)]। (२) किसान और जमींदार के बीच भावली गणना जिरात जमीन की उपज के आधे-आधे भाग की बटाई (मं०-३०, ३०-५०, भाग०-१)। पर्या०—अधबट्टैया, पड़ (पट०, गया), अधबट्टिया (चंपा०, ३०-५०), दू दाना में से एक दाना (३०-५० शाहा०)। [अर्ध]।

अधैल—(वि०) आठ दाँतों का पूर्ण वयस्क बैल दे०—पूरा। [अध+एल (देशी ?)]

अनंदी—(सं०) एक प्रकार का घान (चंपा०-१)।

अनउआ—(सं०) दे०—अनुआ।

अनगुत—(सं०) प्रातः, सबरे (मं०-१, भाग०-१, चंपा०)। [देशी, मिला०-अनूरक (संस्कृत)=अरुणकाल]।

अनजान—(सं०) एक पशुलाघ घास (पट०, गया, शाहा०)। [देशी]।

अनजीर—(सं०) एक मीठा और सुस्वादु फल। यह मृनक्का से बड़ा होता है (पट०-१)। [*अंजीर (संस्कृत, फा०)]।

अनपट—(सं०) दे०—अनपट।

अनवाह—(सं०) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गए अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का (पू० मं०, उ० मं०)। पर्या०—चरवाहा, गोरखिया, [अन+वाह, *अनवह+वाह, (चरवाहा), गोरखिया < गोरखी, गुराखी (मरा०)]।

अननास—(सं०) दे०—अनास।

अनाज—(सं०) भोजन, अन्न। (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [अन्नाद (संस्कृत)—(हिं० श० सा०), अन्नाद्य, अन्नादि। अनाज (हिं०), अनाज (ने०), अनाज (कश्मी०), अनाज, नाज (कुमा०), अनाज (बं०), अनाज (पं०), अनाज (सं०), अनाज (सि०), अनाज (गु०) अन्दा (काफि० अश्क)]।

अनाठी—(सं०) अनाड़ी। वह बैल, जो अभी तक जोता नहीं गया हो (मं०-१, भाग०-१)। [अन (अभ्य०, निबे०)+आठी (=काठ < काष्ठ), अनपट्ट (ने०)=अपरिचित, अनिष्ट (संस्कृत)—(नेपा०)]

अनाठु—(सं०) ताल का वह पेड़, जिससे रस नहीं निकलता (३०-५० मं०)। दे०—कोड़ी।

अनारकली—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का बान (३० मं०, शाहा०)। [अनार+कली, अनार (फा०)+कली (संस्कृत)]।

अनास—(सं०) एक फल-विशेष। इसके पौधे छोटे, पत्ते लम्बे और फल खट्टे होते हैं (पट०-१)। [अननास (हिं०), नानस (मैजि० अमे०), उनानास (पुर्त०)]।

अनुआ—(सं०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीब आदि से पानी उठाया जाता है (चंपा०)।

दे०—बोदर। (२) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ करीब गाड़ कर पानी पटाया जाता है (चंपा०)। [मिला० अनुक=रीढ़ (मो० वि० डि०); अनुप=जलसमीपस्थ, नदीतट; अनुर्ध्व=अधिक ऊँचा नहीं, अनुन्त]।

अनुपान—(सं०) एक प्रकार का केला (बर०-१)। पर्या०—अल्पान (पट०-४)। [देशी]।

अनुराधा—(सं०) सतरहवाँ नक्षत्र, अनुराधा, यह नक्षत्र कार्तिक महीने में पड़ता है। [अनुराधा]।

अनुपी—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०, पुर्णि०-१)। [अनुप=जल-समीपस्थ]।

अनेर जाएल—(मुहा०) पशुओं का भुला जाना, भटक जाना (उ० पू० मं०)। दे०—हेरा जाएल। [अनेर+जाए+ल (प्र०) अनेर < अनृत (हिं० श० सा०), अनेड=मूर्ख, < *अन्+अर्थ=अस्वामिक]।

अनेरवा जाएल—(मुहा०) दे०—हेरा जाएल और अनेर जाएल। [अनृत (=अनेर)—हिं० श० सा०), अनेड=मूर्ख, *अनर्थ (=अन्+अर्थ=अस्वामिक)]।

अनेरा—(सं०) (प० मं०, भाग०-१)। दे०—अनेरिया। [*अनर्थ=अन्+अर्थ=अस्वामिक]।

अनेरिया—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देख-भाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (प०, चंपा०-१)। पर्या०—अनेरा (प०-मं०), छुटहा (गया), उदंगर (पट०), उवम्मा (३० मं०), उजरा (३० भाग०)। [*अनर्थ (< अन्+अर्थ)=अस्वामिक; अनेरा=अनर्थ; छुटहा/छुट (देशी), छुट (छेबने, संस्कृत); उवम्मा=उवम्क, उज्जित (संस्कृत)=त्यक्त; उजरा=उज्जड (देशी), उदृज (वयोहानी)]।

अनोआ—(सं०) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीब आदि से पानी उठाया जाता है (३० प० शाहा०)। दे०—बोदर। [अनूक=रीढ़ (मो० वि० डि०), अनुप=जलीय प्रदेश, जलीय तट, अनुर्ध्व]।

अन्न—(सं०) भोजन, अनाज। [अन्न]।

अनूपट—(सं०) मवेशियों की आँख को बंद करने के लिए सीक और टाट का बना हुआ वक्कन

(सा०, चंपा०)। पर्या०—खोलसा (मं०, ३०-५०) खोल, खोला (पू०), छोपनी (शाहा०), नोकता (शाहा०), अंधियारी (पट०), अंधेली (गया)।



टोकनी (पट०-४) खोलसा अनूपट—(भाग-१)। [अनुपुत=(अन्+पु+त) टंकनेवाला]।

अन्हड़—(सं०)-दे०—अंधड़ (बर०-१, भाग०-१)। [*अन्धकर]।

अन्हरवखे—(सं०) सबरे का वह समय, जब पूरा साफ नहीं हुआ हो और कुछ-कुछ अंधकार हो (चंपा०-१)।

पर्या०—अन्हरुखे (भाग०-१)। [अन्हर+वखे, < अन्ध (क) र+वखे (< उवख)]।

अन्हरिया—(सं०) ऊँस में अंकुर फूटने पर पहली कोड़नी या जोत (उ०-पू० मं०)। दे०—पुआरी। पर्या०—अन्हारि—(बर०-१)। [अन्धकर]।

अन्हरिया—(सं०) कृष्णपक्ष की रात, जिसमें चन्द्रमा नहीं उगता (चंपा०-१, बर०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अन्धकारिन् (पक्ष)]।

अन्हरुखे—(सं०)-(भाग०-१), दे०—अन्हरवखे। अन्हरोख—(सं०)-(बर०-१); दे०—अन्हरवखे [अन्हर+ओख < *अन्धकर+उवख]।

अन्हारि—(सं०)-(बर०-१)। दे०—अन्हरिया और पुआरी।

अन्हारी देल—(मुहा०)—ईल के खेत में पापड़ पड़ना (बर०-१)।

अन्हाव—(सं०)—घान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए बल से भरने की प्रक्रिया (३० भाग०)। दे०—लेब। [अनु+अन्हाव]

अन्हावल—(वि०)—घान के पौधे को रोपने के लिए खेत गीला करना (मं०-१)। [स्नान (?), अनु+अन्हावहन]

अन्हेरिया—(सं०, पट०); दे०—अन्हरिया। [अन्धकार]।

अन्होर कइल—(मुहा०) बहुत जोर से बाजा बजाकर हल्ला करना (चंपा०-१), [अन्होर+कइल; आह्वान (?)-कइल (< अह=कर)]।

अपजोस—(सं०) एक प्रकार का मेवा। यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट०-१)। [आवजोश (फा०)]।

अपटा—(सं०)-(१) बड़ खेत, जिसे बाढ़ आदि किसी कारण से कृषि सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। पर्या०—उपटा (पट०-४, भाग०)। (२) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की घारावाहिक सिंचाई (उ०-प०)। पर्या०—अगरपाट (चपा०, उ० प० सं०), टोड़ (प०), मोहर (प०), छानन (पट०, गया), मेलान (ब० मू०) डुरका, उपटा (ब० भाग०)। [अ + पट]।

अपराजिता—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [अपराजिता (संस्क०)]।

अपाय—(सं०) फसल का एक रोग (मू०-१, भाग०-१)। [अपाय (संस्क०)]।

अपासी—(सं०) सिंचाई—(पट०-४) दे०—आवपासी। [अ + पासी < *आवपासी (फा०)]।

अपुआँग—(सं०) एक प्रकार की घास (बर०-१)।

अफार—(सं०) बिना जोता हुआ खेत (सा०-१, चपा०; भाग०)। पर्या०—परती (पट०-४, भाग०-१)। [अ + फार < अ + फाल, अफल]।

अफीम—(सं०) पोस्ते से उत्पन्न होनेवाली एक वस्तु, जो दवा और नशा दोनों कामों में व्यवहृत होती है। [अफीम (फा०) अहिफेन (संस्क०)]

अवई—(सं०) दे—अव्वी [अ + वई < *अ + वीज, *अवीर्य]।

अवरखन—(सं०) वर्षा का अभाव (सा०-१)। [अ + वरखन < *अ + वर्षण]।

अवाद्—(सं०)-(१) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती। (पट०-४, भाग०-१) पर्या०—अवादी, उठती (चपा०)। (२) फसल लगाया हुआ खेत। पर्या०—अवादी, पह (ब० पू० गया), खील बैठाओल, (पट०), खिलमार (शाहा०)। [अवाद् = आवाद (फा०), सुपीक (मरा०)]।

अवादी—(सं०) दे०—अवाद [अवादी (फा०)]

अविउज—(सं०) मरा हुआ या उगने में असमर्थ

बीज (गं० उ०)। दे०—अव्वी। [अ + विउज < *अवीज, *अवीर्य]।

अवी—(सं०) वह जल का बीज, जो उग नहीं सकता है (चपा०-१)। [अ + वी < *अवीज, *अवीर्य]।

अवुआव—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दूकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जानेवाला भूमिकर (पू०)। दे०—मोतरफा। [अववाव] (अर०)।

अवों—(सं०) वह बैल, जो काम में कभी न रुके (ब० मू०)। दे०—अदार। [अवोट (संता) = अपरिश्रान्त]।

अवौन—(सं०) रोपने के बाद खेत के पानी को बाहर निकालकर धान के पौधों में घुप लगाने की प्रक्रिया। (मू०-१, भाग०-१)। [देशी]।

अव्वर—(सं०) कमजोर मिट्टी (चपा०)। दे०—हलुक। [अ + व्वर < *अवल]।

अव्वी—(सं०)-(१) न जम सकनेवाला अनाज। पर्या०—निरबीज, बिजमार, बीयामार, बरुआ (ब० पू० शाहा०), कुन्वी (ब० भाग०)। (२) न उगनेवाला निष्फल बीज (प०)। दे०—सुगी। पर्या०—अवई, कुन्वी (ब० भाग०)। [अ + व्वी < *अवीर्य, *अवीज]।

अमचूर—(सं०) आम की सूखी लटाई (चपा०-१)। [अम + चूर < *अमचूर्ण]।

अमड़ा—(सं०) एक फल और उसका पेड़। इसका फल कसैला और खट्टा होता है। इससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं। (पट०-१, बर०-१, सर्वत्र)। [आम्रातक (संस्क०); *अंवाड़ (ग्रा०); अंवाड़ा, आमरा, अमरा, अमला (हि०); आमड़ा, अमड़ा (बं०); अंवाड़ा, आवचार (मरा०) जंगली आवी, अंमेड़ा, अंवेड़ा (गु०), अँवोडेकायि; आमोट, अंवालमु (ते०); अमरा, अंवाड़ा (पं०), अमारी (ने०)]।

अमड़ाह—(सं०) वह बटखरा० जो उचित तौल से ज्यादा हो (चपा०-१)। [देशी]।

अमता—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (प० सं०, चपा०)। [देशी]।

अमती—(सं०) एक प्रकार का फल (बर०-१)।

अमदुर—(सं०) अमरूद। एक प्रकार का पेड़ और उसका फल। इस पेड़ का फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है। इसके भीतर छोटे-छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। इसकी पत्ती और छात्र रेंगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसकी पत्ती के काड़ा से कुल्ली करने से दाँत का दर्द दूर होता है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं (पट०-१)। पर्या०—अमधुर—(चपा०), अमरूथ (शाहा०-१)। [अमृत (फल); जाम-विहि (म० प्र०, म० भा०); प्यारा (बं०) पेरु—(मरा०); पेरु-फल, पेरुक (ते०, ते०); रुवी (ने०); सफरी, अमरूद (अब०); साफली, लताम (मं०)]

अमधुर—(सं०)—(चपा०)। दे०—अमदुर।

अमरलत्ता—(सं०) बबूल आदि के पेड़ों पर फैलनेवाली बिना जड़-पत्ते की एक प्रकार की शीली लता। उसे 'परायेमोजी' लता भी कहते हैं। यह उन पेड़ों से रस लेकर जीती है (मू०-१, पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अमर-बैल। अमरलत्ती (बर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१, चपा०)। [अमर + लत्ता < अमर + लता, < अमर + लता]।

अमरलगी—(सं०)—(बर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१, चपा०)। दे०—अमरलत्ता।

अमरूथ—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (शाहा०-१)। दे०—अमदुर। [अमृत (फल)]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० सं०, गया, चपा०)। [देशी]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी]

अमलदारी—(सं०) अमला का अधिकार (सा०-१, पट०-४)। [अमल + दारी < अमला + दार + ई (अर०)]

अमवाड़ी—(सं०) आम का बाग (पट०-१)। [अम + वाड़ी < आम + वाटिका]

अमसूल—(सं०) एक प्रकार का धान (बर०-१, पूर्णि०-१)। [अम + सूल < आम + शूल < आम + शूक]

अमहा—(सं०) बैल का एक भेद (घाघ)। [अमाह - हि०] = नेत्र का एक रोग, जिसमें आँख के डेले से लाल मांस निकल आता है (हि० श० स'०) < अमास]

अमारी—(सं०) सूखे हुए गोबर का (बिना बनाये) ढंले जैसा टुकड़ा, जो जलावन के काम में आता है (गया, ब० मू०, भाग०, पट०-४, भाग०-१)। दे०—करसी। मुहा०—अमारी गुबल—गोबर से अमारी बनाना।

अमावट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (प०, चपा०)। पर्या०—अमोट (उ०-पू० सं०, भाग०-१)।

अमीन—(सं०) खेत में लगी फसल का मूल्य अंकने के लिए नियुक्त व्यक्ति (पट०-४, चपा०, भाग०-१, मग०-५)।

अमोट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (उ०-पू० सं०, बर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१)। दे०—अमावट [अम + अोट < आश्रावर्त]

अमोला—(सं०) आम का नया निकलता हुआ बिरवा (चपा०-१)।

अम्माघवद—(सं०) सफेद चावल और छिलके-माला एक अगहनी धान, जिसकी बाल में तीन-तीन दानों के गुच्छे होते हैं (सा०-१, चपा०)। [अम्मा + घवद < आम्रगुप्त (?)]

अमौरी—(सं०) आम का छोटा टिकोला, जिसमें रेशा नहीं आया हो (पट०-१)। [अम + औरी < आम्रवटी]

अरई—(सं०)—(१) पक्षियों की हाँकने के लिए छडी के अंत का नुकीला भाग।

पर्या०—अरौआ (पट०, ब० मू०), आर या अरुआ (ब० भाग०)। [अरंतुद] (२) वह बैल, जो चलते-चलते एकाएक रुक जाता है (सा०-१, चपा०)।

[अरंतुय] अरई

अरख—(सं०) कफा (शुद्ध अफीम) का रस।

अरगनी—(सं०)—(चपा०)। दे०—अलगनी।

[अर्क (संस्क०), अर्क (ने०), अर्क (मरा०)]

अरजत—(सं०) कपाई (चपा०-१)। [अर्जन]

अरजुन—(सं०) एक वृक्ष-विशेष, जिसकी छाल दवा के काम में आती है (शाहा०-१)। [अर्जुन]
अरजल—(बि०) उपाजित (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अरज+ल (प्र०) < √ अर्ज]
अरदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा, यह आषाढ़ के कृष्णपक्ष में पड़ता है। टि०—बिहार में सामान्यतः आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र में धान बोया जाता है और विश्वास किया जाता है कि इस नक्षत्र में बोने से धान की प्रचुरता, पुनर्वसु नक्षत्र में खोखले दाने या खंडकी की अधिकता और पुष्य में बोने से सबंधा अभाव होता है, जैसा कि निम्नांकित कहावत से ज्ञात होता है—

“अरदरा धान, पुनर्वसु पैया,
गेल किसान, जे बोये चिरैया।”

प्रायः धान पूस (पौष) महीने में काटा जाता है। बिहार के किसान आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर किया करते हैं। इस नक्षत्र में वर्षा होने का अर्थ है कि धान की फसल अच्छी होगी। अतएव, इसके नाम पर कई कहावतें प्रसिद्ध हैं—

“आदि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान।
कहहि डाक सुनु मिल्लरि भये किसान पिसान॥”
यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त-नक्षत्र के अन्त में वर्षा नहीं होती है, तो डाक कहते हैं—
हे मिल्लरि ! सुनो, किसान पिस जाते हैं।

“बहुत बरसे अरदरा उत्तरत बरसे हस्त।
कतेक राजा दीड़े, रहे अनंद गिरहस्त॥”
यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त के अंत में वर्षा हो जाती है तो राजा की ओर से माल-मुजारी कितनी भी क्यों न हो जाय, गृहस्थ (किसान) प्रसन्न हो रहेगा।

“अरदरा बरसे सम किछुहीं।
एक जवास पतर दिन भौं॥”

यदि आर्द्रा में वर्षा होती है तो सभी फसल अच्छी होती है, केवल जवास (एक प्रकार का कंदीला पीपल) ही पत्रहीन हो जाया करता है। पर्या०—
अदरा। [आर्द्रा]

अरुबी—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (उ०-पू० मं०)। दे०—

अरई। [आलुकी (संस्क०), आलुई (प्रा०), कोचू, कचू (बं०), आलु, अलवाचा कौंदा (मरा०), अलवी (गु०), राव आलु, अरबी, कचालू (पं०), शिमक, किजहू (ता०), चम्म-कुरा (ते०)]

अररा—(सं०) नदी का ऊंचा किनारा। दे०—
करारा। पर्या०—आरार (पट०-४)। [आर = तट (हि० श० ता०)]

अरवा—(सं०) विना उबाले हुए धान को सुखा-कर कूटा गया चावल, जो पवित्र और शुद्ध मान-कर देवादि विषयक कार्य में व्यवहृत किया जाता है (भाग०-१, चंपा०-१, पट०-४)। दे०—चाउर।
[अ + रवा = (लावना) = जलाना, भूतना (हि० श० ता०), मिला०—अर्प्य = देवादि पर अर्पण करने योग्य]

अरार—(सं०)-(१) नदी का ऊंचा सड़ा किनारा (प्रायः सर्वत्र)। (२) पानी सूख जाने के बाद बाँगर जमीन का फट जाना (चंपा०-१)। दे०—
करारा। [आर (हि० श० ता०), मिला०—
अरर = किवाड़, अवार = नदी का इषर का तट। टेकाड़ (मरा०)]

अरारि—(सं०) दे०—करारा।

अरिअन—(सं०) ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीन (बं० भाग०)। दे०—बीहड़ [अरएय (?)]

अरिया—(बि०) अगल-बगल के खेतवाले। किसी व्यक्ति के खेत की बगल में जब दूसरे का खेत रहता है, तब दोनों ‘अरिया’ कहलाते हैं (मुं०-१, चंपा०)। पर्या०—अरियापरोस (पट०-४, भाग०-१)। [आर = खेत की मेड़ + इया (प्र०)]

अरियापरोस—(बि०)-(पट०-४)। दे०—अरिया।
अरुआ—(सं०) बँल, भँस आदि को हाँकने के लिए बनी छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग। दे०—अरई। [अरुकर]

अरुआ—(सं०) अरई की जाति का लम्बा, मोटा कंद, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—अरई।
पर्या०—कंदा (पट०-४)। [आलुक, आलुकी]
अरुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—
अरुबी (उ०-पू० मं०), पेकचा (बं०-पू० मं०)

पेकची (शाहा०), **पेपची** (गया, शाहा०), **अलती** (बं० भाग०), **अरई** (मरा०)। कचू, अरुआ, कंदा, कण्डा = अरई का बड़ा भेद।
[आलुकी (संस्क०), आलुई (प्रा०), कोचू, कचू (ने०), आलु, अलवाचा कौंदा (मरा०), अलवी (गु०), राव आलु, अरबी, कचालू (पं०), शिमक, किजहू (ता०), चम्मकुरा (ते०)]
अरैया—(सं०)-(१) धान के पीधे का एक रोग (बं० मुं०)। पर्या०—पोआरी (पू०)। (२) पानी में होनेवाली विना पत्तों की एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पट०-४)। [देशी]
अरौ, **अरौवा**—(सं०) हलवाहे का छोटा डंडा या छोटा पँना, जिसकी नोक में बँलों के पुट्टों पर गड़ाने के लिए लोहे की पतली कील लगी रहती है (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अरुकर, अरंतुद]

अरौआ—(सं०)-(१) पशु को हाँकनेवाली छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग (पट०, बं० मुं०)। दे०—अरई। [अरुकर, अरंतुद]
(२) हँगा खींचने के बरहे (रस्ती) की जगह काम में आनेवाली बाँस की लगी। दे०—कुण्डी।
अररछो—(सं०) भँसा को पुकारने का शब्द (सा०-१, पट०-४)। पर्या०—अररहे (भाग०-१, चंपा०)।

अर्रा—(सं०) एक प्रकार का थोड़ा बड़ा दाँतदार औजार, जिससे लकड़ी काटी जाती है (गं० बं०)। दे०—आरा। [आर]

अर्राइल—(सं०) वृक्ष के गिरने के समय की आवाज (चंपा०-१, पट०-४)। [अनु०]

अररहे—(सं०)-(भाग १, चंपा०)। दे०—अररछो।

अर्राएल—(बि०) किसी को कोई काम करने के लिए कहना (चंपा०-१, पट०-४)। [अर्र + आएल (प्र०) अर्र < अर्र < अर्रि (?)]

अलंग—(सं०)-(१) जल के खजाने या अहरा से संबद्ध समतल भूमि से ऊँच उठता हुआ बाँध। दे०—पिंड। (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (पट०)। दे०—खाँवा। (३) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (पट०, गया, बं०-पू०)। दे०—आर। (४) शरीर का

एक अंग। हिस्ता। भाग (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [अ + लंग < अवलम्बे—
मिला०—“हिसायां प्रशवे ज्ञानेऽवलम्बो मध्यलग्नयोः”-(अने०)। “अवलम्बोऽस्त्रियां मध्येत्रिषु स्यालग्नमात्रके”-(नेवि०)।
अलङ्घ्य = अलङ्घनीय; सीमा]

अलगल—(सं०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (गया)। दे०—
मखियाएल। (बि०) सामान्य अर्थ में उठा हुआ या उभरा हुआ। [अ + लग + ल (प्र०) = न लगा हुआ, निष्प्राण]

अलगा—(सं०) डंठल के विना ही केवल बाल की कटाई (बं० भाग०)। दे०—बलकट।
[अ + गला]

अलगनी—(सं०)-(१) फसल उखाड़ने का काम (मुं०-१, भाग०-१)। (२) कपड़े टाँगने या रखने की रस्ती या बाँस (पट०-४, भाग०-१)।
पर्या०—अरगनी (चंपा०)। [अ + लग + ना (प्र०) + ई (प्र०) < अवलग्न (?)]

अलगावल—(बि०) किसी चीज का बोझ, दूसरे को, किसी के द्वारा उठाया जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अ + लगाव + ल (धा० प्र०)]

अलगी—(सं०) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वरा-शक्ति खो चुकी होती है (बं० भाग०)। दे०—झूस। [अ + लग + ई]

अलगोजा—(सं०)-(१) बाँस के कोपल का ऊपरवाला भाग (चंपा०-१)। (२) वह बाँसुरी जो सामने से फूँकर बजाई जाती है (चंपा०-१)। [देशी]

अजती—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छटा, लंबा, लसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (बं० भाग०, भाग०-१)। दे०—अरई। [मिला०—आलुकी]
अलपजिया—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (बं०-पू० मं०)। दे०—निखोराह। [अलप + जिया < अल्पजीव, अल्पजिह्व]

अलान—(सं०) लताओं को ऊपर चढ़ाने का बेंगन। पर्या०—चौड़ा (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [आलन, आलंबन]

अलावा, अलावे—(सं०)—(१) किसान के द्वारा अपने खेत में अफीम आदि की उपज के बाद बोई जानेवाली नील । (२) एक फसल काट लेने के बाद बोई जानेवाली दूसरी फसल । [अलावा (प्र०)]

अलावे—(सं०) दे०—अलावा ।

अलाह—(सं०) घासपात जलाकर बनाई हुई खाद (पट०, गवा) । दे०—खादर ।

अलुआ—(सं०)—(१) एक प्रकार का लंबा, मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पू०-उ० बि०) । दे०—सकरकन्द । (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (गं० उ०, द०, भाग०-१) । [अलू, आलुक]

अलुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पू० सं०, सा०-१, चंपा०) । दे०—आलू । [आलुकी]

अलेर—(बि०) बहुत ज्यादा, इफरात (मुं०-१, भाग०-१) । [मिला०—अलेख = (जिसका हिसाब-किताब न हो; अधिक)] ।

अलौत—(बि०) किसी वस्तु को किसी चीज की ओट में रखना (चंपा०-१, भाग०-१) । [आलुस, मिला०—अलौप होना (बि०)]

अलुआ—(सं०) एक प्रकार का लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (द०-पू० सं०, मुं०-१, भाग०-१) । दे०—सकरकंद । [अलु + आ < आलुक]

अलुआह—(सं०) अचानक हल्की बोट लग जाने की प्रक्रिया (चंपा०-१) । पर्या०—ओछु-बाह (पट०-४) । [अलुआर]

अलुआर—(सं०) वर्षा का वह झोंका, जो कुछ देर के लिए एकाएक पानी बरसा जाता है (चंपा०-१) । पर्या०—अलुआ (पट०-४, भाग०-१) । [अलुआर = आ + सार]

अलौसल—(कि०) नये बरतन को पहले-पहल काम में लाना (सा०) । दे०—उड़ाहल [आवासन]

अवारज—(सं०) वह बही, जिसमें प्रत्येक दिन के आय-व्यय के सारांश का हिसाब लिखा रहता है । पर्या०—वारजा । [अवारजा (का०)]

असकलाह—(सं०) ढेंकी की घुरी (द० भाग०) । दे०—अलौत । पर्या०—साम, समौआ (पट०-४) । [अस + शलाका]

असठी—(सं०) मोरी (बोलती) के नीचे की ऊँची भूमि (गवा) । [अप्टी?]

असनी—(सं०)—(१) आश्विन में होनेवाला सफेद छिलकावाला एक लंबा घान (सा०-१, पट०-४, पट०-१, भाग०-१) । (२) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (सं०) । दे०—लरही । [आसिन + ई = असनी < आश्विनीय] । (३) पहला नक्षत्र, अश्विनी (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । दे०—अश्विनी । [अश्विनी]

असफगोल—(सं०) एक प्रकार की तिल-जैसे दानवाली वस्तु, जो तरल वस्तु के साथ मिलने पर फेंलकर लसदार बन जाती है तथा जिसके दाने और भूसी पेट की बीमारियों में खाई जाती है । इसका दाना भूरा एवं गुलाबी होता है और भूसी ध्वेत-भूरी होती है । पर्या०—सफगोल (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । [इसवगोल (का०)]

असमानी—(सं०) हल्का नीला रंग (पट०-४, भाग०-१) । दे०—कुसुम । [आसमान + ई = आसमानी (का०) । मिला०—आशा (विशा) + मान (संस्कृ०)] ।

असरा—कड़वी का वह भाग जो कच्चा होता है (चंपा०-१, पट०-४) । पर्या०—असला (भाग०-१) । [अ + सरा < असार]

असराफ—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट०-४) । पर्या०—सुरफा (पट०), सुरफान (गवा), बड़ आदमी (गं० उ०) । [असराफ (प्र०)]

असरेखा—(सं०) नया नक्षत्र, आश्लेषा । यह नक्षत्र प्रायः सावन के अंत में आता है । यह चक्राकार छह नक्षत्रों से बना है । इसका देवता सूर्य है । कहा०—'जे न भरे असरेखा मग्वा । फेर भरे असरेखा मग्वा ॥'

—जो आश्लेषा और मघा नक्षत्र में नहीं भरता है, वह तब तक नहीं भरता है जबतक पुनः दूसरे वर्ष आश्लेषा और मघा नक्षत्र नहीं आ जाते । पर्या०—असरेम, असरेसा

(चंपा०), असलेखा । असरेखा (भाग०) । [आश्लेषा]

असरेस—(सं०) दे०—असरेखा ।

असरेसा—(सं०)—(चंपा०) । दे०—असरेखा ।

असल—(सं०) वह मूलधन, जो सूद पर दिया गया हो (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । पर्या०—सूद, मूल (शाहा०), सूरी रुपया (द०-पू०) । [असल—(अर०)]

असल-के-असल—(सं०) जिस भाव पर खरीदा गया हो, उसी भाव पर बेचने की प्रक्रिया (द० पू०, पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । दे०—बिक्री के भाव ।

असला—(सं०)—(भाग०-१) । दे०—अधरा ।

असलाएल—(कि०) सड़ना, स्वाद उतरना, गलना (मुं०-१, भाग०-१) । [अ + सलाएल < अ-शरण (= आ + √ श् = गन्ध होना, सड़ना), मिला०—सल्व (प्र०)]

असलेखा—(सं०) नया नक्षत्र, अश्लेषा । दे०—असरेखा [आश्लेषा] ।

असाइ—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म का अंतिम मास । प्रायः जून के अन्त और जुलाई के आदि के १५ दिन । इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है । अतः आषाढ़ नाम पड़ा है । (पट०-४, भाग०-१, चंपा०, शाहा०, सा०, भाग०) । दे०—असाइ ।

असादी—(सं०)—(१) आषाढ़ में बोई जानेवाली नील की दूसरी खेती (गं० उ०) । दे०—फगुनी । (२) असाढ़ में बोयी जानेवाली फसल । [असाइ + ई < आषादीय]

असादी के कोड़—(सं०) ऊँक की मुख्य कोड़नी, जो आषाढ़ या आश्विन-नक्षत्र में होती है (प०) । दे०—असाड़ी कोड़नी । [असादी + कोड़]

असादी कोड़न—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊँक के खेत की हलकी कोड़ाई (पट०) । दे०—असाड़ी कोर । [असाड़ी + कोड़न]

असादी कोर—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊँक के खेत की हलकी कोड़ाई । पर्या०—टोकक (चंपा०, उ०-पू० सं०), पासा (गवा), असादी कोड़न (पट०), अदरा-कोरन (चंपा०, द०-पू०) । [असादी + कोर]

असामियार—(सं०) वह समसोता, जिसके द्वारा किसान लोग यूरोपियन निलहों के साथ नील की खेती में प्रवृत्त हुए थे । दे०—रैयती । [असामि + यार < आसामी? (प्र०)]

असामियार—(सं०) दे०—रैयती । [असामि + यार < आसामी (अर०) + यार]

असामी—(सं०)—(१) कर्ज लेनेवाला किसान (भाग०-१, चंपा०) । दे०—खदुका । (२) दे०—रिनिहा । (३) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी आदि किसी शर्त पर खेतनेवाला किसान । पर्या०—रैयत, परजा, काश्तकार, पोतेदार, (पट०, भाग०-१) । [आसामी (प्र०) मिला०—अस्वामी (संस्कृ०)]

असार—(सं०) फाल की नोक तेज करवाने की क्रिया (द० मुं०) । दे०—घार पिटावल । [आसार]

असुनी—(सं०)—(भाग०-१) । दे०—अश्विनी ।

असेरी—(सं०) नावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन आधा सेर के हिसाब से मिलनेवाला पारिव्यमिक (शाहा०) । दे०—नौबा । [अ + सेरी < अषसेरी < अर्षसेट]

अश्विनी—(सं०) पहला नक्षत्र, जिसकी आकृति घोड़े के मुँह जैसी मानी जाती है । पर्या०—असनी, असुनी (भाग० १) । [अश्विनी]

अहमुख—(सं०) वह पशु, जो हमेशा जीभ निकालता हो (पट०-१) । [अह + मुख < अहिमुख]

अहरा—(सं०)—(१) जल के संग्रह के लिए बँधा हुआ जलाशय, खजाना, अहरे की मँड़ (द० बि०, भाग०-१) । पर्या०—बाँध, भरयन (चंपा०), धूर (उ० सं०), छरकी (द०-पू० सं०) । (२) बाँध से घिरी हुई घान की उपजवाली और ऊँची सतह के जल-प्रवाह से युक्त ऊँची समतल भूमि (गं० द०, उ०-पू०) । दे०—डेंडड़ी । [आधार, जलाधार, आहार]

अहरी—(सं०)—(१) छोटा जलाशय । दे०—डेंडड़ी । (२) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मँड़ (पट०, गवा द०-पू०) । दे०—आर । पर्या०—अहीम

लेहँड़ी=जलबरो के पानी पीने के लिए बनाया गया होज (भाज०) । [अहुरा + ई (बल्पा० स्त्री० प्र०)]

अहुरी—(सं०) बेल के लुर का गत्सा (चंपा०) । [अ + हुरी < अर्ध-सुर]

अहुला—(सं०) मूठा या पूला से बड़ी फसल की राशि (पू० सं०, भाग०-१) दे०—अँवाँसा ।

आ

आँउस—(सं०) एक प्रकार का सदेया घान (बर०, पूर्णि०-१) । [आशु (सं०), आउश—(बं०), आउस हि०]

आँइङ—(सं०) (भोज०, मग०, भाग०-१) । दे०—अँकड़ा ।

आँल—(सं०) (१) बीजवाले जालू में निकला हुआ अंकुर (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । दे०—जालि। (२) ऊँस का अंकुर (सं० उ०, शाहा०, गवा, चंपा०, भाग०-१) । पर्या०—अँलिया (उ० सं०), अँलुआ (पट०), कनसी (२० सं०), गौमी (२० भाग०) । (३) ऊँस के टोने का जाल-जैसा बह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलना है (गवा, प०, बं० भाग०-१) पर्या०—अँलिया (उ० सं०), अँलुआ (पट०, गवा, प० सं०), अँलियाय (२० भाग०) । (४) बाँस की गाँठ पर जाल-जैसा स्थान, जहाँ से अंकुर निकलना है (बिहा०, भाज०) । [अँलि (सं०), अँलि (भा०), अँल]

आँवा—(सं०)—दे०—आवा ।

आँवगुरा—(सं०) बाँट-बखरे का एक तरीका । इसमें बिनने बादियों में सामान बाँटना होता है, उनमें हिस्से लगाकर हर भाग्यी के लिए अलग-अलग नाम सूचक वस्तुएँ मान ली जाती हैं । कोई लड़का अलग छिपा रहता है । उमीचो के सूचक दिये जाने हैं, जो एक-एक सूचक एक-एक हिस्से में रखा देना है । जिसका सूचक जिस हिस्से में रखा जाता है, उसका वही हिस्सा हो जाता है (बं०-पू०) । [अँसि + कूट (बर०), कूट < कूर > गुर > गुरा । अँसि + गूद (खिपा हुआ), गूद > गूड़ > गुरा]

आँखि—(सं०) (१) बीजवाले जालू में निकला अंकुर । पर्या०—आँख (पट०-४, भाग०-१) । (२) दे०—जालि—३ । [अँखि]

आँजुर—(सं०) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रतिफल एक या दो सेर लिया जानेवाला अंश (शाहा०) । पर्या०—मुठिया (पट०-४) । दे०—अँजुरी । [अँजलि]

आँजुरी—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बड़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अँजलि-मात्र) अन्न-परिमाण (गवा) । दे०—अँजुरी । [अँजलि]

आँट—(सं०) (१) अँदाज (चंपा०-१) । (२) पोखरे का किनारा (चंपा०-१, भाग०-१) । [अँटी (हि०)—हि० श० सा०, मिला०—आउट (भा०) < आ + अँट]

आँटा—(सं०) जो, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण । पर्या०—घाटा, पिसान, कनिक, चिकस (पू० सं०), चिकसा (२० भाग०, भाग०-१) । [अँट = 'अँट'...चतुष्कमवतयो'—(अने०), 'अँट' भक्ते च' (मेदि०), अँट > आटा]

आँटी—(सं०) घान आदि काटने और ढोने की मजदूरी, जो प्रति बोझा एक माँटी के हिसाब से दी जाती है (बर०-१, भाग०-१, अन्नप्र) । [अँट + ई—(हि०)—अँटना; (अँड ?—हि० श० सा०) [मिला०—ताड (सं०); ताडस्तु ताडने घोषे मुष्टि सेव तृणाविवु (मेदि०, अने०)]

आँटी, अँटिया—(सं०) (१) तैयार होने पर रोपने के लिए उखाड़े हुए घान, मड़ आ आदि के बीज के पोथों का पूला या बंडल (सं० उ०, बं०-पू०, चंपा०-१, भाग०) । (२) अनाज निकाल लेने के बाद पुआल का पूला (बंडल) (सं० द०, सा०, भाग०-१) । दे०—पूला । (३) अँटिया या पसही से बड़ी दोनों मुजाबों के अंदर भरकर जानेवाली फसल की राशि (बं०-पू०-शाहा०) । दे०—गाँवा । [अँट + ई, इया (हि०)—अँटना; ताड (सं०), मुष्टिमेयतृणादिपु (मेदि०—अने०)]

आँठिल—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं । दे०—अँठली । [आँठिल—मिला०—अन्नघा चाम्ललोयाम्—(मेदि०)]

आँठी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गवा, बं०-पू० शाहा०) । दे०—अँठली । (२) आम या किसी दूसरे फल की गुठली (चंपा०-१, भाग०-१) । (३) मवेशियों का एक प्रकार का रोग । इसमें वह काफी खाँसता है (चंपा०-१, पट०-४) । पर्या०—ढरका (पट०-४) । [अँठी, अँठिल—मिला०—अन्नघा चाम्ललोयाम्—(मेदि०)]

आँठी के रोटी—(सं०) आम की गुठली को पीसकर बनाई गई रोटी । पर्या०—किसली के रोटी (चंपा०), अमाँठी के रोटी (गवा, बं० सं०), गुम्मा (बं० भाग०, भाग०-१) ।

आँता—(सं०) एक प्रकार का फल (बर०-१) । पर्या०—शरीफा (भाग०-१) ।

आँतर—(सं०) खेत जोतने के समय एक पाह में कुछ हटकर आगे की ओर से जोतने की प्रक्रिया, जिससे बँल आसानी से घूम सकें और खेत की जुताई हो सके (बर०, पूर्णि०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०, भाज०) । पर्या०—हट्टा (उ०-पू०, उ०-पू०) । दोसर आँतर धरल (मुहा०)—दूसरी जाँतर की जुताई बारंब करना । [अँतर, अँतरा]

आँतर, अँतरा—(सं०) पान की लताओं या पंक्तिओं के बीच का स्थान (बिहा०, भाज०) । दे०—अँतरा । [अँतर]

आँवट—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जो (उ०-पू० बि०, बं०-पू० सं०) । दे०—अँवरा । [देशी]

आँसु—(सं०) (१) सखई फसल (बर०-१ पूर्णि०-१) । (२) एक प्रकार का घान । [आशु]

आइल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मँड़, (गवा, बं० सं०) दे०—बार । पर्या०—आल (पट०-४) [दे०—आर]

आउटकेन—(सं०) चीनी मिल में दूर से लाये जानेवाले ऊँस, जिनकी तोल बाहर ही कर ली जाती है (बि०, रो०, हरि०) । (मिला०—गंटकेन) । [आउट + केन (अं०)]

आएन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुँह, जिससे अन्न निकाला जाता है । दे०—आन । [आनन, अन्नन]

आक—(सं०) ऊपर भूमि में होनेवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध पीवा (बर०-१) । पर्या०—अकवन (पट०-४, चंपा, भाग०-१) । [अक]

आकासफल—(सं०) आसमान से गिरनेवाले बोले । पर्या०—बनौरी (बं० सं०-१, पट०-४, चंपा०, भाग०-१) [आकाश + फल]

आखा—(सं०) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा । पर्या०—आँखा, तंगी (चंपा), गोठिया (बं० द०), पट्टा (बं० द०), जोरा, गोन (शाहा०) । [देशी, मिला० अन्न]

आखिरी पटावन—(सं०) ऊँस की तीसरी या अंतिम सिचाई (पट०, भाग०-१) । पर्या०—तेसर पटावन, तेसर पानी (पट० से अन्नप्र) तेसरो पटावन, तेसरो पानी (बं०, भाग०, भाग०-१) । [आखिरी + पटावन]

आगा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊँस के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो बीर भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (बं० भाग०) । पर्या०—अगगा (भाग०-१) । दे०—अंगेरी । [अग, अगगाएड]

आची—(सं०) ऋण में लिये गये अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद (प०, बं०-पू० सं०, भाग०-१) । पर्या०—अगवन (बं०-पू० शाहा०), छाड़ा (पट०), कठोर (पट०) । [अर्घ]

आटा—(सं०) जो, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण । दे०—बाँटा । [अँट, (अँट...चतुष्कमवतयो—अने०), (अँट भक्ते च—मेदि०)]

आढक—(सं०) गाँडासी की बँट के अंश का गाँठ-वार अंश (बं०-पू० शाहा०) । दे०—एडा । [देशी (?)]

आदा—(सं०) १६ पैला अन्न का परिमाण, जो प्रायः चार सेर से पाँच सेर तक होता है (भाग०-१) । [आढक]

आदा—(सं०) दो सेर आठ छटाँक की एक तोल । पर्या०—अदैया (पट०-४, चंपा०) । [आढक, अर्धद्व]

आद—(सं०) एक प्रकार का तीता कंद, जिसका मसालों और औषधियों में उपयोग होता है (बं०-पू० सं०, बर०-१) । दे०—अवरख । [आद्रक]

आदी—(सं०)—दे०—अदरक । [**आर्द्रक**]
आदीचक्र—(सं०) एक प्रकार का खाने योग्य कंद । पर्या०—कंद, चोकरन्द । [**आदी+चक्र**]
आधेआध—(सं०) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (साहा०, भाग०-१) ।
 दे०—अधिया । [**आधे+आध<अधाध**]
आन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुंह, जिससे अन्न निकाला जाता है (भाग० १) । पर्या०—
 आना, आनन, मोहखा (पू० सं०, पट०) मुह (सं० उ०), मुका (पट० ४) । [**आनन, अनायन**]
आना—(सं०)—(भाग०) । दे०—आन । [**आनन, अनायन**]
आफत—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा आदि के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (पट०, भाग०-१) ।
 दे०—दाहर । (२) कष्ट, विपत्ति । [**आफत (अ०), मिला०—आपद (संस्कृ०)**]
आवपाशी—(सं०) सिंचाई (सा०-१) । पर्या०—
 अपासी (पट०-४) । [**आव+पाशी (का०)**]
आवादी—(सं०) बरती या वह भूमि, जिसमें खेती होती है । पर्या०—आवादी (पट०-४, भाग०-१) । [**आवाद+ई (का०)**]
आभा—(सं०) फावड़ा—जैसे फलकवाली लकड़ी की बनी चीज, जो खेत में पानी पटाने के काम में आती है (सं० ब०) । दे०—हवा । पर्या०—चाँड़ (पट०-४), छिन्ना (भाग०-१) ।
 [**मिला०—आभांग** —
 आभांगो वरुणच्छत्र पूर्णतायनयोरपि—मेवि०)
अभि—नाम में से जलादि के निर्गमन के लिए लकड़ी का कुदाल जैसा औजार । “अभिः स्त्री काष्ठकुदालः—(अपर)”]
आभी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोकदार मजबूत एक प्रकार का फावड़ा (गया) दे०—फोरा । पर्या०—अंगैठी (पट०-४) । [**आ +भिद=यत्नपूर्वक काटना-मिला०—अभि=काष्ठकुदाल**]
आम—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल (बिहा०) । [**आम्र**]



आभा

आम के बगैचा—(सं०) आम का बगीचा । (भाग०-१) । पर्या०—गाछी (सं०, भाग०-१) ।
[आम + के + बगैचा <वागीचा (का०), मिला०—वार्द्ध (संस्कृ०) =वृक्षाणां समूहः—
 ‘वार्द्ध वनं तलं तलकं गुहिलं समजं वसम्’—
 त्रिका०] ।
आमदनी—(सं०) आनेवाला धन (भाग०-१) ।
[आमदनी (का०)]
आमन—(सं०) एक प्रकार का धान (बर०-१, पूर्णि०-१) । [**आमन (बेसी०), मिला०—**
आमाव, आम्रान्न=आम के सदृश धान]
आमाघउद—(सं०) एक प्रकार का धान । इसकी बाल में तीन-तीन धान का एक-एक गुच्छा रहता है । पर्या०—आमाघौर (बर०-१, भाग०-१) ।
[आमा + घउद (=आम की तरह गुच्छावाला धान), आमा<आम्र, घउद<गुप्त अथवा गोघ<गुध् परिवर्तने]
आमाघौर—(सं०)—(बर०-१, भाग०-१) । दे०—
 आमाघउद । [**आमा + घौर<आमा + घउद <आम्रगुप्त, आम्रगोध (?)]**
आयमा—(सं०) वह जमीन, जिसे सरकार दान कर देती है (सा०-१) । [**आयमा (अ०)=वह भूमि जो इयम या मुल्ला को बिना लगान या कम लगान पर दी जाय (हि० श० सा०)]**
आर—(सं०)—(१) वह खेत या मैदान, जहाँ गायें चराई जाती हैं (ब० भाग०) । दे०—चराई । पर्या०—चरागाह (पट०-४) । (२) खेतों के बीच की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़ । पर्या०—आर (चंपा०-१), आरि, आरी, डेड़ैड़ (सं० उ०), अहरी, अलंग, परांठ (पट०, गया, ब०-प०), परंगा, गँडारी, आइल, आल (गया, ब० मुं०), डाँड़ (ब०-प० साहा०) । (३) नाली के किनारे को घेरने वाली उठी हुई जमीन (सं०) । दे०—मेड़ । (४) पहले जोती हुई रेखा को काटकर की गई जुताई (चंपा०, ब० भाग०) । दे०—आरा । [**आर, आरोह, आल, अलि (=पुल), मिला०—**
अरुद्ध अभियोगे, अरुद्ध-उद्यमे]
आर—(सं०) मवेशियों को हँकनेवाली छड़ी के अंत का मुकीला और काँटेदार भाग (ब० भाग०)

दे०—बरई । पर्या०—अरउआ (पट०-४, भाग०-१) । [**अर, आर, आराय**]
आरहा—(सं०) सत्तु, अनाज आदि की बीस पंके की नाप (मुं०-१, भाग०-१) । [**आढक (संस्कृ०), आह (हि०)]**
आरा—(सं०)—(१) पहले जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई । पर्या०—
आर (चंपा०, ब० भाग०), समार (उ०-पू० सं०), सन्हार (भाग०) । (२) सींचने के निमित्त बनी नाली का गहरा आंतरिक भाग (उ०-पू०) । पर्या०—पैन, पैनि । दौंगर (ब० सं०, पट०, गया), नारी, करहा (पट०, गया), भीता (पू० सं०), दौंग (पट०, ब०-पू०) । (३) गाड़ी के पहिये की पुट्टी के बीच में जड़ी हुई लकड़ी की मोटी और चौड़ी पट्टी । (४) लोहे का बना, रेतकर लकड़ी चीरने का दाँतीदार हथियार (बिहा०, आज०) । (५) टंकुआ या सूआ, जिससे चमड़ा सीया जाता है । [**अर, आर, आरा, आल, आलि, आलवाल]
आरि—(सं०) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़ । (बिहा०, आज०) । दे०—आर । लोको—“आरि जाई त कपार लाठी, बीच बंगा चरवाही ।” यदि तुम आरि (मेड़) पर जाते हो तो अपने सिर की रक्षा के लिए लाठी रखो, (और तब) तुम बंगा (कपास) के खेत के बीच अपने गधु चराओ । [**अर, आर, आल, आलि, आलवाल**]
आरिछोटल—(मुहा०) मेड़ काटना या छांटना (सं० भाग०-१) । दे०—गोहट । [**आरि + छोटल (बेसी)**]
आरी—(सं०)—(१) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से कुछ ऊँची उठी रहती है, मेड़ । दे०—आर । पर्या०—आरी (चंपा०-१, भाग०-१) [**आर, आलि, आलवाल**] (२) लकड़ी चीरने का एक औजार, छोटा वारा । (चंपा०,**



आरा-३



आरा-४

पट०-४, भाग०-१, आज०) । [**आर + ई<आर**]
आरीचास—(सं०) खेत के चारों ओर लम्बे-गोल बाकार की जुताई (गया, पट०-४) दे०—चोकेठा । [**आरी+चास, आर+चास (बेसी)**]
आरू—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध गोल कन्द, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (पू० सं०) । दे०—आलू । [**आहू, आलू**]
आल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेड़ । (गया, ब० मुं०) । दे—
 आर । [**आल, आर, आलवाल, आलि**]
आलू—(सं०) एक प्रकार का गोल कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (बिहा० आज०) । पर्या०—आरू (पू० सं०), अलुआ, अलुई (सं० उ०, भाग०-१) । [**आहू, आलू**]
आलो—(सं०) पूरी फसल के पकने के पहले ही खाने के लिए किसान द्वारा काटा गया अनाज (गया) । [**देशी**]
आस—(सं०) खाद (बर०-१, पूर्णि०-१) । [**आस (संस्कृ०)=राल, घूलि**]
आसन—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष (बर०-१ पूर्णि०-१) । [**असन**]
आसाचास—(सं०) जमींदार की ओर से किसान को चौपाई मालगुजारी या मालगुजारी के बिना परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, प० सं०) । दे०—खिलही [**आसा + चास (बेसी)**]
आसिन—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ और शरद ऋतु का पहला मास (सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५-१५ दिन) । आश्विन की पूर्णिमा को प्रायः अश्विनी नवरात्र हुआ करता है, अतः इस मास का नाम आश्विन पड़ा । ज्योतिष-गणना के अनुसार कभी आश्विन से ही वर्ष का आरंभ किया जाता था, तब यह पहला मास था । [**आश्विन<आश्विनी<अश्व+इन् (प्र०)**]
आहर—(सं०)—(१) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली, जलप्रवाह से युक्त, ऊँची समतल भूमि (सं० उ०, उ० प०, भाग०-१) । दे—उड़ेड़ी । (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेड़ (ब० मुं०, भाग०-१) । दे०—खाना [**आहर, आधार**] ।

भाही—(सं०) चौर (बबर) के किनारे की सोते-जैसी गहरी जमीन । [देशी]
आहुल—(सं०) मूठा या पूला से बड़ी फसल की राशि (पू० मं०, भाग०-१) । दे०—अँवाँसा । [देशी]

इ

ईकड़ी—(सं०) अनाज में पाया जानेवाला छोटा-छोटा कंकड़ । दे०—अँकड़ी । [मिला—अँकुर]
ईकरी—(सं०) दे०—ईकड़ी ।
ईगुर—(सं०) कूटकर छिलका-रहित किया हुआ जो । पर्या०—इंगुरी । [देशी, मिला०—इंगुर (=रंग), हिंगुल (संस्क०)]
ईगुरी—(सं०)—दे०—इंगुर । [देशी] ।
ईच—(सं०) एक फुट का बारहवाँ हिस्सा (हरि०, री०) ।
ईजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (सं०-१, भाग०-१) [इञ्जल=जल-प्रधान भूमि में उगनेवाला एक पौधा—मो० वि० डि०]
ईजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष । महीने के कृष्णपक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती है और रात उजेली होती जाती है । (पर० १) दे०—इजोड़िया । [इन्दुज्योतिष, ज्योतिष; ज्योतिर]
ईदरा—(सं०) ईंट, पत्थर से बनाया हुआ जड़ा कुआँ (पट०-४) । दे०—इनारा । [इन्द्रवाट, अन्धु, इरंधर < इरं = जल + धर = धारण करनेवाला, कुआँ] ।
ईदारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ । दे०—इनारा । [अन्धु, इन्द्रवाट, इरंधर] ।
ईकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक घास, जो टट्टी आदि बाँधने के काम में आती है । (चंपा०-१) पर्या०—ईकर (पट०-४) । (२) अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़ । दे०—ईकड़ी । इकट, इत्कट=एक प्रकार का सरकंडा (मो० वि० डि०) ।
इकरी—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास । (२) पान की पंक्तियों का अवलंबन (ब०-पू०, सा०) । दे०—कोरो । [इकट, इत्कट=एक प्रकार का सरकंडा]—(मो० वि० डि०) ।

इकर—(सं०) दे०—इकरी ।
इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (सा०-१, पट०-४, भा०-१) । [इजाफा (अ०)]
इजमाल लगान—(सं०) अनेक भूस्वामियों की सम्मिलित मालगुजारी (सा०-१) । [इजमाल + लगान (फा०)]
इजारा—(सं०) बंधक पर लिया गया ठीका । (पट०-४, भाग०-१) । पर्या०—जरपेशगी ठीका । [इजारा (फा०)]
इजोड़िया—(सं०) शुक्ल पक्ष (दूर०-१-पूर्णि०-१) । दे०—इजोरिया । [इजोड़िया < इन्दुज्योतिष, ज्योतिर]
इनर बेल—(सं०) एक लता-विशेष (चंपा०-१, बर०-१, पूर्णि०-१) । [इन्द्रवल्ली] ।
इनाम—(सं०) (१) जैची श्रेणी के काश्तकारों की भूमिकर से मुक्ति (पट०) । दे०—माफी । [इन + आम (अ०)] (२) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि । दे०—खरीदगी । [इन + आम (अ०)] (३) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अदालतों या कांस्टेबलों को या किसी दूसरे बड़े सरकारी अफसर के द्वारा भी ग्राम-प्रवेश करने, सिविल डालने या किसी विशेष अवसर पर मंगा गया या दिया गया पुरस्कार (च०-मं०, भाग०-१) । दे०—सलामी । [इन + आम (अ०)]
इनामत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर मुक्त भूमि । दे०—इनाम, खरीदगी । [इन + आमत (अ०)]
इनार—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ । (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१) । दे०—इनारा । [मिला०—इन्द्रवाट, इरंधर (=इरा + धर = जलधर), अन्धु, < इन्द्रागार (=सु० कु० च०)—नेपा०]
इनारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (बिहा०, भाग०) । पर्या०—ईदारा, इनार (चंपा०), इंदरा (पट०-१, भाग०-१) । [इन्द्रवाट, इरंधर (इरा + धर = जलधर), अन्धु, < इन्द्रागार (=सु० कु० च०)—नेपा०] ।
इंद्रकमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१) । [इन्दुकमल]

इमली—(सं०) एक प्रकार की लट्टी फली, जो लंबी होती है । इसका पेड़ बड़ा होता है, पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं, किंतु लकड़ी बड़ी मजबूत होती है । [अम्लिका, (संस्क०), अमिलिया (ग्रा०), इमली (हिं०), इम्लि (ने०); इमली (पं०), आमिड़ी (सि०), आमली (गु०), अमिली (मं०) अमिल्ल (सिंहा०)]
इमली के चाई—(सं०) इमली की एक गिरह (पट०-१) । [इमली के + चाई]
इमिरती—(सं०) (१) एक प्रकार का क्षारयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है । पर्या०—रमचरना (गया) । (२) एक प्रकार की मिठाई जो जलेबी के आकार की होती है । [अमृत]
इलाम—(सं०) दे०—इनाम । [इनाम (अ०)]
इलाही गज—(सं०) अकबर के समय की राष्ट्रीय नाप जो ३३ इंच की होती थी । [इलाही + गज (अ०)]
इस्तमरारी—(सं०) निश्चित कर (राजस्व) की शर्त पर भूमि जोतनेवाला असासी । टि०—मौलवी और इस्तमरारी में भेद करना प्रायः कठिन होता है । इस भेद को न तो जमींदार ही समझता है और न काश्तकार ही । [अ०]
इस्तमरारी बंदोबस्त—(सं०) भूमि के इस्तमरारी बंदोबस्त करने की प्रक्रिया [इस्तमरारी + बन्दोबस्त (फा०)]

ई

ईकर—(सं०) पान की लता का आचार-स्तम्भ, जो प्रधान कोरों के बीच में छह-छह पड़ते हैं (शाहा०, पट०-४) । दे०—सरई । [इकट, इत्कट । दे०—इकर] ।
ईंट—(सं०) सॉच में ढाला और आग में पकाया हुआ मिट्टी का चतुष्कोण, लंबा, मोटा, मकान बनाने का साधन-विशेष (सं० ब०) । दे०—ईंटा पर्या०—ईंटा (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । [इष्टका (संस्क०) > इष्टक (ग्रा०) > इष्टका (ग्रा०) > इष्टा > ईंटा > ईंट] ।
ईंटा—(सं०) दे०—ईंट । पर्या०—ईंट, ईंटा

(ब० ब०), ऐंटा (पट०, गया, ब० सं०) । लोको०—“मन में आन, बगल में ईंटा ।” —ऊपर से मोठी बातें और सद्ब्यवहार करना, पर भीतर-ही-भीतर आघात पहुँचाने की तैयारी । [इष्टका (संस्क०) > इष्टका (ग्रा०) > इष्टका (ग्रा०) > इष्टा > ईंटा, ईंटा > ईंट]
ईकर—(सं०)—(पट०-४) । दे०—इकड़ी-१ ।
ईनार—(सं०)—(चंपा०-१) । दे०—इनारा ।
ईस—(सं०)—(१) हल में लगी लम्बी लकड़ी, जिसमें जुआ या पालो जुड़ा रहता है । पर्या०—हरीस (पट०-४, ब० सं०-१, भाग०-१) । (२) ईस एक जंगली लकड़ी । [ईषा (संस्क०), ईसा (ग्रा०)]



ईस

उ

उकटनी—(सं०) बीज बोने के पहले खेत के पुराने पौधों की जड़ या घास आदि को उखाड़ कर बाहर निकाल फेंकने की प्रक्रिया । (चंपा०, पट०-४) । पर्या०—तामना (पट०-४) । [उकटन + ई < *उत्कर्षण]
उकटल—(सं०) कटे हुए अनाज के पौधों को दोनी के समय उलट-पलट करना (पट०-४, मग०-५, मं०-२) । दे०—कउरल । (वि०) उलट-पलट की हुई वस्तु । [उकट + ल (अ०) उत् + कृत्, उत् + कृष्] ।
उकठल—(सं०) पेड़-पौधों का सूखना (शाहा०-१) । (वि०) सूखा हुआ पेड़-पौधा । [उकठ + ल (अ०) < *उत्काष्ठ, अवकृष्ट] ।
उकठा—(सं०)—(१) अधिक वर्षा के कारण मरा हुआ चना या कोई दूसरी फसल (ब०-मं० शाहा०) । दे०—मराइल । (२) गेहूँ में लगा पालो का रोग, जो अनाज को सुखा देता है (ब०) । पर्या०—उकड़ा, उखरा (भाग०-१), उकसा । [अवकृष्ट * > उकटल, उकटल (ग्रा०) > उकठ, उकठ > उकठा, उकठा]
उकड़ल—(सं०)—(१) किसी पेड़ या पौधा का एक प्रकार के कीड़ा लगने के कारण सूख जाना

(चंपा०-१)। (वि०) (२) कीड़ा लगने से सुखा हुआ पेड़। [उकड़ा + ल (कि० प्र०) < *अवकृष्ट]

उकड़ा—(सं०) दे०—उकठा। [अवकृष्ट]

उकट्टल—(कि०) बेल के कंधे से जुआ का अलग हो जाना (चंपा०-१, भाग०-१)। [उकट्ट + ल (कि० प्र०) < अवकृष्ट, अवकृष्ट (१)]

उकसा—(सं०) दे०—उकठा। [उत्कर्ष, अवकर्ष]

उकाँव—(सं०) दोनों करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (शाहा०)। दे०—सिल्ली। पर्या०—सिल्ली

(पट०-४), ढेरी (भाग०-१)। [मिला० उकार, उत्कार्य, उत् + √कृ, अवक्रम < अव + √क्रम]

उकाम, उकुम—(सं०) दोनों करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (ब०-पू० मं०)। दे०—सिल्ली। [मिला० उकार, उत्कार्य < उत् + √कृ, अवक्रम < अव + √क्रम]

उकास—(सं०) बादल का हट जाना (बर०-१, पूर्णि०-१)। [अवकास, उक्तास = खुला हुआ]

उकुम, उकाम—(सं०)-(ब०-पू० मं०)। दे०—उकाम। उका—(सं०) लुका, लुकाठी, मशाल (बुं -१, भाग०-१)। [उल्का]

उकापाँती—(सं०) सन के उठलें की बनी लुकाठी, जिसमें आग लगाकर दिवाली की रात में 'दरिद्रा' को घर से बाहर निकालने का स्वांग किया जाता है। उकापाँती जलाकर लोग यह पद्य पढ़ते हैं—“उकापाँति धू-धू, लछमी घर, दरिद्रा बाहर।” [उल्का + पंक्ति]

उखड़ल—(कि०) (१) किसी गड़ी हुई बीज का उखड़ना। (२) किसी खेत की ऐसी अवस्था हो जाना कि उसमें हल न चल सके। (वि०) (३) कोई गड़ी हुई बीज, जो उखड़ गई हो। (४) ऐसा खेत, जो पानी या नदी के अभाव के कारण कड़ा हो गया हो और पुनः सींचे बिना जोता-बोया न जा सके। पर्या०—उलहल (पट०-४, मग०-५)। [उल्का]

उखड़हाल—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (ब० भाग०, भाग०-१) दे०—पंस। [उत्खात + हल्य]

उखड़ा—(सं०) अनाज को मारनेवाली एक छोटी घास, जो लता-जैसी होती है (प० मं०, भाग०-१)। पर्या०—दुधिया (प० मं०, गया, भाग०-१) हुआ। [देशी]

उखनाएल—(कि०) दोना (बर०-१, पूर्णि०-१) [उखन + आएल प्र०] < उखन < *उत्कर्षण (?)]

उखबंधना—(सं०) ऊख के बोझ को बाँधनेवाली रस्सी। (भाग०-१)। दे०—जोती। [उख + बंधना < इच्छुबन्धन]

उखम—(सं०) गर्मी—(बर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, भाग०-१)। [ऊष्मा]

उखर जाएल—(बुहा०) अधिक भार के कारण बेल का लेंगड़ाना। (पट०-४)। दे०—भर जायल। [उखर + जाएल]

उखरा—(सं०) दे०—उकड़ा, उकठा (भाग०-१)। [अवकृष्ट (संस्कृ०), उकट्ट (प्र०) > उकट, उकट्ट, उकट्टा, उखड़ा, उखरा]

उखरिमुसरा—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०-१)। [उखरि + मुसरा (बेसी), मिला०—उलुखल-मूखल]

उखरी—(सं०) लकड़ी का वह गहरा पात्र, जिसमें ढकी या मूसल से घान कूटते हैं (ब० मं०, भाग०-१)। दे०—ओखरी। [उखर + ई < उलुखल, मिला० 'उरकर' हवै उलुखल मित्याचलते—'शत०']

उखरीरा—(वि०) ओखल से गिरा हुआ। (सं०) कूटते समय ओखल से छिटककर गिरा हुआ अनाज (बुं०-१, भाग०-१)। [उखर + औरा < चाउर]

उखली—(सं०)-(१) दे०—उखरी। (२) लकड़ी का एक गहरा पात्र, जिसमें ईंट कूटकर सुली बनाई जाती है। (ब० मं०, पट०-४)। दे०—ओखरी। [उलुखल]

उखाव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत (उ० प० वि०)। पर्या०—उखाव। केतारी खेत (भाग०-१)। [उख + आव इच्छु + वप्र, व आव < ढाँव < ढाँव < स्थान, स्थाम, मिला०-एचवीन = वह खेत, जिसमें ईख पैदा होती है]



उखरी

उखाव, उखारी—(सं०) ऊख रोपने का खेत (प०)। पर्या०—उख के खेत, केतारी के खेत (अन्यत्र, नाम०-१)।

टि०—ऊख की खेती के लिए बड़ी मेहनत और सावधानी की आवश्यकता होती है, इसलिए कहा जाता है—“तीन पटावन तेरह कोइन” ऊख के पौधों को तीन बार पटाना और तेरह बार कोइना चाहिए। [उख + आव < ढाँव < स्थान, मिला०-एचवीन]

उखाड़ल—(कि०)-(१) किसी गड़ी हुई बीज को जमीन से निकालना (चंपा०-१)। (वि०)-(२) कोई गड़ी हुई बीज, जो उखाड़ दी गई हो। [उखाड़ + ल < उत्खात, मिला०—उखाड़ना (हि० पं०, ल०), उखाड़ना (हि० पं०, ल०)]

उखेलु (नं०), उखाड़ु (वि०), उखाड़ वुं (गु०), उखाड़ने (वरा०), संम० < *उविखड, उक्खड (म० भा०), उक्खलिया (भा०) संम० < *उत + स्तुत (संस्कृ०)-नेपा०]

उखारी, उखाव—(सं०)-(१)-(प०) दे०—उखाव। (२) वह खेत, जिसमें ऊख हो (शाहा०)। [उख + आरी < इच्छु + केदार]

उखाव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत। (पट०-४, भाग०)। दे०—उखाव। [उख + आव < इच्छु + वप्र वा आव < ढाँव < स्थान, स्थाम]

उखेड़ा—(सं०)-(१) ऊख का छोटा पौधा, जो उखाड़कर बाहर कर दिया जाता है (पट०-४)। (२) ऊख का छोटा पौधा, जो पानी के बिना मूसल लगता है (मग०-५, बुं०-१)। लोको०—“घान पान उखरा, तीनों पानी के चेरा”—घाष १-घान, पान और ऊख-इन तीनों को पानी बहुत चाहिए। [उख + एरा (अव्या० प्र०), उख < इच्छु]

उखेवो—(सं०) बिना चरबाहे का डोर (बुं०-१)। [उत्खेय]

उखेबा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—उखेड़ा। उखेल—(सं०) वर्षा समाप्त होना (बुं० भाग०-१)।

मुहा०—उखेल करल—पानी का पड़ना बंद हो जाना। [उखे + ल (प्र०) < अवकर (?)]

उखेता—(सं०) खेत से निचली सतह में पानी के रहने पर उसे ऊपर प्रवाहित करके सिंचाई करने की प्रक्रिया (ब०-पू०, भाग०-१)। दे०—उदह के पानी ले जाएल। [उत्क्षेपित]

उखैनी—(सं०) खलिहान में फसल की दोनी के समय पुवाल तथा डंठल आदि हटाने के काम के लिए बनी हुई एक लगी, जिसके अंतिम छोर पर लोहे का काटा देकर या बाँस की एतली शाखा (कनछी) छोड़कर एक टेढ़ी-पतली नोक बनाई जाती है। (ब० भाग०)। दे०—अखैना। [उत्खनन, उत्खेपणी, अखाया]

उखौता—(सं०) वह घुरी, जिसपर ढँकी काय करती है (गया)। दे०—अखौता। [अखवत]

उगरवाह—(सं०) रखवाला (बर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—अगोरनिहार, अगोरिया। [उगर + वाह]

उगरवाहि—(सं०) रखवाली (बर०-१, पूर्णि०-१)। [उगर + वाह + इ]

उगल—(कि०) (१) उगना, पौधों का जमना। (२) सूर्य का उदय होना। (वि०) उगा हुआ। पर्या०—जनमल। [उग + ल (प्र०) < उग < *उदग, उदगम (संस्कृ०) उगना (हि०)]

उगावल—(कि०) उगल कि० का प्र०। उगना, पौधों का उगना। [उग + आवल (प्र०) < *उदग, उदगम (संस्कृ०)]

उगाहल—(कि०) बंदा आदि की निश्चित रकम की माँगना या इकट्ठा करना, उगाहना (चंपा०-१, पट०-४)। (वि०) उगाही हुई वस्तु। [उगाह + ल < *अवग्राह, *उद + ग्राह] < *उदघातयति, उदघाटनम्—उगवात्र (प्र०), उघाउनु (नं०) उघाई (कुमा०), उगाहना (हि०) उगाहणा (पं०) < *उदग्राहयति, उगाहइ (प्र०), < *उदगृत्, उदगृते (संस्कृ०), < *उदगारयति, < उदघाट, उदघाटितः < *उदघारयति—नेपा०]

उघेन—(सं०) किसी वर्तन में बाँधकर कुर्वा से पानी सींचनेवाली रस्सी (उ०-पू० मं०)। दे०—उबहन। पर्या०—उभैन (भाग०-१)। [उद्वहन]

उचका—(सं०) टूटी दीवार, छपर, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (ब०-पू० मं०)

भाग-१)। दे०—अस्थम । [उच्चक, अचक < 'उच्च समवये'] ।

उच्चकुन—(सं०) (१) ओखलसे अनाज निकालने के समय ठेकुली को ऊपर की ओर टिकाये रखने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा (३० भाग०, पट०-४)। (२) किसी प्रकार की वस्तु के सहारे के लिए प्रयुक्त लकड़ी आदि का टुकड़ा (भाग०-१)। दे०—टंकनी । [उच्च+कुन < उच्च+करण]

उचली (सं०) अँची-नीची जमीन (३० भाग०, भाग०-१)। दे०—ऊमर-लामर । [उच्च+ली (प्र०) < उचल]

उच्चवड़—(सं०) छप्पर आदि को खड़ा रखने के लिए लकड़ी का मोटा आधार स्तंभ (३०-५० सें०)। दे०—लंभा । [उच्च+वड़]

उचास—(सं०) अँची जमीन (हजा०, पट०-४ चंपा०, भाग०)। दे०—उपरवार । [उच्चैस्]

उछटनी—(सं०) (१) हाथ से की गई घास आदि की सफाई (चंपा०, सें०)। दे०—चिखुरनी । (२) जोते या कोड़े हुए खेत से घास निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। (३) आलू या शकर-कंद के खेत में फसल कोड़ लेने के बाद खेत को कोड़कर, उससे छूटी हुई फसल को निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। [देरी]

उछाड़ी—(सं०) धनरोपनी के अन्त में किया जानेवाला सहभोज (पट०)। दे०—ओजली । पर्या०—बनउछाड़ (पट०-४)। [देरी]

उछाहल—(फि०) (१) बोने के दो-तीन दिन पूर्व खेत को जोतकर और हँगा देकर छोड़ देना (चंपा०-१)। (२) किसी घर को फिर से छाने के लिए उछाड़ना (चंपा०-१)। [उछाहल + ल (फि०-प्र०) < उत्साह < उत्+√सह]

उछिटल—(फि०) जोते-कोड़े हुए खेत से घास निकालना (चंपा०-१)। पर्या०—तामल (पट०-४)। [उछिटल + ल (प्र०) < *उत्+चिट्, मिला०—*चिट्—नेपा०]

उजड़—(सं०) ध्वस्त या बर्बाद गाँव । दे०—दमका । पर्या०—उजड़ल (पट०-४, भाग०-१)। [उजड़ना

(हि०), मिला०—उद+√ज् (=वयोहानी) > उज्जर, उज्जार] ।

उजड़ल—(वि०) (पट०-४, भाग०-१)। दे०—उजड़ । (फि०) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना । [उजड़ल + ल (प्र०) < उज्जर < उद+√ज् (=वयोहानी) । संम०—< *उज्जाटयति मिला०—जटा (संस्क०), उज्जोटेई (प्र०) —नेपा०]

उजड़ा—(सं०) (१) ध्वस्त गाँव । दे०—दमका । (२) वह खेत, जिससे फसल नष्ट हो गई है, (३) छुट्टा पशु । [उजड़ना (हि०), मिला०—उत्+√ज् (=वयोहानी) > उज्जर, उज्जार]

उज्जुज—(सं०) पानी में डूबते समय की वह अवस्था, जब डूबनेवाला पानी के ऊपर और भीतर आता-जाता है । (चंपा०-१, पट०-४) [उद्विज]

उज्जुजाइल—(फि०) पानी में डूबने या किसी चीज से मुँह ढँक जाने से उत्पन्न दवासरोग के कारण व्याकुल हो जाना (चंपा०-१)। (वि०) उद्विग्न । पर्या०—उज्जुजाएल (पट०-४)। [उज्जुज + आइल (प्र०) < उद्विज < उद+√विज]

उज्जुजाएल—(फि०, वि०) (पट०-४)। दे०—उज्जुजाइल ।

उज्जरका—(सं०) एक प्रकार का उज्जला शकरकंद (३० सें०, भाग०-१)। दे०—देरी । (वि०) कोई वस्तु, जो उजली हो । [उज्ज्वलक] ।

उज्जरकी—(सं०) तीन पक्षवारे में होनेवाली उजले रंग की मकई (सा०-१)। (वि०) उजली वस्तु । [उज्जरक + ई < उज्ज्वलक]

उज्जरकी बड़गन—(सं०) उजले रंग का मकई (पट०-१)। [उज्जरकी + बड़गन < उज्ज्वलक + वृत्ताक]

उज्जररीत—(सं०) वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद आनेवाली ऋतु (चंपा०-१)। [उज्ज्वल + ऋतु] ।

उज्जरल—(सं०) (१) उजड़ा हुआ गाँव, छुट्टा पशु, फसल विहीन खेत । दे०—दमका । (फि०) (२) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना ।

[उज्जरल + ल (वि० प्र०) उद+√ज् "वयोहानी"। < *उज्जट < उद+जटा (संस्क०) —नेपा०]

उज्जरा—(सं०) (१) वह पशु, जो किसी देशभाल के बिना चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (३० भाग०, भाग०-१)। दे०—अनेरिया । (२) बिना चरवाहे का ढोर (३० सें०)। (३) दूसरे की फसल चरनेवाला पशु (सं०-१)। (वि०) [उज्जला + जरा < उदरज्जु]

उज्जराधान—(सं०) एक धान विशेष, जो उज्जला और लंबा होता है । (पट०-१) [उज्जरा + धान < उज्ज्वलक + धान्य]

उज्जगर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है, (भाग० सं० उ०)। पर्या०—जागर (सा०, उ०-पू० सं०)। [उ+जागर < उज्जगर = अच्छा जमने वाला, ऊपर उठने वाला]

उज्जाड़—(सं०) (१) उजड़ा हुआ गाँव । (२) उजड़ा हुआ स्थान । दे०—दमका । (३) छुट्टा पशु, फसल-विहीन खेत । [उजड़ना (हि०) उद+√ज् (=वयोहानी) > उज्जर, उज्जार]

उज्जरल—(फि०) किसी पौधे को उखाड़ना, उज्जरल, किया की प्र० फि० । (चंपा०-१, भाग०-१)। (वि०)—उज्जाड़ा हुआ पौधा । [उज्जरल + ल (फि० प्र०) उद+√ज् (=वयोहानी) > उज्जर, उज्जार । < *उज्जाटयति, मिला०—जटा (संस्क०) = मूल, उज्जाडेई, (प्र०), उज्जाइयो (कुमा०), उज्जारिब (अस०), उज्जारिबा (ओ०), उज्जाड़ना (हि०, सं०), उज्जाइया (ल०), उज्जानु (ने०), उज्जाडनु (सि०), उज्जाडु (गु०)]

उज्जाह—(सं०) आषाढ़ में प्रथम-प्रथम काफी वर्षा होने पर शूलियों का सामूहिक रूप से बाहर निकलना (चंपा०-१)। [उ+जाह < *उदाज < उद+√अज् = बाहर निकलना]

उज्जमा—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देशभाल के चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (३० सें०)। दे०—अनेरिया । [उज्जिमा]

उज्जकुन—(सं०) किसी बर्तन के नीचे, उसकी सतह को बराबर करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी

बादि का टुकड़ा (चंपा०-१)। पर्या०—उच्चकुन (भाग०-१)। [उज्ज+कुन < उच्चकरण]

उमलन—(सं०) (१) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (कोड़ाई) (बसा, सं०)। दे०—जंबेरी कोरन । (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेतों से बाघ आदि की की जानेवाली सफाई (बसा, साहा०)। [देरी]

उमिलल—(फि०) किसी बर्तन से अनाज आदि का बाहर निकालना । (वि०) वह जगह, जो किसी बर्तन से नीचे रख दिया गया हो (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उमिलल + ल (प्र०), उज्ज्वलक (हि० सं० सा०), < *उद्विज < उद+√ज् (विचरन्), उद्विज < उद+ह]

उटकनी—(सं०) (१) बिउरा कूटने समय ऊख में उसे उलट-पलट करने की लकड़ी (पट०-४)। पर्या०—खोइला (पट०-४, चंपा०-१), ठोकरा (भाग०-१)। (२) बोरसो उटकनी की बाव उलट-पलट करने की लकड़ी (३० सें०, पट०-४)। [उटकन + ई, मिला०—उठ "उपघाति = छेक देना, उटकना"]

उटकल—(फि०) दे०—उकल । (वि०) उटकी हुई वस्तु ।

उटरा—(सं०) (१) मटर,चना, जौ, मूँह या कोई अन्य दो या तीन मिले हुए अनाज, जो एक ही साथ बोये गये हों (पट०)। पर्या०—उटेरा (पट०-४), उटेर (साहा०)। (२) बँलगाड़ी के भागें सगुन के नीचे लगी हुई एक मजबूत लुंटी, जिससे वह जमीन पर न गिरने पाती है । [देरी]

उटेर—(सं०) (१) दे० उटरा । (२) जौ-मूँह के साथ एक-दो करके बोया जानेवाला मटर या चना (साहा०)। मुहा०—उटेर बौआल—उटेर का बीना । उटेर उखाड़ल—उटेर का उखाड़ना । उटेर कबाइल—उटेर का उखाड़ना ।

उटेरा—(सं०) दे०—उटरा (पट०-४, भाग०-१)। छट्टा—(सं०) बिना अनाज मजदूरी लिए



काम करने वाला हलवाहा (पू० सं०, ब० सं०, भाग०-१) । [उत्थ < उत् + √स्था]
उठती—(सं०) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती (चंपा०) । दे०—अवाद । मिला०—परती वा पड़ती । [उठती, उठना (हिं०) < उत् + √स्था]
उठल—(क्रि०)—(१) उठना, खड़ा होना । (२) मादा पशुओं का मँथनेच्छक होना । पर्या०—बरदियाएल, मँसाएल । (बि०)—उठी हुई, मँथनेच्छक, [उठ+ल (प्र०) < उठ < *उत्थ < उत् + √स्था, उठनु (ने०) < *उत्थति, मिलाः—उत्तिष्ठति (संस्क०), उत्थाति (पा०), उत्थेदि (प्र०)]
उठाएल—(क्रि०)—(१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या संग्रह करना । (२) किसी वस्तु का उठाना । पर्या०—काछल (उ०-प० उ०-प० सं०), पोछल (उ०-प० सं०) । [उठा+एल (क्रि० प्र०, प्रे०), उठना (हिं०) < *उत्था < उत् + √स्था । उठाउनु (ने०) < *उत्थाय्य, मिला०—उत्थापयति (संस्क०), उत्थापेति (पा०), उत्थावेदि (प्र०), उठुनी (कुमा०), उठान (बं०), उठाइवा (ग्रो०), उठना (हिं०), उठाउणा (पं०), उठावु (गु०), उठविणे (मरा०)—नेपा०]
उठान हारल—(सं०) किसी मवेशी की वह अवस्था, जब कमजोर होने से उससे उठा-बँटा नहीं जाता (चंपा०-१) । पर्या०—उठौना हारल (भाग०-१) । [उठान + हारल]
उठानो—(सं०) अनुपयोगी, दुबल गाय या भैंस (ब० भाग०, भाग०-१) । दे०—टुटाह । [उत्थापनीय = स्वयं उठने में असमर्थ, उठने योग्य]
उठारा—(सं०)—(१) धान के रोपने का अंत होना (सं०-१) । (२) किसी नव (प्रारंभ) हुए काम का अंत होना (सं०-१) । [उत्तर, उत्तरार]
उठौना—(सं०)—प्रतिदिन नियत दर पर नियमित रूप से दूध या किसी वस्तु को देने का काम या भ०व (सं०-१, भाग०-१) । [देशी]
उठौना हारल—(सं०) (भाग०-१) दे०—उठान हारल । [उठौना + हारल]

उठौनिहार—(बि०)—(१) पोस्ते की फली पर इकट्ठी हुई अफीम को उठानेवाला पुरुष । (२) किसी वस्तु को उठानेवाला पुरुष । पर्या०—उठौनिहारिन (स्त्री०) । [उठौनि + हार (प्र०)]
उठौनिहारिन—(बि०) “उठौनिहार” का स्त्री० दे०—उठौनिहार । [उठौनि + हारिन]
उड़ल—(क्रि०) उड़ना । (बि०)—उड़ी हुई वस्तु ।
उड़ावल—(क्रि०) उड़ल किया का प्रे० । उड़ाना, चिड़ियों का खेतों से मगाना । [उड़ाव + ल, उड़ + आवल (प्र०) < *उड्यु < उड्ययति (संस्क०), उड़वावेदि (प्र०), उड़ाना (हिं०), उड़ाउनु (ने०), उड़ान (बं०), उड़ौना (पं०)]
उड़ाहल—(क्रि०)—(१) किसी नये बतन को काम में लाना (चंपा०-१, सा०-१, पट०-४, भाग०-१) । (२) कुएँ की सफाई के लिए उसके कीचड़, पानी आदि को निकाल डालना (पट०-४, शाहा०-१, सबं०) । [उड़ाहल (?)]
उड़कल—(क्रि०) किसी वस्तु का नीचे की ओर लुढ़कना । (बि०) लुढ़की हुई वस्तु । [उड़क + ल (प्र०) < उड़क, उकट < *अवकर्ष < अव + √कृष्]
उड़कावल—(क्रि०) उड़कल किया का प्रे० क्रि० । किसी वस्तु को ऊपर की ओर से नीचे की ओर लुढ़काना । उकसाना (बि०) लुढ़काई हुई वस्तु । [उड़क + आवल (प्र०) < उत्कर्ष < उत् + √कृष्, अवकर्ष < अव + √कृष्]
उड़काहु—(सं०) वह ढालू स्थान, जहाँ से किसी चीज के गिर जाने का भय रहता है (चंपा०-१, भाग०-१) । [उड़क + आहु < अव + कृष्]
उतरल—(क्रि०) उतरना, ऊपर से नीचे आना । [उत्तर + ल (प्र०) < *अवतर < अव + √तृ]
उतरा—(सं०) उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद नक्षत्र; किंतु विशेषतः उत्तरा से उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र ही लिया जाता है । यह निम्नांकित कहावत से प्रमाणित होता है—
 उतरा में जनि रोपहुँ संया ।
 तीन धान होए तेरहे पैया ॥
 —हे भाई, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में धान मल रोपो, यदि रोपो में तो तीन धान मिलेंगे और तेरह खेती मिलेगी ।

उतराखाड़—(सं०) इक्कीसवाँ नक्षत्र, उत्तराषाढ़, यह पूरा महीने में पड़ता है । [उत्तराषाढ़]
उतरा फाल्गुनी—(सं०) बारहवाँ नक्षत्र, उत्तर फाल्गुनी, यह प्रायः मादो के शुक्लपक्ष में पड़ता है । [उत्तरा + फाल्गुनी < *उत्तर + फाल्गुनी]
उतान—(बि०) उतान, उलटना । उतान होअल (मुहा०)—उलट जाना, चित हो जाना । [उतान]
उतारल—(क्रि०) उतरल क्रि० का प्रे० । उतारना, गाड़ी का जूआ या हल का पालो बल के कंधे से उतारना । [उतार + ल (प्र०) < *उत्तर < उत् + √तृ, (संस्क०) उतारना (हिं०), उतानु (ने०), उताड़ना (पं०), उतारु (गु०), उतारु (मरा०)]
उतेर—(सं०)—(१) मटर का हरा और कोमल छीमीदार पौधा, जो खेत से उखाड़ लिया जाता है (सा०-१) । (२) मवेशियों के खाने के लिए रखी हुई या निकाली हुई फसल या घास (शाहा०-१) । (३) कमजोर पौधा, जो खेत से निकाल दिया जाता है । [उ + तेर < *अवतीर्य, अवतर]
उतर भाद्रपद—(सं०) छब्बीसवाँ नक्षत्र, उत्तर भाद्रपद, यह फाल्गुन कृष्ण में पड़ता है । [उत्तर + भाद्रपद]
उथर—(बि०) छिछला (पट०-४, भाग०-१) दे०—उथल । [उ + थर < *उत्थल, उत्थल]
उथल—(बि०) कम गहरा, छिछला (चंपा०-१) । पर्या०—उथर (पट०-४, भाग०-१) । [उत्थल < *उत्थल, उत्थल]
उदंगर—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (पट०) । दे०—अनेरिया । पर्या०—उदाम (भाग०-१) । [< *उदराल = बँधन से निकला हुआ]
उदंत—(सं०) वह मवेशी, जिसके दूध के दाँत अभी नहीं टूटे हों (पट०-४, चंपा०-१, भाग०) । पर्या०—अदंत (पू०, भाग०-१) ।
 “उदंत बरदे अदंत बिआय,
 आप जाय या खसम लाय ।”—घाघ ।
 यदि मवेशी अदंत ही बरदाय (गामिन हो) और बच्चा दे, तो वह या तो स्वयं मरे या स्वामी का नाश करे ।
 [उ + दन्त < *अ + दन्त]
उदह के पानी ले जाएल—(मुहा०) खेत की सतह से नीचे पानी रहने पर उसे ऊपर प्रवा-

हित कर सिंचाई करना । उक्त प्रकार की सिंचाई की प्रक्रिया (पट०-४, सा०-१) पर्या०—उखैया (ब०-पू०) । [उदह < *उदवाह]
उदाम—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के ही चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (भाग०-१) । दे०—अनेरिया । [< *उदाम < उद + दाम = बंधन रहित]
उदाल—(सं०)—(१) एक प्रसिद्ध वृक्ष का बीज । (२) उस बीज की माला (पट०-४) । [उदाल]
उधार—(सं०) वह रकम, जो चुका देने के वादे पर ली गई हो (पट०-४, चंपा०-१, भाग०-१) । [उद + हार = उधार < *उधार]
उधेरल—(क्रि०) किसी कंद आदि को हाथ से खोदना (चंपा०-१) । (बि०)—हाथ से खोदी हुई वस्तु । [उधे + रल (क्रि० प्र०) < उध + रल]
उनटा चिरचिरी—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम आती है (पू० सं०, गया, पट०-४, भाग०-१) । [उनटा < उलटा < *उल्लट । चिरचिरी (= भ्रमामां)]
उनवल—(क्रि०) घिर आना (सासकुर घटा का-चिरना) (चंपा०) । [उनव + ल (क्रि० प्र०) < *उनम < उद + नम = मुकना]
उनहल—(बि०) लकड़ी की वस्तुओं या कुदाल, हल-जंसी चीजों का किसी कारण टूट-भेड़ा होना या उभर जाना । [< *उन्हल, उल्लह]
उनवाहा—(सं०) खेत जोतने के समय किसी आदमी के एवज में किसी दूसरे आदमी का काम करना (सा०-१) । [< *अन्वाह < अनु + आ + वह + आ (= घञ)]
उनाह—(सं०)—(१) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई करने और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (उ०-पू०, उ०-पू० सं०, भाग०-१) । पर्या०—गजर (उ०-पू० सं०), समाह (पट०), बिराह (गया), बिदाह (प०, पट०, गया), बिदहनी (चंपा०, ब०-पू०) । उवाहना, उनाहान, उनाहना (दर०-१, भाग०-१) । [उन + आह < उन + वह < अनु (पीछे) + वह] (२) किसी रोग से मुक्त होने के लिए भाग लेना

(चंपा०-१)। (३) बीज छीट देने के दो-तीन दिनों के बाद खेत में हल जोतना (चंपा०-१)।
[उत्तान, उद्वाह, मिला० उज्जह]
उनाहना—(सं०)—(बर०-१)। दे०—उनाह।
उनाहोन—(सं०) बीज बोने के बाद भी मिट्टी गीली रहने पर उसे आड़े-बाड़े (सोमार) जाँच कर और हँगा देकर खेत को बराबर कर देना (बर०, पूणि०-१)। दे०—उनाह। [अनुवाहन]
उपचावेंड़ी—(सं०) दूसरे द्वारा निश्चित की हुई रकम से अधिक देकर बीज प्राप्त करने की चेष्टा (चंपा०-१)। [उपचयविधि, उपचयवृद्धि]
उपछल—(कि०) हाथ या किसी बीज से पानी बाहर फेंकना (मुं०-१, भाग०-१, चंपा, पट०-४), (वि०) उपछा हुआ (सं०); पानी उपछने की प्रक्रिया। पर्या०—उबछल, उबिछल। [उपछल < उपोछल (प्रा०) < *उत्प्रोच्छल]
उपजा—(सं०) फसल, पंदावार (बर०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उत्पाद]
उपटल—(कि०) (१) पानी का उमड़ना या भेड़ या बाँध से बाहर आ जाना (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१) (२) किसी हथियार की बेंट का ढीला होकर निकल जाना (चंपा०)। (३) बाड़ या वर्षा के कारण पानी का घेरे से बाहर निकल कर बहने लगना (चंपा०-१, भाग०-१)। [उपट+ल (कि० प्र०) < *उत्पटन, उत्पत्तन]
उपटँड—(वि०) वह ठोकी हुई बीज, जो ढीली होकर निकल जाती है (चंपा०-१)। [उपटँ + औँड < *उत्पत्तयालु]
उपटा—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोल कर जमीन की सतह से ऊँची सतह पर जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण की जानेवाली की खेत धारावाहिक सिंचाई (ब० भाग०, पट०-४)। दे०—अपटा। [उपटा < उपट < *उत्पट, उत्पत्त]
उपटावल—(कि०) उपटल कि० का प्र०। उपटाना। [उपट + आवल (प्र०) < *उत्पट, उत्पत्त]
उपरपाटो—(सं०) हल और हरीस के जोड़ में लगाया जानेवाला ऊपर का दूसरा पंचड़ (ब० भाग०, भाग०-१, दे० चली। पर्या०—पाटा (पट०-४) पाट (चंपा०)। [उपर + पाटो < उपरि + पाट]



उपरवार—(सं०) ऊँची जमीन (पट०, उ०-४०, भाग०-१)। पर्या०—वहरभूम (ब० भाग०), उपरार (पू० भाग०); बिहौस (पट०), टोंड (गया, ब० मुं०, चंपा०), डील (शाहा०), डीह (ब० भाग०, भाग०-१), उचास (हजा०), डीवर (हजा०), भिट्टा (भाग०-१) उपराहुत, उपराहुत (चंपा०)। [उपर + वार (प्र० = बाला) < कल (संस्कृ० प्र०), < *उपरिवार]
उपरावेंड़ी—(सं०) प्रतिस्पर्धा (चंपा०-१)। दे०—उपचावेंड़ी। [उपरा + वेंड़ी < *उपरिवृद्धि]
उपरार—(सं०)—(पू० भाग०)। दे०—उपरवार। [उपर + आर < उपरवार]
उपराहुत—(सं०) दे०—उपराहुत, उपरवार।
उपरौछल—(कि०) बाड़ आदि के पानी का, किनारे को पार कर ऊपर से निकलना (शाहा०-१)। [उपरौछ + ल (प्र०) < ऊपर + औछ < उंच, *उदंच = बाहर निकलना]
उपलाइल—(कि०) किसी हलकी बीज का पानी के ऊपर की सतह पर बहना। (वि०) उपलाया हुआ (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—उपलाएल (पट०-४)। [उपल + आइल (प्र०) < *उप + लुल = तैरना, ऊपर छहलाना]
उपलाएल—(कि०)—(पट०-४)। दे०—उपलाइल।
उपाइल—(कि०) घान या किसी फसल को जड़-समेत खींचकर उखाड़ लेना (बर०-१, पूणि०-१)। [उपाइ + ल (कि० प्र०) < *उत्पाट < उत् + पाट]
उफंगिया—(सं०) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर (गया, चंपा०)। दे०—जन। [देशी]
उबछल—(कि०)—(सा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल।
उबहन—(सं०) किसी बर्तन में बाँधकर पानी निकालनेवाली रस्सी (पट०-४, चंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—उबहनी, उबहैन (ब० भाग०), उघेन (उ०-पू० भाग०), उभैन (भाग०-१)। [< *उद्धहन]
उबहनि—(सं०) लाठ में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (चंपा०, उ०-पू० भाग०, पट०-४)। दे०—बरहा। [< *उद्धहन]

उबहनी—(सं०)। दे०—उबहन। [< *उद्धहन]
उबहैन—(सं०)—(ब० भाग०)। दे०—उबहन।
उबिछल—(कि०) हाथ की खंजिल या किसी ठकने आदि से पानी उलीच कर खेत पटाना (चंपा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल। [उबिछल < उपछल < उपोच्छल (प्रा०) < *उत्प्रोच्छल (संस्कृ०)]
उबेर—(सं०)—(१) वह खेत या मंदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (शाहा०)। दे०—चराई। [< *उद्वृत < उद + वृ (?)] (२) वर्षा बंद हो जाना (बर०, चंपा०-१)। [< *उद्धार, < *उद्वेल (?)]। (३) फसल कटने के बाद वे खेत, जहाँ गाएँ आदि चरती हैं। [उद्वृत]
उबेरा—(सं०) वह खेत या मंदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (ब० मुं०)। दे०—चराई। [< *उद्वृत < उद + वृ]
उभर-खाभर—(सं०) ऊँची-नीची जमीन (उ०-पू०, ब०-पू० भाग०-१)। पर्या०—मटहा (उ०-पू० भाग०), डावर (चंपा०, उ०-पू० भाग०), उबर-खाबर (पट०, गया, ब० मुं०, सा०), ऊँचखाल (पट०, चंपा, प०), ऊलर-खाबड़ (शाहा०), उबली (ब० भाग०)। [उदभर + खात, उपरि + खात अथवा उभर का अनु०]
उभैन—(सं०) कुआँ से पानी निकालने की डोरी (मुं०-१, भाग०-१)। दे०—उबहन। पर्या०—उबहन (पट०-४)। [< *उद्धहन]
उभकल—(कि०) किसी वस्तु का उभंग में आकर उछलना-कूदना। उत्तेजित होना। जोश में आना (मुं०-१, चंपा, पट०-४)। [< *उद + भंक = चलाना > उन्मंकल, उभक्नु (ने०) < *उकम, < *उत्कमयति (?), मिला० क्राय्यति, उत्क्रामति (संस्कृ०), उत्क्रामति (पा०), उत्कर्म (प्रा०)—नेपा०]
उभमी—(सं०) होरहा बनाने के लिए मड़ूए की काटी हुई हरी बाल (प०, भाग०)। पर्या०—ऊमी, उनी (चंपा०)। टि०—जो और गहूँ की बाल को आग में भूनकर भी उभमी बनाई जाती है (शाहा०)। [< *उलमुक

(संस्कृ०), उम्मुत्र (प्रा०) मि०—उम्मुत्थित्र (प्रा०) = दण्ड, जला हुआ]
उरकुस्सी—(सं०)—(१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते आदि फसल को हानि पहुँचाती है (ब०-पू० वि०)। पर्या०—बिछौसिया, बिछवतिया, भरभाड़ (ब०-पू० शाहा०), ठोकरा (शाहा०, चंपा०)। (२) एक प्रकार का पोषा, जिसकी पत्तियों के लगने पर जोरों से खुजलाहट होती है (मुं०-१, चंपा०, भाग०-१)। मुहा०—उरकुस्सी लगल = व्याकुल होना, स्थिर न रहना। [कवाड़ (हि०), आलाकुशी, आलाकुशी (ब०), < *अलिशूक (संस्कृ०)]
उरदी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का, छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी दाल पकने पर चिकनी होती है। दे०—उरिद। [शुद्ध (१), उडिद (बैंगी)—'उडिदो माष-धान्यम्—दे० ना० मा०]
उरिद—(सं०) दे०—उरदी। पर्या०—कलाई, कराई, कलाय (भाग०-१), मास कराई (पू० भाग०), उरीद (बर०-१, पूणि०-१, भाग०-१)। [< *शुद्ध, (१), उडिद (बैंगी) उडिदो माषधान्यम्—दे० ना० मा०। माष (संस्कृ०), मास (पा०, प्रा०), माह (प०), उडद, उडिद (हि०), माषकलाय (ब०), उडिद (मरा०), उडद, ऊडद (गु०), उरिद, उरदु (सि०)]
उलटल—(कि०) उलटना, गाड़ी आदि का उलट जाना। [उलट + ल (प्र०) < *उल्लट, √उल्लट्यते। वुल्टावुन (कश्मी०), ओलटिव (प्रस०), उलटा (ब०), उलिटवा (बो०), उलटना (हि०), उलटनु (ने०), उलटणा (प०), उलटणो (मरा०), उलटवु (गु०)—नेपा०]
उलटावल—(कि०)—उलटल कि० का प्र०। उलटाना।
उलटा सरसों—(सं०) वह सरसों, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी न होकर नीचे की ओर झुकी होती है (प्रायः सबैज)। [उलटी + सरसों < *उल्लट + सर्वप]
उलरुआ—(सं०) गाड़ी की पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए लकड़ी या बाँस की बनाई

हुई धुंधी (बिहा०, ब्राज०)। दे०—एड़ा।
[उलार, उलरना (हि०),
< √ओलडि 'उत्वे-
पणे = ऊपर उठाना,
फेंकना; ओलपडक, उल-
पडक। < *उल्लाटयति,
*उल्लटति—नेपा०]



उलरभा

उलवा—(बि०) उबाला या भूना हुआ अनाज।
उलवा दाल—(सं०) उलाई (ग्राम पर भूनकर
बनाई हुई) दाल। दे०—दाल। पर्या०—उलावल
दाल (पट०-४, भाग०-१)। [उलवा + दाल,
उलवा < √उल = जलाना अथवा आग पर
थोड़ा भूना]

उलहल—(फि०) (१) दे०—उलाइल २, ४। (२)
घूष या शूष्क हवा लगने से कच्ची लकड़ी का
सूख कर टेढ़ा हो जाना। (पट०-४, भाग०-५)
दे०—उनहल। [उलह + ल (प्र०) < उलह
< *उलह (?) < उद + √नह]

उलार—(सं०) पीछे भार पड़ने के कारण गाड़ी
का पीछे की ओर झुक जाना (चंपा०-१, पट०-४,
भाग०-१, ब्राज०)। मुहा०—उलार होअल
= उलार होना। [< *उलपड, < *ओलपड
< ओलडि (उल्लेपणे) वा < *उल्लाट, उल्लाट-
यति, उल्लटति (संस्कृ०)—नेपा०]

उलावल—(फि०) किसी अनाज को हल्के-हल्के
भूनना (चंपा०-१, मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)।
(बि०) उलाया हुआ अनाज। [उलाव + ल,
उल + आवल (प्र०) < √उल = भूनना,
गर्भ करना]

उलावल दाल—(सं०) दे०—उलवा दाल।
[उलाव + ल (बि० प्र०) < √उल = भूनना]

उसकावल—(फि०) (१) धान आदि को
उबालते समय, किसी लकड़ी से चलाना। (२)
चिउरा कूटते समय ओखल में लकड़ी या बाँस
के छोटे डंडे से उसे चलाना। (३) दीपक की
बत्ती को आगे की ओर उसकाना (चंपा-१,
मुं०-१, भाग०-१) [< *उत्कर्ष, < *उत्कर्ष]
उसटल—(फि०) फसल का उठ जाना या खतम हो
जाना (मुं०-१)। [उसट + ल (प्र०) < *उत्सद
< उत् + √सद]

उसटावल—(फि०) फसल को उठा लेना
या उबाड़ना (मुं०-१)। [उसट + आवल
(प्र०) < *उत्सद < उत् + √सद]

उसठ—(सं०) (१) कमजोर मिट्टी (गं० ब०,
पट०-४, चंपा, भाग०-१)। दे०—हुलक।
(२) किसी रसीली चीज का रस सूख जाना
(चंपा०)। [< *उत्सृष्ट]

उसनल—(फि०) धान या किसी अनाज को
उबालना (मुं०-१, भाग०-१, चंपा०)। (बि०)
—उबाला हुआ, उसना हुआ धान आदि।
[< *उष्ण < *उत्सवेद। < *उत् श्रीणाति,
मिला०—श्रीणाति (संस्कृ०), उसनना
(हि०), उसिन्नु (ने०)—नेपा०]

उसना, उसिना—(सं०) (१) धान उबालकर
तैयार किया हुआ चावल (मुं०-१, चंपा०,
भाग०-१)। दे०—चाउर। (२) अरहर, भूंग,
चना आदि को उबालकर बनाया गया खाद्य
पदार्थ (बर०-१, पूर्णि०-१)। [< *उष्ण,
< *उत्तिवन्न < उत् + श्राण]

उसनापौरी—(सं०) धान उसनने का काम
(मुं०-१, भाग०-१)। [उसना + पौरी < पर्यय]

उसरल (फि०) किसी काम का जल्दी-जल्दी
पूरा होना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)।
[उसर + ल (फि० प्र०) < *उत्सर]

उसिनल—(फि०) पानी में धान आदि डाल-
कर, आग पर रखकर उबालना (चंपा०-१,
पट०-४)। (बि०), उबाला हुआ। [उसिन +
ल, उष्ण, उत्तिवन्न]

उसिना—(सं०) (चंपा०-१)। दे०—उसना।

उस्सर—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो
और जो खेती के योग्य न हो (पट०-४,
चंपा०, भाग०-१)। दे०—ऊपर + [ऊसर]

ऊ

ऊँट—(सं०) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु, जो लंबी
और ऊँची गर्दनवाला होता है तथा रेगिस्तान
में बहुतायत से पाया जाता है। कहीं-कहीं
इससे हल चलाने का काम भी लिया जाता है।
पर्या०—शुतुर (मु० प्र०)। [उष्ट्र (संस्कृ०),
उठ्ठ (प्रा०)]

ऊँटा—(सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से
खजली की चिकित्सा के लिए तेल बनाया जाता
है (ब० मुं०, भाग०-१)। [उष्ट्रकपटक]

ऊँख—(सं०)—दे०—ऊख।

ऊख, ऊखि—(सं०) एक प्रकार का दंडाकार पौधा,
जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी
आदि बनाई जाती हैं। पर्या०—केतारी (ब०,
पट०, गवा, द०-पू० बिहा०), कुशियार उ०-पू०
मुं०)। [< *इक्षु (संस्कृ०), इक्षु (प्रा०), आक,
इक्षु, कुशिर (ब०), ऊँख, उस (मरा०), उस,
शेरडी (गु०), काबुपुदु, कनु (क०), चिकु, ते०),
इक्कु (ता०), सैंठि, सैंठि सेलड़ी (मरा०),
गन्ना, गंडा (पं०), करम्ब (द्रा०), नए शकर
(का०), कसमुसुकर (ब०), ईख, ऊख (हि०)।
[केतारी < कान्तार कुशियार < कौशकार]

ऊख नम्बर २४—(सं०) ऊख का एक पारि-
भाषिक भेद। यह हल्के लाल रंग का पतला
ऊख है। यह बंसी नीची जमीन में, जहाँ पानी
जमा होता है, रोपा जाता और अधिक परि-
माण में उपजता है (बिह०, री०)। [ऊख +
नम्बर + २४ < ऊख (हि०) + नंबर (बं०) +
२४ (संख्या)]

टि०—ऊख के साथ दिये ये नंबर भारत की विभिन्न
ऊख-अनुसंधानशालाओं के वैज्ञानिक शोध के
विभिन्न प्रयोगों पर आधारित हैं।

ऊख नम्बर ३१३—(सं०) ऊख का एक पारि-
भाषिक भेद, जो उजले रंग का होता है। इसकी
उपज अच्छी होती है, इसका छिलका पतला
होता है। यह ऊख नरम और रस से भरा होता
है। इसका गुड़ साफ होता है। चीनी की मात्रा
भी अधिक होती है। आजकल बीमारी लगने के
कारण इसकी खेती बहुत कम हो गई है (बिह०,
री०, हरि०)। [ऊख + नम्बर + ३१३ < ऊख
(हि०) + नंबर (बं०) + ३१३ (संख्या)]

ऊख नम्बर ३२१—(सं०) ऊख का एक पारि-
भाषिक भेद। यह लाल रंग का और मोटा
होता है। यह नरम और रसीला होता है।
इसका गुड़ अच्छा नहीं होता। कुछ वर्ष पूर्व
इसकी खेती खूब होती थी। इसमें बीमारी
लग जाने के कारण इसकी खेती अब कम हो

गई है (मिला०-लाल गोंड़ी, लाल गेंड़ा) (बिह०,
री० हरि०)। [ऊख (हि०) + नम्बर
< नंबर (बं०) + ३२१ (संख्या)]

ऊख नम्बर ४१६—(सं०) ऊख का एक पारि-
भाषिक भेद। यह काफी मोटा और वजनदार
होता है। इसकी उपज अच्छी होती है।
(बिह०, री०)। [ऊख (हि०) + नम्बर < नंबर
(बं०) + ४१६ (संख्या)]

ऊख नम्बर ४४३—(सं०) ऊख का एक पारि-
भाषिक भेद, जो काफी मोटा और लंबा होता
है। पर्या०—समसेर (री०), इडहवा, रुसी-
हवा (भोज०), कटहवा (मग०)। [ऊख (हि०)
+ नम्बर < नंबर (बं०) + ४४३ (संख्या)]

ऊखर-खाबड़—(सं०) (साहा०) दे०—उमर-
खाबर। [ऊखर + खाबड़, ऊखर < उखड़ा <
उखड़ना (हि०) < *उत्कर्षण < *उत्तन्नन;
खाबड़ < खर्पर (?)]

ऊखि—(सं०) (बं०, भोज०, ब्राज०)। दे०—ऊख।
ऊना डेढ़ी जोत—(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई
(चंपा०)। दे०—ऊना ड्योड़ी जोत। [ऊना
+ डेढ़ी + जोत—(यौ०)]

ऊना ड्योड़ी जोत—(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई
(सा०, पट०)। पर्या०—ऊना डेढ़ी जोत (चंपा०)।
[ऊना + ड्योड़ी + जोत—(यौ०)]

ऊना फानी—(सं०) खेत की चोड़ाई की ओर
से जुताई (पट०)। दे०—फानी। [ऊना +
फानी—(यौ०)]

ऊनी—(सं०) (चंपा०)। दे०—उम्मी, ऊमी।
[मिला०—उम्मी]

ऊपराहुत—(सं०) ऊपर की ओर वाली जमीन।
ऊँची जमीन (चंपा०-१)। दे०—ऊपरवार।
[ऊपर + आहुत < उपरि + आभूत (?)]

ऊबर-खाबर—(सं०) (पट०-४, भाग०-१)।
(दे०—उमर-खाबर)। [ऊबर + खाबर, ऊबर
< उदकर्म (?), खाबड़ (घनु०) वा < खर्पर]

ऊमि—(सं०) महुए के कच्चे दाने, जिन्हें पीस-
कर और तल कर बड़ी बनाई जाती हैं या जो
भून कर खाये जाते हैं (चंपा०-१)। [मिला०—
उम्मी]

ऊमी, उम्मी—(सं०) होरहा बनाने के लिए महुए

की काटी हुई हरी बाल (प० मं०, चंपा०-१)।
दे०—ऊम्मी। पर्या०—ऊनी (चंपा०)।

[मिला०—ऊम्मी]

ऊम्मी, ऊमी—(सं०) दे०—ऊम्मी, ऊमी।

ऊलुस—(सं०) खाने के बाद नीकर के लिए छोड़ दिया गया जूठन। दे०—नेवाला। [देशी]

ऊसर—(सं०) (भाग०-१, चंपा०, प्रायः सर्वत्र)।
दे०—ऊसर। पर्या०—ऊसर, रेहाइ, रेहाइ

(पू० मं०), रेहड़ा (पट०, गया, ब० मुं०)।
[ऊसर]

ए

एँकरी—(सं०) विना साफ किया हुआ चावल।
(पट०-४)। दे०—अकरी। [एँकर + ई
एँकर एँकर एँकर एँकर एँकर
एँकर]

एँझियावल (कि०)—(१) एँडी से मारना (मुं०-१
चंपा०, भाग०-१)। २—एँडी से रौटना (मुं०-१,
भाग०-१)। [एँड + झ्या + आवल (कि० प्र०)
एँड एँड एँड]

एँसो—(सं०) वर्तमान साल, चालू वर्ष (चंपा०-१,
भाग०-१)। [एँसो + एँसो]

एक चास—(सं०) जमीन की पहली बार
हुई जुताई (पट०-४, भाग०-१, चंपा०, प्रायः
सर्वत्र)। [एक + चास (देशी)]

एकजाई करल—(मुहा०) एक से अधिक भूमिखंड
(होल्डिंग) को इकट्ठा करना या बतलाना
(सा०-१)। [एक जति + एक जाई]

एकठउरी—(सं०) अनेक चीजों का एक साथ का
मिश्रण (चंपा०-१, भाग०-१)। [एक + ठउरी
एँसी स्थली (?)]

एकठा—(सं०)—(१) हंग का चौरस लंबा काष्ठ-
फलक (शाहा०)। दे०—
पल्ला। (२) छोटी नाव
(चंपा०)। (३) वह हंगा,
जिसमें दो बैल जोते जाते
हैं (चंपा०)। [एक +
काठ काष्ठ]



एकठा

एकठौरी—(सं०) दे०—एक ठउरी।

एकड़—(सं०) भूमि की नाप, जो एक बिगहा

बारह कटों के लगभग होती है। लेकिन इसकी
निश्चित नाप ४८४० वर्गगज है। (सा०-१,
पट०-४)। [एकर (प्र०)]

एक तौल—(सं०) पूरे (छाठ) दाँत हो जाने के
बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल (प्रायः
सर्वत्र)। दे०—तौल। [एक + तौल]

एक फसिला—(सं०) वह जमीन, जिसमें साल
में एक ही बार फसल पैदा होती है (पट०-४,
भाग०-१)। पर्या०—एकफसिली, एक-
सलिया (चंपा०)। [एक + फसिला (का०)]
एकफसिली—(सं०) दे०—एकफसिला। [एक +
फसिली (का०)]

एकबग्गा—(सं०) वह मुँहजोर व्यक्ति या मवेशी,
जो किसी बात पर ध्यान न दे और जिधर मुँह
उधर ही रहे (चंपा०-१, मुं०-१, पट०-४,
भाग०-१)। [एक + बग्गा + वर्ग, एँसो +
एकवन—(सं०) आक (अकवन) नामक पोषा-
विशेष (शाहा०-१)। [अक]

एकबाँह—(सं०) खेत की पहली बार की जुताई।
दे०—एकबास। [एक + बाँह + बाह, बाहु (?)]
एक रउनी—(सं०) किसी खेत की एक बार की
निकोनी (चंपा०-१)। पर्या०—निकौनी
(पट०-४)। [एक + रउनी (देशी)]

एकरी—(सं०) विना साफ किया हुआ चावल (पट०-४)
दे०—अकरी। [एकरी + अकरी + अकृतक]
एकवाई—(सं०) (१) गाड़ी की वह लोक, जो
एक तरफ अधिक गहरी हो और दूसरी ओर
अधिक ऊँची हो (चंपा०-१, भाग०-१)।
(२) पानी पटाने के लिए बार (मंडू) के पास
बनी नाली (सा०-१)। [मिला०—एकावलि]
एकसलिया—(सं०)—(चंपा०)। दे०—एक-
फसिला। [एक + सलिया + साल (का०)]

एक साल के तौल—(सं०) पूरे (छाठ) दाँत हो
जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल।
दे०—तौल। [एक + साल + के + तौल (यौ०)]

एकसिधा—(बि०) एक सोंगवाला बैल, भैंसा
आदि (भाग०-१) पर्या०—सिघटुट्टा (पट०-४,
भाग०-१), एकसिहा। [एक + सिधा
एक + श्रृंगक]

एकसिहा—(बि०) दे०—एकसिधा।

एकहन—(सं०) वह जल, जिसमें दूसरा जल
नहीं मिला हो (शाहा०-१)। [एक + हन +
एक + अन्न वा < एकधान्य]

एकहरा—(सं०) वह हंगा, जिसमें दो ही बैल
जोते जाते हैं (ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—
हंगी। पर्या०—दुबुरधिया (चंपा०)। [एक +
हरा (प्र०) + शस (संस्क० प्र०)]

एकहुला के माल—(सं०) किसी खेतिहर का
एकमात्र पशु (चंपा०)। [एक + अहुला + के
+ माल—(यौ०)]

एकैस—(सं०) इकतीस की संख्या। [एक +
ऐस < एक विंशति]

एकैसिया—(सं०)—(१) फसल के २१ बोझों
की एक राशि (शाहा०)। (२) फसल की
काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के
लिए मजदूर की २१ बोझों पर एक बोझ
मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (शाहा०, गया,
मुं०, भाग०-१)। दे०—एकैसी। [एकैस +
इया < एकविंशतिक]

एकैसी—(सं०)—(१) बोझ से बड़ी फसल की
एक राशि, (२१ बोझ = एक एकैसी) (पट०,
गया, ब० मुं०)। (२) फसल की काटने, बाँधने
और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर की
२१ बोझों पर एक बोझ मजदूरी देने की प्रच-
लित प्रणाली (पट०, गया, ब० मुं०, भाग०-१)।
पर्या०—एकैसिया (शाहा०)। [एकैस + ई <
एक विंशतिक]

एखरा जात—(सं०) जमींदारी के विषय में होने-
वाला गाँव का खर्च (पट०)। दे०—गाई खरब।

एगदाई—(सं०) दोनी में घूमनेवाला सबसे तेज
बैल (ब० भाग०, पट०-४)। दे०—पाट।
[ए < युगदमिन् ए < एकदमिन्]

एघाँव—(सं०)—(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीब,
लाठा आदि से पानी उठाया जाता है। दे०—
बोवर। (२) जब करीब, लाठा आदि से
पानी चलाने में कई उठान (ऊँचाई) पड़ते
हों और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक
पानी पहुँचाया जाता हो तो उस दशा में
पहला उठान या जलाशय (गं० ब०)। दे०—
थेक्का। पर्या०—एघावा (पट०), एघाव (ब०

भाग०), एघाई (भाग०-१), दोघाँव = दूसरा
उठान; दोघावा (पट०), दोघाई (भाग०-१)।
तेघाव = तीसरा उठान; तेघावा (पट०)।
तेघाई (भाग०-१) चौघाँव = चौथा उठान;
चौघावा (पट०)। [ए + घाँव < एक +
स्थाम (?)]

एघाई—(सं०) (भाग०-१)। दे०—एघाँव।

एघाय—(सं०)—(ब० भाग०)। दे०—थेक्का।

[एक + स्थाम (?)]

एघावा—(सं०)—(पट०)। दे०—थेक्का।

[एक + स्थाम]

एड़ा—(सं०)—(१) गड़ासी की बेंट के अंत का
गठदार भाग (गं० उ०)।

पर्या०—हूर (उ०-पू० मं०,
चंपा०), ठेक्का (ब०-प०)



मं०, शाहा०), आदक एड़ा
(ब०-प० शाहा०), मूठ, मुठिया (ब०-पू०
बिहा०, भाग०-१)। (२) दे०—हूरा।

(३) गाड़ी की पीछे की ओर गिरने से बचाने के
लिए दी जानेवाली धूनी। पर्या०—उलरुआ,
सिधवाइ, लरुआ (पट०)। [< एदुक (?)]

एदली—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छोट कर
(बाबग) बोया जाता है (गया)। [(देशी),
मिला०—एतक, एतल = काखे वर्ण का हिरण,
संम०—एतक सदृश होने से नाम पड़ा हो।]

एमारत सेस—(सं०) किसान से मकान बनाने
के लिए लिया जाने वाला एक प्रकार का कर
(सा०-१)। [इमारत + सेस]

ऐ

ऐजा—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०-१)।
[देशी]

ऐन—(सं०)—(१) रुपये के बदले अनादि के रूप
में चुकाया जानेवाला भूमि-कर। दे०—माल।
(२) कौल के मुताबिक जमीन की फसल का
हिस्सा (मुं०-१)। (३) भावली या ठीके की
जमीन का मालिकाना हिस्सा (मुं०-१,
भाग०-१)। [अन्न, अन्न]

ऐमास—(सं०) एक प्रकार की घास (बर०-१,
पूँजि०-१)। [मिला०—अमास]

ओ

ओटल—(सं०) दे०—ओटल। [$< *आवर्त्त$ (संस्क०), आवट्ट (ग्रा०)]

ओइलल—(क्रि०)—(१) किसी अन्न की ढेरी से उसके पत्ते आदि को अलग करना (चपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) किसी जोते-कोड़े खेत से घास-फूस निकालना (चपा०-१, भाग०-१)। [मिला०—अव+√लुल, अव+√लुल=उखाड़ना, अलग करना]।

ओखर—(सं०)—(१) (उ०-पू० मं०, पट०-४, भाग०)। दे०—ओखरी। (२)—(उ०-पू० मं०, उ०-पू०)। ओखरी। [उलुखल]

ओखरा—(सं०)—(ब०-प० शाहा०)। दे०—ओखरी। [ओखर+आ(प्र०)<*उलुखल]

ओखरी—(सं०)—(१) लकड़ी या पर्यर का बना गहरा बर्तन, जिसमें मूसल से घान, तंबाकू आदि कूटे जाते हैं। (भाग०-१)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मं०, शाहा०), ओखरा (ब०-प० शाहा०), ओखली (गया), कुरदन (पट०), धनकुटी (सा०)। [ओखर+ई (प्र०)<*उलुखल] (२) लकड़ी का वह गहरा बर्तन, जिसमें मूसल या ढँकी से घान कूटते हैं (गं० उ०)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मं०, उ०-पू०), ओखरी, भुंदा (ब० भाग०, भाग०-१), उखरी (ब० मं०), काँड़ी (ब०-प० शाहा०), भुड़िया (शाहा०), भुई ओखरी (गया), भुड़की (पट०), घुंड़ी (पट०-१)। [उलुखल]

ओखी कानी—(सं०) छह दाँतोंवाला बेल (सं०-१, भाग०-१)। [ओखी+कानी<*तुल्ल+स्कन्ध (?)]

ओखी-कान्ही—(सं०) वह बेल, जिसके दूध के छह दाँत टूट गये हों और बाठवाँ अभी तक जन्मा न हो (सा०-१)। दे०—ओखी कानी। [ओखी+कान्ही<*तुल्ल+स्कन्ध (?)]

ओट—(सं०)—(१) किसी चीज के नीचे किसी वस्तु को लगा देना ताकि वह गिरे या लड़के नहीं (चपा०-१, भाग०-१, पट०-४, भाग०)। (२) किसी वस्तु की आड़। [ओटल+उट

(संस्क०, = तुण (हि० श० सा०), मिला०—अवट=गर्त)]

ओट करल—(मुहा०) आड़ करना, छिपाना, किसी वस्तु से घेरना।

ओटनी—(सं०) वह वस्तु, जिससे चीज रुई से अलग किया जाता है। पर्या०—ओटाई (सा०), औटाई (ब० भाग०, चपा०-१)। [$< *आवर्त्तनी$]।

ओटल—(क्रि०)—(१) कपास को चरखी में दबाकर रुई और बिनोले को अलग करना (चपा०-१)। (२) अपनी ही बात कहते जाना (चपा०-१)। [$< *आवर्त्त$]

ओटाई—(सं०)—(सा०)। दे०—ओटनी। [$< *आवर्त्त$, *आवृत्ति]

ओइहुल (सं०) लाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल, जो देवी देवता पर चढ़ाया जाता है (शाहा०, चपा०)। [ओइ+हुल<ओइ+फुल, मिला०—ओइ-पुष्प]

ओड़ा—(सं०) बाँस की कमची या करची का बना बड़ा खुला टोकड़ा। इसमें विशेषतः ताल का पत्ता देकर बना जाता है (पट०-४, अन्यत्र)। [ओड़ा<कुंड(?) (संस्क०)—हि० श० सा०), मिला०—ओत=बुना हुआ<आ+उत्, अवट] ओड़िया—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊँस के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (ब० भाग०, पट०-४)। दे०—छेंटी। (२) बाँस आदि का बना दौरा। डलिया (सं०-१, भाग०-१)। [मिला०—ओतल+आ+उत्=बुना हुआ, अवट=गर्त]

ओड़ी—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊँस के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (शाहा०, पू० मं०)। दे०—छेंटी। (२) हल से जोतने पर खींची गई गहरी रेखा, जिसमें रोपने के समय ऊँस का बीज डाला जाता है (भाग०-१)। (३) ऊँस का उबाला रस (मुड़) रखने का बर्तन। दे०—मटुकी। [$< *ओतल+आ+उत्$] (४) एक घान-विशेष, जो फलाहार में गिना जाता है (पट०-१)। [मिला०—ओड़्य=ओड़ (उड़ीसा) संबंधी]

ओड़ैसा—(सं०)—(१) बाँस की कमची या करची की काफी बारीक बुनी हुई टोकरी, जिसमें

पानी आ सके। (२) चारा खिलाने के लिए प्रयुक्त टोकरी (कहीं-कहीं)। दे०—पयिया। [मिला०—ओतेषीकल+आ+उत्+इषीक]

ओद—(बि०)—(१) गीला (चपा०-१)। (सं०)—(२) एकसाथ पड़लाकर उगनेवाले बाँस के पौधों का समूह (चपा०-१)। [आद्र, ओदम, आवन्ध]

ओदरल—(क्रि०)—(१) किसी सटी हुई चीज का फटकर अलग हो जाना (चपा०-१, भाग०-१)। (२) खेत की गपड़ी का फटना। [$< *अवदार<अव+√दृ=फटना$]

ओदार—(सं०) किसी फसल का बोझा बाँचने के लिए पट्टी की एंठी हुई रस्ती (पू० मं०)। दे०—कचरा। [देशी]

ओदारल—(क्रि०) ओदरल क्रि० का प्रे०। किसी सटी हुई ऊपरी चीज को फाड़ना या अलग करना (चपा०-१, भाग०-१, पट०-४)। [$*अवदार<अव+√दृ=फाड़ना$]

ओदौखी—(सं०) गीले खेत को जोतकर उसमें बीज बोने पर फसल में लगनेवाला एक रोग-विशेष (शाहा०-१)। [ओद+ओँखी<ओदा<आद्र, उद+ओँखी, ओँखी<उच्छ(?)]

ओध—(सं०) बाँस के पौधों का समूह (चपा०-१), दे०—बाँस के कोठी। [आवन्ध]

ओरहा—(सं०)—(१) पकने के पहले ही काटी हुई गेहूँ की फसल (ब०-पू० मं०, भाग०-१)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज (ब०-पू० मं०, चपा०, भाग०-१)। दे०—होरहा। [अव+√उल=जलाना, भूनना]

ओरीटीनी—(सं०) एक पशु-साध घास (पट०, गया)। [देशी]

ओल—(सं०) जमीन में पँदा होनेवाला एक प्रकार का कंद। इससे भरता, तरकारी आदि बनाये जाते हैं। पर्या०—मूरन (बर०-१, पट०-४, भाग०-१, पट०-१)। [ओल (संस्क०), ओल (हि०), ओल् (मं०), ओल् (बं०), ओल (घो०), सूरण (गू०)]

ओलल—(क्रि०)—(१) अन्न को चलाकर उसमें मिले विजातीय अन्न या दूसरी वस्तु को अलग

करना। (२) जोते हुए खेत या बारी की मिट्टी को घास-फूस निकाल देने के बाद बराबर करना। (बर०-१, चपा०, पूणि०-१, भाग०-१)। [अव+√लल=चलाना]

ओल्हनी—(सं०) रोपनी के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत, जो अपराह्न के पराई में गाया जाता है और जिसका स्वर धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकता है। इसका प्रतिकूलार्थक शब्द 'चढ़ती' है (चपा०-१)। [उल्हा (प्रा०)=वुफना, अव+हरण=<*अवहलन<अव+√हल् (=नीचे जाना, गिरना, झुकना)]

ओल्हल—(क्रि०)—(१) किसी चीज का किसी एक तरफ झुक जाना (चपा०-१, पट०-४)। (२) हल या ट्रैक्टर द्वारा एक तरफ ज्यादा मिट्टी फेंकना (चपा०-१)। [$< *अवहल<अव+√हल्$ (=गिरना, चलना)—(संस्क०), उल्हा (प्रा०)=वुफना, अव+हरण=एक तरफ रखना, झुकाना]

ओल्हे आब—(सं०) हल, गाड़ी आदि में जते बलों को घुमाने के समय हाँकनेवाले का संकेत-शब्द। (सा०-१)। [ओल्हे+आव]

ओसर—(सं०) पूर्ण वयस्का बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो। पर्या०—कलोर (प०), गौर उ०-पू० मं०), फेटाइन (पट०), अँकरिया (ब० भाग०)। [उपसर्ग, <*उस्सा (गय)]

ओसाएल—(क्रि०) ओसाना, वायु के बहाव में अनाज को सूप आदि से ऊपर से नीचे तक पतली रेखा में गिराकर भूसा आदि से अलग करना। पर्या०—ओसावल (चपा०-१, पट०-४)। [$< *अव+√से$ (घो) 'अन्तर्कर्मणि'=समाप्त करना, पूर्ण करना; *अव+√शु=छितराना, फैलाना; *अव+√सु=प्रेरणा देना, नीचे फैलाना, अवसवन]

ओसारा—(सं०) घट के आगे का बरामदा।

ओसावनि—(सं०)। दे०—ओसोनी।

ओसावल—(क्रि०)—(चपा०-१, पट०-०-४) दे०—ओसाएल। (बि०) ओसाया हुआ [$< √अव+√सु$, *अव+√से]

ओसीनी (सं०)-(१) चीनी के रस को ठंडा करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी का कड़ाह। दे०-कठौत।
[< *अभिषवन = सोमरस रखने का पात्र] (२) धान आदि अन्न ओसाने की प्रक्रिया बिहा०, ब्राज०)।
पर्या० — ओसावनि (बर०-१, पूणि०-१)।
[अव + √सू० अवसवन]। ओसीनी



औ

औकर-(सं०)-एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम में आती है (शाहा०, गया)। [देशी-मिला०-अवकर (संस्कृ०) = कूड़ा-करकट]
औजली-(सं०) घनरोपनी के अंत में किया जाने वाला सहस्रोज (द० भाग०)। पर्या०-बन-उसरा या बनसार (गया), गावा-पखार (प० चंपा०), उछाड़ी या बनउखाव (पट०) [देशी]

औटाई-(सं०)-(१) वह वस्तु, जिससे रुई ओटी जाती है। दे०-ओटनी, (२) रुई ओटने की मजदूरी (द० भाग०)। [औटा + ई (प्र०) √ आवर्त्त (संस्कृ०), आवट्ट (प्र०)]
औगारल- (कि०) ज्यादा गड़ड़ा करके हल जोतना (चंपा०-१)। [< *अवगर्त, < *अवगाट (संस्कृ०), ओगाट (प्र०) = गंभीर, गहरा]
औझार-(सं०) वर्षा का एक सौंका (चंपा०-१)। पर्या०-अझार (पट०-४, भाग०-१)।
[< *अवशार < अव + √शू + घञ्]

औदार-(सं०)-(पट०, गया)। दे०-अदार।
[मिला०-उदार = धुरीण]

औरंग-(सं०) उबार, मकई और ऊल के पौधों का एक रोग, जो पत्तों पर श्वेत चिह्न-जैसा होता है और पौधे के ऊपर का भाग नष्ट कर देता है (चंपा०)। पर्या०-गपत् (पट०, उ०), बभनी (उ०-प० मं०, चंपा०), गभतू, ठोठियारी (शाहा०), गपसू (सा०)। [अवरंग]

औरा-(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल जो दवा, मुरब्बा, अचार आदि के काम में आता है। इसका फल कागजी नौबू की तरह या उससे छोटा और

कसला होता है। पेड़ सफेदी लिए तथा पत्तियाँ हमली के पत्तों की तरह, छोटी-छोटी होती हैं। यह फल भारत के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। पर्या०-अँवरा (शाहा०, चंपा०)।
[आमलक (संस्कृ०), आमला, आँवला, औरा, आमरा (हि०), आमला, आमरो, आमलकी (बं०), आँवले, आँवली, आँवलीकाटी (भरा०), आमला, अंनुल, अंनुली (चं०), आँवला (मार०), आँवला, आमला, आमली (गु०), नेल्लि, नेल्लिकायि (क०), नेलि, नेलिकर (सा०), उसरिकाय, उसकाय (ते०), अंडा (ओ०), आमलज, आमलजु, आमलज्य, आमलह, आमलाह (का०), अमलज (अ०), अमला, आमलकी (अस०)]

औल्हा-(सं०) मूठ या पूले से बड़ी फसल की राशि (उ०-मं०, भाग०-१)। दे०-अँवाँसा। [देशी]

क

कँइत-(सं०) कपित्थ फल। इसका फल गोल-गोल बेल-सा होता है। पर्या०-कँइती (शा०-१)। [कपित्थ (संस्कृ०); कइत्थ (प्र०), कैथ, कैत, कइत (हि०), कथेथ, कवेल (बं०), कवँड, कवट, कवट, कविठ (भरा०), कोठ, काठ, कोठु (गु०), बेलालु, बेलडा, क्लुवट, व्यालदमर (क०), एलांगकाया बेलग चेट्टु, एकांगा काया (ते०), कैथ (मार०)]

कँइती-(सं०) एक फल-विशेष। यह श्रीफल की तरह होता है तथा इसके भीतर का भाग लट्टा होता है (शाहा०-१)। दे०-कँइत। [कपित्थ]

कंकड़-(सं०)-(१) चूना मिला हुआ गाँठदार पत्थर का छोटा, गोल और मटमला टुकड़ा, जिसे पकाकर चूना बनाया जाता है। (२) पत्थर का टुकड़ा, जो सड़क बनाने के काम में आता है। (३) बनाव में मिलनेवाला जोड़। (मं०-२)। दे०-अँकड़ा।
पर्या०-आँकड़, इकड़ी, ईकड़ी (द०-पु० मं०, प०), गंगट-(पट०, गया), गींगट (द०-पु०)।
(४) विशेष प्रकार से बनाया हुआ एक तम्बाकू, जो भुर-भुरा होता है और गाँजे की बिलम पर रखकर पीया जाता है। [कर्कर = कठिन,

टुकड़ा, सूता का पत्थर (मं० बि० बि०); 'कर्करी मुखरे टुटे'-(अने०); 'कर्करी भाण्डभेदना-दपणे कठिने त्रिषु' (मेवि०)]

कंकड़ी-(सं०)-(१) ईंट-पत्थर का छोटा टुकड़ा (गया, पट०, ब्राज०)। दे०-अँकड़ी।
पर्या०-अंकरी। [कर्कर]

कंकड़ी-(सं०) दे०-कंकड़ी।

कंकरीही-(सं०) कंकरीली मिट्टी (सा०, पट०, मं०-२)। पर्या०-अँकड़ैल (सा०, शाहा०) अंकड़ीर (प०)। [कंकर + आही < अस्थि (?)]

कँकरोटिया-(सं०) एक प्रकार की कड़ी मिट्टी, जो जमीन खोदने पर जमीन की ऊपरी सतह के नीचे मिलती है (द० भाग०, पट०-४)। दे०-गेंगटियाहा। पर्या०-गँगारट (पट०-४), कँकरोटी [कंकर + ओटिया < *ओष्ठी, अस्थि (?)]

कंकरी-(सं०)-(शाहा०, सा०, चंपा०)। दे०-कंकड़ी।
कँकरोटी-(सं०) दे०-कँकरोटिया।

कँगनिया-(सं०) नदी का खड़ा ऊँचा किनारा (उ०-पु० मं०)। दे०-करारा। [कंकट = सीमा, अवधि; कच्छ = किनारा]

कंचनचूर-(सं०)-(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० मं०, चंपा०)। (२) वासमती चावल का एक भेद (पट०-४)। [कञ्चनचूर्ण]

कंचा-(वि०) दे०-कच्चा।

कंजु-(सं०) एक प्रकार का साग, जिसकी पत्ती बरुई की तरह चौड़ी होती है (बर०-१, मं०-२)। [मिला०-अंज]

कँचोरस-(सं०) ऊँस को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (द० भाग०)। दे०-रस। पर्या०-कचरस (पट०-४, चंपा०)। [कँचो + रस]

कंजर-(सं०)-(१) रस्सी बाँटनेवाली एक विशेष जाति (उ०-प० बिहा०, गया)। पर्या०-कंजड़ा, कंजड़ (चंपा०), चाँई (प० मं०), रसबंटा (शाहा०, गया)। (२) एक प्रकार का हरा पक्षी (मं०-२)। [कंजर (बेनी), कालंजर = बुंदेलखंड का एक भाग, उस प्रदेश के रहनेवाले लोग। इनका पेशा रस्सी बाँटना और भीख माँगना है]

कँटहवा तार-(सं०) दो-तीन पतले तारों को मिलाकर बनाया गया लोहे का तार, जिसमें दो-एक इंच की दूरी पर लोहे के ही कटि बने होते हैं। यह फसल की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर घेरने के काम आता है (बिह०), [कँटहवा + तार (बेनी), कँटहवा < कौटा < कंटका]
कंटा-(सं०)-(१) वर्षा या सिंचाई के बाद तेज धूप के कारण कड़ी हो गई खेत की मिट्टी को मुलायम करने के लिए व्यवहृत कुछ काँटों-जैसी लोहे की कीलों से बना एक तरह का हल (मं०)। पर्या०-खसोरनी (मं०) [< *कण्ट, कण्टक < कण्ट > कण्टति = चलाता है, घूमता है। (२) काँटा। (३) सरकंडा, (चंपा०-१)। पर्या०-कौड़ा (चंपा०, पट०-४, शाहा०)। [काण्ड]

कंटिया-(सं०)-(१) गाय-भेंस के दूहने या भी-तेल आदि रखने के काम में प्रयुक्त लंबी गर्दन वाला मिट्टी का छोटा बर्तन। पर्या०-कटिया (चंपा०), धूँचा (चंपा०), टेहरी (पट०-४), मेटिया (चंपा०, द० भाग०), मवही (चंपा०, मं०-२)। [मिला०-कठिन, लंबी गर्दनवाला। कंठाल = पात्र, कटक = कर्मंडलु = 'कर्मंडलुश्च कटक' (शाब्द०)] (२)-(उ० पु०, द० प० मं०) दे०-कोहा। [मिला०-कंठाल = पात्र]

कंठ-(सं०) दे०-कंठी। [< *कण्ट]
कंठफोड़-(सं०) वह सुगंध, जिसके गले में इन्द्र-धनुष-सा रंग निकल आया हो (शाहा०-१)।

[कंठ + फोड़ < कंठ + फोड़ < स्फुट]
कंठा-(सं०)-(१) मवेशियों के गले में पहनाई जानेवाली घुंडीदार मोटी रस्सी (बिहा०, ब्राज०)। (२) क्त्रियों के गले का एक आभूषण। [< *कंठका]

कंठी-(सं०) कुदाल की धार और पासे की जोड़ (पट०, गया)। पर्या०-नट्टी (शाहा०), सन, कंठ (द० भाग०), सुन (द० मं०)। (२) दे०-कंठा। (३) तुलसी या बेल की टहनी की बनी पतली-सी माला। [< *कण्ट]

कंडड़ा-(सं०) जंगल या चरागाह में सूखा हुआ गोबर, जो खाद बचवा जलाने के काम में आता है (गं० उ०, मं०-२)। पर्या०-कड़ड़ा (गं० उ०), डसारा (पट०-४, मग०-५), कंडा

(गं० ब०), डमार (पू० मं०), विनुआ गोइठा (प०), बनगोइठा (सामा०; मं०-२)। [मिला०—करण्ड = मधु का छत्ता, 'करण्डं मधुकोशासि कारण्डेषु दलादके' (मे० वि०), 'करण्डं मधुकोशेऽसौ' (अने०)]

कड़वा—(सं०)—(१) सूखा हुआ गोबर (प०, सामा०)। दे०—डमारा। (२) गोइठे की ऐसी राख, जो बिलरी नहीं रहे, बल्कि बंधी और कड़ी रहे। (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [करण्ड]

कड़वानी—(सं०) मूँज पंदा होने का स्थान (उ०-प०, चंपा०-१)। दे०—पूजवानी। पर्या०—करवानी (शाहा०)। [कड़ + वानी < *काण्ड + वन]

कंडा—(सं०)—(ब० भाग०)। दे०—कंदा, अरई। [< *काण्ड, < *कन्द]

कड़ा—(सं०)—(१) (गं० ब०)। दे०—कड़ड़ा। (२) सूखा हुआ गोबर (शाहा०, पट०)। दे०—डमारा। पर्या०—कररा (मं०-२)। [< *कांड, < *करंड]। (३) मूँज या सरपत नामक घास (शाहा०-१, भाग०-१)। पर्या०—काँड़ा (चंपा०-१, पट०-४, मं०-२)। [कंड < *कांड]

कंता-कनेल—(सं०) एक प्रकार का फूल। (बर०-१, पूणि०-१)। [कंता + कनेल < कान्त + कणिकार]

कंदरी—(सं०)—नदी के किनारे खोदा हुआ कुआँ, जिसमें नदी का पानी छनकर जाने से शुद्ध रहता है (पट०, गया)। पर्या०—कानर (मग०-५)। [मिला०—कन्दर, कन्दल]

कंदा—(सं०) अरई की जाति का जमीन में बैठने वाला एक कंद, जिसकी तरकारी होती है (पट०-१, मिला०—अरई, कंडा)। टि०—कंदा दो प्रकार का होता है। एक लंबा और गोल, जिसे मगही कंदा कहते हैं; दूसरा अपेक्षाकृत छोटा और गोल होता है (पट०-४, मं०-२)। [< *कंदक]

कंदौला—(सं०) एक झाड़ीदार पौधा। इसका फल लड़ा और आकार कसली की तरह होता है (पट०-१)।

कंधा—(सं०)—(१) कोल्हू के जाठ (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कंध। (२) ऊँख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले जाठ

(मोहन) के मूँडे के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कान्ह। [स्क्न्ध, कन्ध]

कँवरी—(सं०) गाय-बैल आदि के द्वारा निगले हुए चारे का थोड़ा-थोड़ा अंश फिर मूँह में लाकर चबाने का व्यापार (सा०-१)। पर्या०—कउरी (शाहा०), कबुरी (ब०-प० चंपा०), पाग (मं०-२) पागुर (मग०-५, चंपा०)। [< *कवल]

कंसासुरी—(सं०) वह बैल, जिसका एक सींग नीचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है (ब०-प० शाहा०)। दे०—सरग-पताली। पर्या०—सुरंग-पताली (पट०-४, मग०-५), डेवा (पट०-४)। सरगपताली (मं०-२, चंपा०)। [कंसासुर (१)]

कँसिया—(सं०) वह बैल, जिसका रूप-रंग कंसे की तरह हो (पट०-१)। [कँस + इया (प्र०) < कौसा < *कांस्य]



कंसासुरी

कइन—(सं०) बाँस की गिरह पर का धूलि-जंसा रोएँदार छिलका (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, आज०)। (२) बाँस का पतला छिलका या टहनी (शाहा०, मं०-२)। [कणी, कणिका, कञ्जिका]

कइल—(वि०)—(१) सफेद रंग का मवेशी (चंपा०-१, शाहा०)। पर्या०—कयर। (२) कपिल वर्ण का पशु (पट०-४, मग०-५)। [< *कपिल]

कइलाएल—(वि०)—(१) फसल की बाल का दूढ़ और पोस्ता होना (पट०-४, मग०-५)। दे०—कलाएल, हबसाएल। (२) किसी अन्न के दाने का कुछ-कुछ पकने लगना (चंपा०-१ शाहा०, पट०-४, मग०-५)। [कइल + आएल (वि० प्र०) < *कपिल]

कईत—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कईता।

कईता—(सं०) ककड़ी-जैसी एक प्रकार की तरकारी। यह एक हाथ से लेकर तीन हाथ तक लंबी होती है। इसका आकार सपांकार होता है (पट०-१, मं०-२)। पर्या०—कईत, चिचड़ा (चंपा०)। जैता, किगा (संता०)। श्वेतसजि (संस्कृ०)।

कउनी—(सं०) दे०—कोनी।

कउर—(सं०) वह स्थान जहाँ गड्ढा खोदकर गोइठो लकड़ी, पुआल आदि डालकर और उसमें आग लगाकर गाँव के लोग जाड़े में आग तापते हैं और शीत-निवारण किया करते हैं (शाहा०)। दे०—घूर।

कउरल—(वि०) कटे हुए अनाज के पीधों को दौनी के समय उलट-पुलट करना (चंपा०-१, शाहा०)। पर्या०—उकटल (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [कउर + ल (प्र०) < *कवर = संयुक्त, सम्मिलित (मो० वि० वि०), < *कणाव-किरण < कण + अवकिरण < अव + √कृ (विशेष = कंकना)]

कउरी—(सं०) दे०—कँवरी।

कउली बूँट—(सं०) उजले और बड़े दानोंवाला एक प्रकार का चना (पट०-१)। पर्या०—कवली बूँट (मग०-५, मं०-२); कबुली बूँट (चंपा०)। [कउल + ई + बूँट < कानुली + बूँट]

ककड़िया—(सं०) आम का एक भेद, जो ककड़ी के समान होता है (बर०-१, मं०-२)। [मिला०—ककोट, ककटी]

ककड़ी—(सं०)—(१) खीरे की जाति का एक लंबा पतला फल, जो कच्चा खाया जाता है। पर्या०—कँकरी, (शाहा०, सा०, पट०-४, मग०-५ ग्रन्थत्र भी), काँकरि (= बड़े आकार की ककड़ी)।

ककड़ी

(शाहा०), कँकड़ी (पट०-१, शाहा०)। यह फल बहुत जनप्रिय है। इसके विषय में कहा-वत है—“निकीरिया गेलाह हाट, काँकरि देखि हिया फाट” (कोई मनुष्य बिना पैसे के बाजार गया, वहाँ ककड़ी देखकर उसका हृदय फटने लगा)। ‘एक हाथक काँकरि, नौ हाथक बीया’ (एक हाथ की ककड़ी और उसमें नौ हाथ का बीज)। (२) खरबूजे की तरह का एक फल जो पकने पर फूट जाता है और फूटने पर फूट या फूट कहा जाता है। [ककटी (संस्कृ०), ककडी (शा०), ककड़ी (हि०), कौकड़, वड़ कौकड़ (बं०), कौकड़ी (ओ०), ककड़ी (पं०), कौकड़ी (मरा०)]



काकड़ी (गु०), काकिरा (सिंह०), ख्यारजाव (फा०), किस्सा कदस (अ०), ककंवर (अं०)]

ककना—(सं०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (पट०-४, गया, ब०-पु०)। पर्या०—बनसारी (शाहा०, पू० मं०)। [मिला०—कङ्कण (?) (संस्कृ०), कंगुनी। मिला०—काँको (ने०)]

ककीर—(सं०) प्रचलित श्रेणी का एक अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (उ०-पु० मं०)। दे०—कनवा। पर्या०—ककेर (ब० पू० मं०)। [मिला०—ककोटी = ककड़ी की तरह लम्बा होने के कारण संभावित नाम]

ककुड़ी—(सं०) तम्बाक के पत्त का एक रोग, जिसमें हरा पत्ता सिकुड़ जाया करता है (बर०-१, चंपा०, मग०-५)। टि०—कद्दू और मिरचे के पत्तों में भी यह रोग कभी-कभी हो जाता है। [< *ककट = एक प्रकार का रोग। ककड़ (हि०), ककरी (संस्कृ०) = सूखी या सेंकी हुई सुरती का मुरमुरा चू, जिसमें पीनेवाला तम्बाकू मिला रहता है (हि० श० सा०)]

ककेर (सं०)—एक प्रकार का अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (ब०-पु० मं०, मं०-२)। दे०—ककीर।

कगिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग काग की तरह काला हो (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—करिया (मं०-२)। [कग + इया (प्र०) < काग < *काक]

कचकुटा—(सं०) ईल का अधपका रस (मं०-१, चंपा०)। दे०—कचरस।

कचटाही—(सं०) वह मिट्टी, जो कुछ मूलायम तथा कुछ कड़ी हो (शाहा०-१)। [कचट + आही (देशी)]

कचनार—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष, जो मसोले आकार का होता है, कहीं-कहीं लता के जैसा भी होता है। इसकी पत्तियाँ गोल और सिर पर कटी होती हैं। छाल भूरा और फूल लाल, पीले और सफेद होते हैं। फूलों और कलियों की तरकारी बनती है। फली चिपटी होती है (बर०-१, पट०-१-४, मग०-५, चंपा०, शाहा०)। [काञ्चनार (संस्कृ०), कांचणार (प्र०) कचनार (हि०), कांचन, कांचनार (बं०), कोरल,

कौंकी (मरा०), जिय (संता०), कोक्ली, चम्पाकाटी (गु०), टक्ती (ने०), कोचल, कंच-नाल (क०), देवकाचन, देवकाचनमु (ते०), सेंगमुंथरी (तो०)]

कचमहुआ—(सं०) एक बीजू आम, जो कच्चा खाने में भी मीठा लगता है। [कच+महुआ<कच्छ+मधु वा कच्चा+मधु (=मीठा)]

कचरस—(सं०)-(१) ऊल को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (शाहा०, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। दे०—रस। [कच+रस+कच्चा रस]। (२) पानी मिला हुआ ऊल का रस (उ० ५०)। पर्या०—पनुआँ (३०-५० शाहा०)। (३) ईल का अवपका रस (मु०-१, चंपा०)। पर्या०—कचकुट्टा। [कच+रस<कच्छ+रस (?)]

कचरा—(सं०)-(१) बूट की अवपकी छीमी। पर्या०—ढसराइल कचरी (शाहा०); कचरी (अन्यथ)। (२) फसल के बोझों को बाँधने के लिए पट्टे की ऐंठी हुई रस्सी (गं० उ०, पू०)। [कच+रा (प्र०) <कच<कच्चा]

कचरी—(सं०)-(१) कच्चे-हरे चने के पीछे (शाहा०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) कच्चे-हरे चने के छड़ाये हुए दाने (शाहा०, चंपा०-१)। (३) आल नामक रंग के पीछे की मोटी जड़ (शाहा०, ३० मु०)। दे०—आल। (४) दे०—कचरा। [कच+री (प्र०) <कच, <कच्चा]। (५) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (सामा० पू०)। (६) एक प्रकार का गुरमही नामक फल, जो बरसात में मकई के खेत में होता है और जिसके पीछे लत्तर की तरह फीले हुए होते हैं। (७) चने या खेसारी की बाल को पानी में फुलाकर, फिर सिल पर पीसकर और तेल या घी में तलकर बनाई हुई बड़ी। कभी-कभी यह केवल प्याज या अन्य चीजों को बेसन में मिलाकर तथा तल कर बनाई जाती है। (पट०-४, मग०-५, चंपा०, रांची)। [कच+री (प्र०) <कच, <कच्चा]

कचल—(फि०) कुदाली से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खेव देकर जमीन को कोड़ना (बर०-१)। [कच+ल (प्र०) <कच, <कचल <कृत्ती (छेबने)]

कचाठी—(सं०) धान का वह पीछा जिसकी बाल पुष्ट न हो पाती और जिसे हरा रहते ही काटकर पशुओं को खिला दिया जाता है (मु०-१)। पर्या०—मुआर (चंपा०, पट०-४), मरहीना (मग०)। [कच+आठी<अस्थि (?)]

कचिया—(सं०)—फसल काटने की दातदार हेंसिया (३०-पू० बिहा० मु०-१, बर०-१)। दे०—दंतुला। [मिला०—कच्छ, कच्छ] *कौक्षियक (संस्क०) >कच्छेअय (प्रा०) >कचिया, कर्त्तरी* (संस्क०) >कट्टारी, कचारी (प्रा०)]



कचिया

कचुआ—(सं०) पान की लता के ऊपर की घनी झाड़ी (३० मु०)। दे०—खरई। [कचुकु = झाड़ी, आवरण, वृक्ष-विशेष (मो० वि० डि०)]

कचेलिया—(सं०) वह बँल, जिसकी पूँछ लंबी तथा लिंग के संविस्थल से गुदा-स्थान तक मांस लटका हो तथा वह नील वर्ण का हो (पट०-१)। [कचेल = इया (प्र०) - (संभवतः ' <कच]

कचोहा—(सं०) तम्बाकू का एक रोग (३० भाग०)। [मिला०—कच्छू]

कचा—(सं०)-(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (गं० उ०)। दे०—गदरा। (२) ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया हुआ कुआँ। पर्या०—कूआँ, कुहयों। (वि०)—कोई वस्तु, जो पकी नहीं हो। [<*कृत्य (संस्क०) कित्त्वा (प्रा०) - (= जिसके निर्माण का कार्य शेष हो), कुत्सित (<कुत्सा)] डि० - कच्चा शब्द की व्युत्पत्ति अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी है, संस्कृत-वाङ्मय में इसके लिए 'आम', 'अपच्यमान', 'अपक्व' आदि शब्द व्यवहृत हैं। हि०श०सा० में 'कषण' (संस्क०) से 'कच्चा' की उत्पत्ति लिखी है और 'मराठी व्युत्पत्ति कोष' में 'कच' (ध्वनि-शब्द) से। कुछ शब्द नीचे लिखे जाते हैं, जिनसे व्युत्पत्ति की संभावना हो सकती है। [कुत्सा, कत्, (>कवन्न), कुपच, क्रापच, कुत्ता (अकृताश्च), कच्छ, (= जलप्राय प्रदेश की वस्तु), कृत्य (संस्क०), कित्त्वा (प्रा०), कुत्त

(=कटा हुआ), कच्य (विकसित होनेवाला) <*कच् (विकसने)]

कच्चाबिगहा—(सं०) जमीन की एक नाप, जो किसी स्थान-विशेष में तो प्रचलित हो, पर दूसरे स्थानों में उससे भिन्न हो। भिन्न-भिन्न स्थानों में 'बिगहे' की नाप में अन्तर पाया जाता है। 'बिगहा' की असंतुलित माप। पक्का बिगहा ३०३५ वर्गगज या २० कट्ठे का होता है। [कच्चा+बिगहा<*विग्रह (?)]

कच्चाबीचा—(सं०) दे०—कच्चा बिगहा।

कचचू—(सं०) अरई की जाति का लंबा-मोटा कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (मग०-५, पट०-४)।

दे०—अरई। पर्या०—अरुआ (चंपा०), कनचू (बर०-१)। [मिला०—कचु, कचची = एक प्रकार का खाद्य कन्द (मो० वि० डि०)]

कच्छड़—(सं०)-(चंपा०)—दे०—कछाड़-२।

कछाड़—(सं०)-(१) नदी या पोखर का किनारा, कछार। दे०—करारा। (२) इस प्रकार पहनी हुई धोती या लुंगी, जिसके नीचे लटके हुए छोर को ऊपर खोंसकर कमर में कसकर बाँध लिया गया हो। (चंपा०, मग०-५, पट०-४)। पर्या०—कच्छड़ (चंपा०)। [कच्छ>कछा+ड़, काछ]

कछाड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—करारा। [कच्छ>कछा+ड़ा]

कछार—(सं०) दे०—कछाड़।

कछुआ-डावर—(सं०) वह अत्यंत उपजाऊ खेत, जो कछुए की उलटी हुई खोपड़ी की तरह गहरी होता है और जिसमें आसपास के चारों ओर से पानी और सड़ी-गली खाद आदि आकर गिरती है। (बर०, मृज०) [कछुआ+डावर]

कछुआ ढाव—(सं०) नदी का वह बहाव, जिसमें जल-प्रवाह के कारण रेतीली जमीन की ऊँचाई और नीचाई में फेर-बदल होते रहने से कहीं थोड़ा और कहीं अधिक जल रहा करता है (मग०-५, मु०-१, पट०-४)। [कछुआ+ढाव, कछुआ<कच्छपक, ढाव<√ध्वल (गतौ), (म० व्य०), अवधार]

कछुआ-सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जो तरकारी के काम में आती है (बर०-१)।

पर्या०—कचछुआ सेम (चंपा०), गैचिया सेम (पट०-४)। [कच्छु+शिमि (?)]

कछुइया—(सं०) कुआँ खोदने में मिलनेवाली डीली मिट्टी (पट०, पट०-४, गया)। [*कच्छ]

कजई—(सं०) खाने से रोकने के लिए बँल के मुँह पर बाँधी जानेवाली रस्सी को बनी हुई जाली। (३०-पू० मं०)। पर्या०—कजुई, मुँहबन्द (मग०-५), जाबा (पट०-४), जाब (चंपा०)। [देशी]

कजरगोट—(सं०) एक प्रकार का काला धान (बर०-१)। पर्या०—कजरगौट, कजरवौर, कजरघौद (३० भाग०)। [कजरी (हि०), <*कजलगुत्स (?)]

कजरगौट—(सं०)-(बर०-१)। दे०—कजरगोट। कजरघरो—(सं०) छोटकर (बावग करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसकी बाल काले रंग की होती है। (३० भाग०)। [कजलगुत्स (?)]

कजरघौर—(सं०) महीन तथा सुगंधित धान का एक भेद, जिसकी बाल काले रंग की होती है (मु०-१)। पर्या०—कारीबाँक (पट०-४)। [कजरी (हि०), कजल गुत्स (?)]

कजरा—(सं०)-(१) बड़ा और बलिष्ठ वह बँल, जिसकी आँखों के चारों ओर का स्थान नीला हो। (पट०-१, पट०-४)। कहा—'बँल लीजें कजरा, दाम दीजें अगरा।'—(घाघ) = कजरा बँल लेने के लिए अग्रिम मूल्य देना चाहिए। [कजर+आ (प्र०) <काजर <काजल<कजल] (२) धान, गेहूँ और जौ के बीजों में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर चाट जाता है (गं० मं०, पट०, गया)। दे०—कजरी। [कजल, मिला०—कजल = एक प्रकार का पच्ची, कज्जल = मयूर (मो० वि० डि०)]

कजरी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (३० मु०, बर०-१)। [कजल] (२) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)। दे०—कजला। [कजल, मिला०—कचक = एक प्रकार की छत्राक (कुरमुत्ता)-जाति की घास (मो० वि० डि०)] (३) धान, गेहूँ और जौ के पौधों में

लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर चाट जाता है। पर्या०—कजरा (५० पै०, पट०, गया, पट०-४), कजला (उ०-पू०-सं०), मजरी (पू०-सं०) [कजल, मिला०—कजल = एक प्रकार का पत्ती, कज्जर = मयूर (मो० वि० डि०)] (४) छींट कर (बाग करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (इ०-सू०)। [कजल] (५) बरसात में गाया जानेवाला एक प्रकार का मौसमी गीत, कजली। कजला—(सं०)—(१) (उ०-पू०-सं०)। दे०—कजरी। (२) एक पशु-खाद्य घास (चंपा०, उ०-पू०-सं०)। पर्या०—कजरी (शाहा०)। [\angle *कजल]

कटुई आलू—(सं०) वह आलू, जो काटकर रोपा जाता है (पट०-१, पट०-४)। [कटुई + आलू, < काटल = (काटना)]

कटइला—(सं०) एक काटदार पोषा, जिसके बीज से तेल निकलता है (पट०-१, पट०-४)। [कटल < *कटकि < कटक]

कटकसार—(सं०) मोटे धान का एक किस्म (सु०-१)। [कटकरालि]

कटनियाँ—(सं०)—(प०)। दे०—कटनिहार।

कटनिया—(सं०) ऊँख की खड़ी फसल को काटनेवाला मजदूर (इ० भाग०, मग०-५)। दे०—अंगेड़ीहा। [कटन + इया (वि०-प्र०) < कटन < कर्तन < कृत्ती (छेबने)]

कटनिहार—(सं०) फसल काटनेवाला (गं० उ०, पट०, गया तथा अन्यत्र भी)। पर्या०—दिनिहार (पट०, गया, इ०-सू०), लेवनिहार, कटनियाँ (प०), जन, बनिहार (सामा०)। [कटनि + हार (वि०-प्र०), < कर्तन < कृत्ती (छेबने)]

कटनी—(सं०)—(१) धान आदि फसल की कटाई (पट०-४, चंपा-१, सु०-१)। (२) फसल की कटाई का समय। पर्या०—कटिया (उ०-प०), लौनी (इ०-प० शाहा०)। [कटनी < कर्तन < कृत्ती (छेबने)]

कटनीकरल (मुहा०)—(१) धान आदि की कटनी करना। (२) तम्बाकू का पत्ता काटना।

दे०—ऊपर पत्ता तूरल। [कटनी + करल < कर्तन < कृत्ती (छेबने)]

कटहर—(सं०)—(१) एक प्रसिद्ध फल, कटहल। (२) कटहल का पेड़। पर्या०—कटहल। टि०—कटहल का पेड़ घना होता है। यह बिहार में सर्वत्र पाया जाता है तथा भारतवर्ष के दूसरे भागों में भी मिलता है। इसकी पत्तियाँ तीन-चार अंगुल लंबी, कड़ी, मोटी और श्यामलता लिये हुए हरे रंग की, अंडाकार होती हैं। इसका फल एक-डेढ़ हाथ लंबा और प्रायः इतना ही मोटा होता है। ऊपर का छिलका काफी मोटा होता है कटहर तथा ऊपर बहुत-से नुकीले कंगूरे होते हैं। फल के भीतर मोटे-मोटे रेखों की कपरियों के बीच में गुदेदार कोए होते हैं। कोए पकने पर भीठे होते हैं। कोओं के भीतर पतली झिल्लियों से लिपटे हुए बीज होते हैं। इसका फल माघ-फागुन में लगता है तथा जेठ-भाषाड़ में पकता है। कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं। कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है। जड़ और तने में भी फल लगते हैं। इसकी छाल से लसीला दूध निकलता है। पेड़ की लकड़ी नाव तथा चौखट बनाने के काम में आती है। इसकी छाल के उबालने से पीला रंग निकलता है, जिससे बरमा के साधु अपना वस्त्र रंगते हैं। [< *कटकि फल, पनस (संस्कृ०) फणस (प्रा०), कटहर, कटहल, (हि०, पं०), कटहर (ने०), कौठल, कौठल, (सं०), फणस (मरा०), फनस (गु०)]

कटहरी—(सं०)—(१) एक प्रकार का केला (इ०-१)। (२) छोटा कटहल (शाहा०-१, पट०-४)। [कटहर + ई (= कटहल के समान)]—[कटहर + ई (प्र०) < कट + हल < *कटकि + फल]

कटहल—(सं०) दे०—कटहर।

कटहवा—(सं०)—(मग०)। दे०—ऊँख तम्बर ४५३। [देशी]

कटही हर—(सं०)—(चंपा०)—दे०—कटही हल।



कटहीहल—(सं०) एक प्रकार का हल, जिसमें लंबी कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकोनी की जाती है (इ०-१)। पर्या०—कटही हर—(चंपा०), विदह (इ०-१)



[कटही + हल, कटही हल < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < कृत्ती (छेबने) वा कटही < कटक (= कील)]

कटारी—(सं०) एक धौला, जिसमें बेल पर अन्न होनेवाला व्यापारी अपना सामान रखता है (इ० भाग०)। पर्या०—ईँवाय (इ०-सू०), सास (सा०, चंपा०)। [संभ०—कर्तरी (?)]

कटिया—(सं०)—(१) (उ०-पू०)। दे०—काटल, कटनी। (२)—(चंपा०)। दे०—कटिया। [कृत्ति < कृत्ती (छेबने)]

कटुआ—(सं०)—(१) अनाज के ऊपर का छिलका (पट०, गया, मग०-५, पट०-४)। दे०—भूसा। (२) मंडूए के दावों को निकाल देने पर बची हुई ऊपर की भूसी (उ०-पू०-सं०)। दे०—डोटी। (३) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला घरहर या किसी अन्य दलहन का छिलका अथवा भूसा (पट०)। दे०—भूसा। [< *कटुक, कृट्ट (कूटना, छिलका-रहित करना), -छिलका-रहित किया हुआ कृट्टक, कंडकर, कंडंगर]

कटुई—(सं०)—(१) डंडल के बिना ही केवल बाल की कटाई (इ०-प० शाहा०)। दे०—वलकट। (२) गेहूँ के आटे में गुड़ मिलाकर तथा घी में तलकर बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान (मग०-५)। (३) एक प्रकार का आलू, जो काट कर खेतों में रोपा जाता है (मग०-५, अन्यत्र भी)। (४) वह दही, जिसके ऊपर का मलाईवाला अंश काट (निकाल) लिया गया हो (चंपा०)। [< *कृत्ति < कृत्ती (छेबने), कृत्ति: कृन्ततेर्यशो वाऽज्ज्वा, इयमपीता कृत्तिरेतस्मादेव, सूत्रमसी, उपमाथैवा—निरु०]

कटुई—(सं०)—(१) जल में रहनेवाला एक प्रकार का शींगुर, जो धान के पौधों को काटता है। (२) गेहूँ, जौ आदि के पौधों को काटनेवाला कीड़ा (शाहा०-१)। [कटु + ई < कटु < काटल

(बिहा०), काटना (हि०) < कृत्ति, कीट]

कटुआ—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला घरहर या किसी अन्य दलहन का भूसा (इ०-पू०)। दे०—भूसा। [मिला०—कटुक, कृट्ट, कृट्टक, कंडकर]

कटैया—(सं०)—(१) एक प्रकार का कीड़ा (कोष्ठा), जो धान में लगने पर उसकी बाल को पीला बनाकर नष्ट कर देता है (इ०-प० शाहा०)। पर्या०—कटोई, कटोइया (गं० इ०), हरदा (पट०-४)। [\angle *कण्टकिन्]

(२) एक प्रकार का कटोला पोषा (इ०-१)। [\angle *कण्टकारिन्]

कटोइया—(सं०)—(गं० इ०)। दे०—कटैया। [\angle *कीट, \angle *कंटकिन्]

कटोई—(सं०)—(गं० इ०)। दे०—कटैया। [\angle *कीट, \angle *कंटकिन्]

कटौनी—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (सु०-१, पट०-४)। [कटौन + ई, < कटावल (बिहा०) < कृत्ती ('छेबने'), कर्तन]।

कट्टा—(सं०) पशुओं के खाने के लिए गेंडासे या मचीन से काटे हुए घास, पुवाल, लत्तर आदि के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े (पट०)। पर्या०—कुटटी (इ०-भाग०), बिचाली (मग०-५, पट०) लेटी। (चंपा०)। दे०—कुट्टी। [< *कर्तित < कृत्ती ('छेबने'), (प्रे०) कटिअ (प्रा०), < *कृत्ति (संस्कृ०), कट्ट (प्रा०)]

कट्टा—(सं०) वीस घुर जमीन की एक नाप, बिस्वा (शाहा० पट०-४)। [\angle *काष्ठा]

कठजा—(सं०) कई तरह के मिले हुए अनाज। (२) कच्चा अन्न (सु०-१)। [अस्पष्ट, संभ० < कतिपयाज्जाति, मिला०—सतंजा (चंपा०, पट०-४) < सप्ताज्जात]।

कठकरंज—(सं०) एक काटदार शाड़ी, जिसके फल का गूदा दवा के काम में आता है (सु०-१)। पर्या०—कठकरेजी (मग०-५, पट०-४)। [< *कटकरंज, < *कटकरंज]

कठकरेजा—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकरेजी—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकूआ—(सं०) लकड़ी के बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित हुआ। [कठ + कूआ < काटकूप]

कठलुरपी—(सं०)—(१) काठ की बनी हुई चम्मच-जैसी चीज जिससे कड़ाह से रस निकाला जाता है। (२) दे०—कठही। (३) कड़ाह की पंदी में चीनी बँठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार (उ०-पू० सं०)। दे०—लुरपी। [कठ+लुरपी<काष्ठ लुरप्र (?)]

कठजामुन—(सं०) एक प्रकार का जामुन। यह छोटा होता है तथा इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (शाहा०-१, चंपा०, पट०-५)। [कठ+जामुन<काष्ठ+जम्बू (?)]

कठडुमर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसके फल की तरकारी होती है (पट०-१)। [कठ+डुमर<काष्ठ (वा कट्)+उदुमर]

कठनही—(सं०)—(१) कुएँ से पानी निकालने का काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (गया)। (२) काठ का बना हुआ तश्तरी की तरह का बरतन, जिसमें चटनी आदि जैसी चीजें रखी जाती हैं (मग०-५)। [कठ+नही (सं०)<काष्ठ+नही, यथा पनही<पनही]

कठपिरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [मिला०—कठमी, “कठमी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कटभर”]—(भा० प्र०)]

कठफनेल—(सं०) छोटा-छोटा जामुन। यह बरसात में फलता है और इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (पट०-१)। [कठ+फनेल<काष्ठ (वा कट्)+फनेला (देशी)]

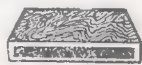
कठबंधन—(सं०) लकड़ी का खंभा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है। [कठ+बंधन<*काष्ठ बंधन]

कठबाँस—(सं०) पतला और ठोस बाँस (शाहा०-१)। [कठ+बाँस<काष्ठ+वंश]

कठबाँसी—(सं०) एक प्रकार का बाँस, जिसकी गाँठें घनी होती हैं और बाँस छोटा एवं पतला होता है (चंपा०-१)। [कठ+बाँसी<काष्ठ+वंश (?)]

कठरंजनी—(सं०)—(गुंजा सं०-१)। [कठरंज]

कठरा—(सं०)—(१) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का नाद। यह मवेशियों को दाना खिलाने के काम में आता है। (२) लकड़ी का बना



कठरा

गोल बरतन, जिसमें आटा गूँधा जाता है, अथवा घर का दूसरा काम होता है। (३) स्लेट, चित्र आदि में लगा चौखट तथा ढोलक, डंक कठौती आदि का बिना मड़ा हुआ लकड़ी का बना ढाँचा (पट०-५)। (४) अनाज रखने के लिए काठ का बरतन (पट०, गया०)। पर्या०—कठौती (गं० दे०)। [कठ+रा (प्र०) अथवा <काष्ठमत्र, <काष्ठपात्र]

कठरेंगनी—(सं०) खाली जमीन पर फलनेवाली गोखुर की जाति की एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डोंटों में काँटे होते हैं। इसके फूल बेंगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं (पू०, सं०-१, मग०-५)। दे०—रेंगनी। [कठरिन्]

कठला—(सं०) दे०—कठरा। [कठ+ला (प्र०); मिला०—काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठली—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (सं०-१)। दे०—कठनही। [कठ+ली (प्र०); मिला०—काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठवत—(सं०)—(१) कुआँ खोदने के समय मिट्टी को भीतर से बाहर निकालने का पात्र (कठौती) (दे०-पू० सं०, शाहा०, मग०-५)। दे०—चलना। (२) चीनी के रस को ठंडा करनेवाला लकड़ी का कड़ाह (सा०)। दे०—कठौत। (३) काठ का बना हुआ गोलाकार बड़ा पात्र। [कठ+वत<काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठही—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली चम्मच-जैसी वस्तु। दे०—कठलुरपी। पर्या०—सैक या सैका (पू०, शाहा०), सफई या सफैया (गं०-दे०), डोहरा (दे०-पू० शाहा०), डपटी वा डब्बू (दे० भाग०)। [कठ+ही (वि० प्र०), मिला०—कठच्छक=एक प्रकार की कलछी (मो० वि० दे०)]

कठा—(सं०)—(१) कृषि के औजारों की मरम्मत आदि करने के बदले में बड़े-लोहार आदि को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—जौरा (चंपा०), पाल (सं०), कमाई (शाहा०, पू० सं०), आँवर (दे०-पू० सं०), कर्मैनी (दे०



सं०)। (२) कड़ा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लगी। [सं०—<*काष्ठा वा *कृष्टि] कठाघर—(सं०) खेतों को नापनेवाला ग्रामोण। [कठा+घर<*काष्ठाघर]

कठार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (दे०-म०)। दे०—लतार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुभी—(सं०) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—चलना। [कठ+उल+ई (प्र०)<*काष्ठ]

कठेस—(वि०) बड़े फल, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चंपा०-१)। [मिला०—कठर, कठिन]

कठौआ—(सं०) लकड़ी का फाड़ें-जैसे फलक वाला औजार, जो खेत में पानी पटाने के काम में आता है (दे० सं०)। दे०—हया। [कठ+औआ, मिला०—काष्ठमत्र, काष्ठ कुदाल]

कठौत—(सं०)—(पू०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह, जो रस ठंडा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठौत (पू०), कठवत (सा०), नाद या आंसौनी (सा०, चंपा०)। [काष्ठमत्र] कठौती—(सं०)—(१) चीनी के रस को ठंडा करने के काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (गं० दे०)। दे०—कठरा। [कठ+औत+ई, <काष्ठमत्र]

कड़ड़ा—(सं०)—(मं० उ०)। दे०—कड़ड़ा।

कड़रू—(सं०) भैंस का बच्चा (सं० पं०)। पर्या०—पड़रू (चंपा०)।

कड़वार—(सं०)—(१) बड़े, बड़ी-बड़ी घास, जो घर छाने के काम में आती है। कास की जाति की एक घास। (२) धान के बोझों की राशि (चंपा०-१)। [कठ, कड (=तृण, पुगाल आदि)+वार (=समूह), मिला०—कलमत्र=शाक का इंटल। कडप, कडवा। (मरा०), कडप (गुं०)]

कड़ाँव—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कड़ाम। कड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (सा०, मग०-५)। दे०—मेंड़ड़ा। [*कटक (संस्क०)>कड़अ (प्र०)>कड़ा]

कड़ाम—(सं०) दोनी में बँलों को सिलसिलेवार बाँधने की लंबी डोरी (सं०-१)। पर्या०—कड़ाँव (चंपा०)। [मिला०—कलमित्र=गर्दन के पीछे का भाग, कण्ठमाल]

कड़ाह—(सं०) (१) ऊख के रस को उवालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे की बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (बिहा०, आज०)। दे०—कराह। [कठ+ई] कड़ाह (२)



कड़ाह (१)



कड़ाह (२)

कड़ाही—(सं०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—मेंड़ड़ा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कड़ाह+ई<*कटाह]

कड़ी—(सं०) (१) हंजा का लंबा चोरस काष्ठ-फलक (गया)। दे०—पल्ला। [कठ+ई] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़ियों (घोरानी) के दोनों छोरों को बाँधने के लिए लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—बाला। [कड़ा+ई<कटक (संस्क०)>कड़अ (प्र०)>कड़ा]

कड़ौर—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला मूद। दे०—बाधी। [कठ+और<*कर्प (संस्क०)>कड़ठ (प्र०)]

कतकी—(सं०) वह घान, जो कात्तिक महीने में होता है (पट०-१)। पर्या०—कतिका (चंपा)। [कतक+ई<कात्तिक<*कात्तिकीय] कतकी उख—(सं०) वह ऊख जो कात्तिक मास में रोपा जाता है (रो०)। [कतकी+उख, कतकी<*कात्तिकीय, उख<*द्वु]

कतरपार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने वाला (पट०, गया)। दे०—अंगडोहा। (कतर+पार<कनारो+पार<*कान्तार+पार।

पार=अन्त । पारयति (=समाप्त करता है),
पाट (=उत-पाट)]

कतरपारा (सं०)-(२० सं०)। दे०—अंग्रेजीहा,
कतरपार ।

कतरबहा—(सं०) दे०—कतरबाह ।

कतरबाह—(सं०)ऊस के कोलू के बेल को हाँकने-
वाला । पर्या०—कतरबाह, कतरबाहा,
कतरबहा (२० भाग०), हँकवा (२०-५०
शाहा० सं०), हँकवाहा (५०-५), हँकवाह
(सं०-२) । [कतर+वाह । कतरी=कोलू में
लगा एक पटरा जिसपर बैठकर बेल को हाँका
जाता है । < कतरी < कतरी (= चक्र—हि०
श० सा०) + वाह अथवा कर्त (= गत) + री]
कतरबाहा—(सं०) दे०—कतरबाह ।

कतरा—(सं०)-(१) एक पशु-साध्य घास(सा०,
सं०, २०-१, सं०-२) । पर्या०—भारभूर
(५०-५) । [मिला०—कतृण (= एक सुगंधित
घास, रोहिस। कतरीय= एक प्रकार का विषला
पीघा (मो० बि० डि०)] (२) पके हुए
घान के बंधे हुए पुल्ले से बाल काट लेने के
बाद का बचा हुआ डंठल (सं०-१, सं०-२) ।
[< कतरी = काटने योग्य, < कृत, < कर्तित
< कृती 'छेदने']

कतरिवाह—(सं०)दे०—कतरवाह । [कतरि+वाह<
कान्तारक+वाह, कतरी=कोलू में लगा एक
पटरा, जिस पर बैठकर बेल को हाँका जाता है;
कतरि+वाह< कतरी (= चक्र—हि० श० सा०)
+ वाह अथवा कर्त (= गत) + री > कतरी]
कतरी—(सं०)-(१) ऊस के कोलू का वह तस्ता,
जिससे बेल जुड़ा रहता है । पर्या०—कातरी
या कातर (शाहा०, २०, पु०, सं०, २० भाग०) ।
(२) कोलू से लगा हुआ वह चौड़ा तस्ता, जो
बेल के पीछे रहता है और जिसपर तेली बैठ-
कर बेलों को हाँकता है । (३) दे०—
कातरी । [< कतरी (= चक्र—हि० श०
सा०) < कृति < कृती "छेदने" अथवा
कर्त=गत+री (बि० प्र०) । (४) घान के
पीछे का एक रोग (२०-५० शाहा०, सं०-२) ।
मिला०—कतरीय= एक प्रकार की विषली घास
(मो० बि० डि०)] । (५) फलों के कटे हुए

छोटे-छोटे टुकड़े (संपा०-१, सं०-२, भाग०-१)
[*कृत]

कतिका—(सं०)-(१) वह उड़द, जो कार्तिक में
फलती है (सं० उ०, सं०-२, ५०-५) दे०—तेपखी ।
(२) कार्तिक में होनेवाला महीन दाने का
एक सफेद घान । इसका बावल सफेद होता
है (सा०-१, संपा०-१, सं०-२, ५०-५) ।
[कतिका + आ < कार्तिक < *कार्तिक
< *कृत्तिका < कृत्तीकृती ('छेदने') + अण]
(३) एक प्रकार का घान, जो छोटकर (बावग)
बोया जाता है और कार्तिक में काटा जाता
है (गया, सं०-२, संपा०, ५०-५) ।

कतिकी—(सं०)-(१) कार्तिक में बोई जानेवाली
नील (२० भाग०) । (२) कार्तिक में होनेवाली
फसल । मिला०—फाल्गुनी—फाल्गुन में बोई
जानेवाली नील । [कार्तिक + ई < कार्तिक
< *कार्तिका < *कृत्तिका (नक्षत्र < कृत्ती-
'छेदने') + अण]

कत्ता—(सं०) डोम-जाति द्वारा बाँस काटने तथा
बाँस की बीजें बनाने के काम में
आनेवाला लोहे का बना एक हृषि-
यार - विशेष (प्रायः सर्वत्र) ।



[< कर्त < कृत + त्रल, कतरी]
कथ—(सं०) खर के पेड़ से निकाल
कर बनाया गया मसाला, जो पान कत्ता
में खाया जाता है । पर्या०—खर (सं० २,
५०-५, संपा० तथा अन्यत्र) । [< *कथाथ
(हि० श० सा०), < कथस्थ < *खदिरौथ
< कदर, खदिर (= खर) + उत्थ (= उत्पन्न)
< उत् + स्थ]

कथई—(सं०) कथे जैसा रंग ।
कदई—(सं०)-(१) दे०—कादो । पर्या०—कदवा
(सं०-२) । (२) बाड़ हटने के बाद नदी द्वारा
छोड़ी हुई गीली मिट्टी । पर्या०—कदोई, पाँक,
पंक, पाँकि (सं०-२) । (३) मिट्टी का कच्चागारा-
गिलावा, जिससे दीवाल तैयार करने में ईंटें
बोड़ी जाती हैं (मग०-५) । [< कर्दम]

कदवा करना—(गुहा०) घान की रोपनी के लिए
खेत को तैयार करना (२०-१, सं०-२) ।

दे०—कादो करल । कदवा + करल < *कर्दम
(ई) + कृ]

कदम—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध फल, जो गोल
आर केसरयुक्त होता है (२०, पुष्पि०-१,
सं०-२, ५०-५) [कदम] (२) घोड़े की एक
चाल । (३) चलने में दोनों पैरों के बीच का
अन्तर । [कदम (अ०)]

कदराह—(बि०)—(५०-५, मग०-५) । दे०—काछल ।
कदवा—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात
के नाश के लिए घान के खेत की जुताई
(उ०-पू०, सं०, संपा०, सं०-२) । दे०—लेव ।
[< *कर्दमक]

कदीमा—(सं०)—(पु०-सं०,
२०-१, सं०-२) । दे०—
कोंहड़ा । [(देशी),
मिला०—कदू, कदू
(फा०)]



कदीमा

कदीमी—(सं०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत
भूमि प्राप्त है । (प्राचीन प्रयोग) । दे०—
मोरूसी । [कदीमी=पुराना (फा०)]

कदुआ—(सं०)लता में होनेवाला एक प्रकार का
लंबा या गोल फल,
जिसकी तरकारी होती
है । पर्या०—कदू, कदू
(२०-भाग०), लोका
(गया, २०-सं०, संपा०,
५०, ५०-५), लोका
(५०-१), सजिवन
(पु०-सं०), कदुआ, लोकी (५०-१) । [कदुआ
(देशी), कटु तुम्बी, अलायुक्त (संस्कृ०)
लाट लाड़ (बं०), दुध्या, मोपल (मरा०),
दुधियु, दुधलु, आलाडी (गु०), कदु
उवलकाई, कडंड वलकायि (क०), तोय,
तुयडो काया (ते०), कदू, कदू (फा०)]
कदोई—(सं०)-(१) दे०—कदई, कादो । (२)
कोचड़ । दे०—कादो । [< *कर्दम] (३) वह
खेत, जिसका कोचड़ कभी नहीं सूखता और
बिना जोते हुए ही जिसमें खेतों की जाती है ।
दे०—चहल । [< *कर्दमिन्]

कदुआ—(सं०)—(२० भाग०) । दे०—कदुआ ।

कधोर—(बि०)कीचड़ मिला हुआ पानी (सं०-१)
पर्या०—किधोर (संपा०, २० भाग०), किनोर
(संपा०), किदोड़, किदोड़ा (५०-५),
कदवइल (संपा०) [कथ+ओर < *कर्द
(= कर्दम) + पूर वा < *कर्द+उदक]

कन—(सं०)-(१) बंटवारे के लिए खेत की
फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण । पर्या०—
कूत, कनकूत, कनकुत्ती । [संम०— *कण]
टि०—जब किसान के खेत में फसल तैयार हो
जाती है तब काटने के समय जमींदार अपने
अमीन और सालिस को खेत पर भेजता है ।
वहाँ किसान, पटवारी-गमास्ता के कठाधर से
जमीन नपवाता है और सालिस खेत के चारों
तरफ घूमकर फसल की देखरेख करके तथा
अमीन और पटवारी से परामर्श करके खेत की
फसल का आनुमानिक परिमाण निर्धारित
करता है । यदि यह आनुमानिक परिमाण
किसान को स्वीकृत होता है तो खेसरा-बही पर
चढ़ा दिया जाता है । बात वहीं समाप्त हो
जाती है । किंतु यदि यह अनुमान किसान को
संजूर नहीं होता है तब दूसरे किसान मध्यस्थता
के लिए बुलाये जाते हैं और वे परिमाण निर्धा-
रित करते हैं । यदि उनका निर्णय किसी एक
दल को भी अमान्य होता है तो पुनः यह मामला
जांच-पड़ताल के लिए चला जाता है ।
इसमें खेत की अच्छी फसल के एक हिस्से को
जमींदार की ओर से और उसके बराबर ही
घटिया फसल को किसान की ओर से काटकर
दोनी करके अनाज अलग-अलग तोला जाता है ।
फिर दोनों को मिलाकर उसका मूल्य-निर्धारण
किया जाता है और खेसरा-बही पर चढ़ाया
जाता है । उसके बाद शेष भाग को किसान
काटकर तैयार करके अनाज घर पर ले जाने के
लिए स्वतंत्र रहता है । किसान को जमींदार की
ओर से फसल की कम उपज होने तथा काटने,
दोनी करने और तैयार करने के बदले प्रतिमन दो
सेर की छूट या छुट्टी दी जाती है । इसके बाद
अनाज का परिमाण करके दोनों में अलग-अलग
अंशों में बाँट दिया जाता है, किंतु अनाज
किसान के घर रह जाता है और हिसाब लिख
लिया जाता है । यदि किसान उग्र अनाज को

चाल वर्ष में जमींदार के पास जमा कर देता है तो हिसाब बेबाक होता है, नहीं तो उसके नाम से अगले साल के हिसाब में बाकी पड़ जाता है। (२) भादों में पान के पौधे की जड़ से निकलने वाला नया अंकुर। [< *कण, < *कन्दल (= नया अंकुर)] (३) भावली खेत की पंदावार का कूतना (चंपा०-१, मं०-२)। (४) गाय या भैंस को पोसने के लिए देने पर उसके दूध-घी का बंटवारा करने के लिए किया जानेवाला मूल्यांकन (चंपा०-१)। (५) चावल छांटने पर उससे निकली हुई धूल की तरह महीन भूसी (चंपा०-१, मं०-२, पट०-४)। [< *कण]
कनइल—(सं०)—(शाहा०-१, चंपा०, दर०-१)। दे०—कनल। [कन + इल < *कर्णकील]
कनई—(सं०)—(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर के भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (पू०) दे०—दोंजी। पर्या०—काँखी (२) दे०—कादो। (३) दे०—कनवाई (मं०-२, चंपा०)। [< *कणइल, < *कन्दली]
कनकचूर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० भाग०, अन्यत्र भी)। [< *कनकचूर्ण]
कनकजीर—(सं०) एक प्रकार का रोपा जानेवाला उत्कृष्ट महीन धान (पू० मं०, मं०, दर०, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०-१) [कनक + जीर < *कनकजीरक]
कनकजरी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (शाहा०, चंपा०-१)। [कनक + जीरा < *कनकजीरक]
कनकिल्ली—(सं०) पाले के दोनों छोरों पर बेलों के कंधे के बाद पाले में छेद करके लगाई हुई लकड़ी या बाँस की कील (द० भाग०, पट०-४)। दे०—सेला। [कन + किल्ली < *कर्णकील]
कनकुत्ती—(सं०) बंटवारे के लिए फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण (मं०-२, चंपा०)। दे०—कन। [कन + कुत्ती < *कण (संस्कृ०) + कुत्ती < कूतना (हि० कि०)]
कनकुत्ती बटाई—(सं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा फसल का बंटवारा। पर्या०—दाना बन्दी, भौकट्ट

(शाहा०, द०-पू०), दमाब, दमकट्टो (शाहा०, पट०, गया)। [कन + कुत्ती + बटाई < *कण (संस्कृ०) + कुत्ती < कूतना (हि० कि०) + बटाई < वण्टन < वण्ट]
कनकूत—(सं०) दे०—कन। [कन + कूत < कण (संस्कृ०) + कूत < कूतना (हि० कि०)]
कनखी—(सं०) ऊँख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (द०-प० शाहा०)। दे०—दोंज। [< *कण, कणिक, < कण + अख]
कनगोजर—(सं०)—(१) ऊँख की आँख (पोर) से निकलनेवाला अंकुर (द०-पू० मं०)। दे०—कनोजर। पर्या०—अँखुआ (मं०-२)। [कन + गोजर, कन + ओजर (< गोजर)] (२) एक पत्तले आकार का गोजर जो कई पैरोंवाला छोटा विपला कीड़ा होता है। पर्या०—कनखजूरा। [कन + गोजर। मिला०—कर्ण खजूरे]
कनबदा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छोट कर (बावण) बोया जाता है (गया, मं०-२) [देशी]
कनभो—(सं०) बाँध की रक्षा के लिए फालतू पानी को बहाने के किनारे पर का नाला। [देशी, मिला०—कोणभंग। मिला०—कन्ध < कं (जल) + क + धारण करनेवाला] = मेघ, कन्धरः < कं + धरः = मेघः]
कनरची—(सं०) सम्भे के ऊपरी भाग की दो भुजाएँ, जिनके सहारे ढँकुल रहती है। [देशी]
कनरा—(सं०)—(पट०-४)। दे०—कानर-३।
कनवाई—(सं०) एक आने या छटाँक का सोलहवाँ भाग। दे०—छदाम [< *कण (वती)]
कनवह—(सं०) पैन से निकलनेवाली छोटी संकीर्ण नाली (पट०, गया, पट०-४)। दे०—कनवा। पर्या०—कनवोहा (चंपा०) [< *कण + वह, < *कोणवह, मिला०—कन्ध, कन्धर (= मेघ)]
कनवाँ—(सं०)—(१) एक आने का सोलहवाँ भाग (पट०-४)। दे०—छदाम। (२) पाँच तोले या एक सेर के सोलहवें भाग के बराबर की तोल, छटाँक। (वि०) पाँच तोले नाप की वस्तु (वि० री० हरि०)। [< *कण + वत् (= वान)] (३) धान की फसल की वृद्धि का रोहनेवाली

एक घास (गया)। पर्या०—काना (मं०, पट०, पू०, चंपा०, मं०-२), कना (उ० पू० मं०), केना (प० मं०), ककना (पट०-४)। [कण]
कनवा—(सं०)—(उ० पू० मं०) दे०—कनवह। [< *कणवह, + < *कोणवह]
कनवाहा—(सं०)—(चंपा०) दे०—कनवह।
कनसन—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुँचाने वाली एक घास (सा०)। पर्या०—काँसी (प० मं०, पट० गया, द० पू०), कास (शाहा०, उ० वि०) [देशी]
कनसी—(सं०)—(१) ऊँख का अंकुर (द० मं०)। दे०—आँख। (२) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (द० मं०)। दे०—डिम्बी। (३) पेड़ की टहनियों से निकला हुआ नया पत्तल (पट०-४, मग०-५)। दे०—कलस, कबी। [< *कणिश, < *कणाल]
कनसुप—(सं०)—मं०-२)। दे०—कोलसुप।
कना—(सं०)—ऊँख का एक रोग-विशेष, जिससे ऊँख के अन्दर के रेशे लाल हो जाते हैं और उतनी दूर का रस और मिठास कम हो जाती है (मग०-५, पट०-४, मं०, उ० वि०)। [कना > कान < *कण]
कनाइल—(वि०)—(१) कीड़ा लगा हुआ (चंपा०-१)। [कन + आइल (हि० प्र०) < *कण] (२) कीड़ा लगा हुआ ऊँख का पौधा (गं० उ०)। दे०—सीना। पर्या०—रताइल (पट०-४)। [कन + आइल (वि० प्र०) < *कण]
कनाई—(सं०) दे०—कना। [कना + ई (प्र०) < कान < *कण]। लोको०—'ऊँख कनाई काहे से, स्वाती पानी पाये से'—घाघ (= स्वाती का पानी पाने से ऊँख कना हो जाता है)।
कनाठ—(सं०) बाँस का वह टुकड़ा, जिसके दोनों किनारों पर आँटी के जोड़े बाँधकर एक जगह से दूसरी जगह दिये जाते हैं (प०)। दे०—विहन-ढोआ। [देशी, मिला०—स्कन्ध = तरस्कन्ध, शाखा]
कनाठा—(सं०) एक प्रकार का कीड़ा, जो दलहन, कपास और तम्बाकू के पौधों में लगता है (द० भाग०)। पर्या०—कन्ही (द० मं०),

छोरी (द०-प०), छेड़ी (उ०-प०, मं०), छीरा (चंपा०)। [देशी, मिला०—स्कन्ध + स्थ]
कनाह—(सं०) कीड़े लगा ऊँख का पौधा (मं०, चंपा०, द०-प०-शाहा०, मं०-२)। दे०—सीना। [कना + ह < *कण]
कनाहा—(सं०)—(द० मं०)। दे०—कनाह [< *कण]।
कनिक—(सं०) गहूँ या जौ का मोटा आटा (चंपा०, मं०-२, भोज०)। दे०—आँटा। [< *कणिक, < *कण]
कनियाएल—(वि०) बोए हुए बीज के अंकुर से पहले-पहल पत्ता निकलना (पट०, गया)। (वि०) पहले-पहल निकले हुए पत्तोंवाला अंकुर। दे०—पतिआएल। [कनिआ + आएल (वि० प्र०) < *कण, < *कणिश]
कनियाल—(सं०) एक प्रकार का धान। [मिला०—कणिकार]
कनिल—(सं०) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (द० भाग०)। दे०—खील। [मिला०—कणि = टुकड़ा करने या काटने की प्रक्रिया (मो० वि० डि०)]
कनेटी—(सं०) कूँड़ की किल्ली से बाँधनेवाली रस्सी (उ०-प०)। पर्या०—कुँड़ियाठी (गं० उ०), चोरकिल्ली (चंपा०, उ०-प० मं०)। [कन + एटी, कन < *कण; एटी < ऐँटल (वि०) < *आवेष्टन]
कनेल—(सं०)—(१) बेलगाड़ी के जुए में लगी काठ, लोहे या पीतल की वन किन्नी, जो बेल के कंधे को बहकने से रोकती है (मं०-१)। [कन + एल < *कर्णकील, मिला०—कणेर] (२) एक प्रकार का फूल, जो लाल, पीला, सफेद और अन्य रंगों का भी होता है (दर०-१, पूर्णि०-१)। [< *कणिकार, < *कणेर]। (३)—(दर०-१, पूर्णि०-१) दे०—कनल।
कनैल—(सं०) (१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने के बाद उसमें से निकला अंकुर या नई पत्ती (द० मं०)। दे०—दोंजी। (२) जुए के दोनों पत्तों को जोड़ने के लिए बेल के कंधे के



कनल

बाहर छिद्र में लगाई गई कील (उ०-प०, पू०, बर०-१, पूर्णि०-१)। दे०-सईल, कनेल। (३) हल-पालो के दोनों छोरों पर बेलों के कंचे के बाद पालो में छेद कर लगाया जानेवाला लकड़ी या बाँस का टुकड़ा। दे०-सैला। पर्या०-कनेल, कनईल (बर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०)। [< *कर्णकील, < *कोणकील] (४) दे०-सेमल। कनोजर—(सं०) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने पर उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (उ०-प० मं०, मं०-२)। दे०-बोंबी। [कन + ओजर < *कण; कांड] कनगोजर—(सं०)-(१) उस की आँख (घोर) से निकला हुआ अंकुर (उ०-पू० मं०)। [कन + गोजर; देशी वा कण, कांड < कंड (प्रा०) कंडोरा (मस०)] (२) एक प्रकार का विषला सरीसृप कीड़ा जिसके बहुत-से पैर होते हैं। कन्ना—(सं०)-(१) अनाज के खेतों में होनेवाली एक पशु-खाद्य घास (उ०-भाग०, मया)। दे०-कनवी। (२) घान की फसल की वृद्धि रोकने-वाली एक घास (उ०-पू० मं०)। दे०-कनवी। [देशी] (३) खम्भे की एक शाखा (नोक), जिसमें घिरनी चलती है (मं०-२, पट०-४)। दे०-कानी। [< *कण < *कोण] (४) एक किस्म की घास (मुं०-१)। (५) (बि०) बराबर रोते रहनेवाला (मुं०-१)। [देशी, मिला०-कण, कणिक] कन्नी—(सं०)-(१) गेहूँ या किसी अनाज का पहले-पहल निकला अंकुर (पट०)। दे०-मुइया। उदा०-‘कनियाएल आवे है’=अंकुर फूट रहा है (पट०)। [< *कण, < *कणी, < *कणिका] (२) डंकुल के खम्भे के ऊपर की शाखा, जिसपर डंकुल का बल्ला लटकता है। दे०-कान। [< *कणी, < *कोण, < *कोणिक] (३) पेड़ की टहनियों से निकला हुआ नया पल्लव (पट०-४, मग०-५)। दे०-कलस। कन्हैया—(सं०) उस के कोलू के पेट में रहने-वाले जाठ (मोहन) के मुँह के ऊपर का कटा हुआ भाग (उ०-प० मं०)। दे०-कान्ह। [< *स्कन्ध, < *कन्ध] कन्हू—(सं०) दलहन, कपास और तंबाकू के

पौधों पर लगनेवाला एक कीड़ा (उ०-मुं०)। दे०-कनाठा। [देशी, मिला०-कणिक, गन्धिन] कन्हूरी—(सं०) वह खेत, जिसमें पानी ले जाने में दिक्कत हो। [मिला०-कन्धरा (=भीषा)] कन्हूली—(सं०)-(१) उस के कोलू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा (मग०-५)। दे०-नाषा। (२) मवेशियों की पीठ पर की गद्दी के नीचे रखी जानेवाली वस्तु (बर०-१, पूर्णि०-१)। (३) बेलों की पीठ पर की गद्दी। (मं०-उ०, मग०-५, उ०-मुं०)। पर्या०-छल्ला, बखरा (मं०-उ०-प०), छल्ला (मं०-उ०-प०)। [मिला०-स्कन्ध, कन्ध, कन्धरा] कन्हैया—(बि०) सिचाई करनेवाला पुरुष (उ०-प० शाहा०)। दे०-पनछना। [< *क + धर (=मेष, जलधर)] कन्हूली—(सं०) बेल के कंचे पर रखी जानेवाली गद्दी (शाहा०-१)। [कन्हा + एली (प्र०) < *स्कन्ध] कपटा—(सं०) एक कीड़ा, जो घान के पौधों में लगता है (चंपा०, मं०-२)। [देशी, मिला०-कर्पर] कपाई—(सं०)-(१) मवेशियों का घास खाने का झोला (पट०)। (२) घास डोने का एक प्रकार का जाल-जंसा बुना हुआ बड़ा बोरा (उ०-भाग०)। दे०-जाला। [मिला०-कपर्द, कपर्दिन=गूँथा हुआ केश] कपाई—(सं०)-(पट०) दे०-कपाह। कपारी फोरल—(मुहा०) कपास या किसी दूसरे बीज के अंकुर में दो पत्तों का निकलना (मं०)। दे०-दीपविया। [कपारी + फोरल < *कपाल, < *कपाट + फोरल (कि०) < *स्फुट (विकसने)] कपास—(सं०)-(१) रुई का पेड़ (प०)। (२) टि०-वस्तुतः कपास रुई है। कपास प्रायः वंशाख में पकती है। इसके कई भेद हैं। (२) फली में पड़ी हुई विना साफ की हुई रुई (मग०-५)। पर्या०-वाँग (मं०-२), बाँगा (पू०-मं०, चंपा०), वाँगी (उ०-भाग०), काँच रुआ (उ०-मुं०)। [< *कर्पास]

कपास फूटल—(मुहा०) कपास का फूटना, फली का खिलना (प०)। पर्या०-बाँगा फूटल (मं०), बाँगी फूटल (उ०-भाग०), फोटा (उ०-मुं०)। [कपास + फूटल < *कर्पास + *स्फुट < *स्फुट] कपुरिया—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिससे कपूर-जैसी गंध आती है (चंपा०, मं०-२)। [कपुर + इया (साद० प्र०) < *कपूर] कपुसार—(सं०) एक प्रकार का अगहनी घान, जो पीलापन लिए उजला होता है और जिसकी जड़ और फुनगी काली, सूँड़दार तथा चावल उजला एवं महीन होता है (मं०-२)। [< *कपिश + शालि] कपूरनि—(सं०) एक लत्ती-विशेष (चंपा०-१)। [देशी, मिला०-कपूर] कपूरनी—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी, मिला०-कपूर] कपूरसाह—(सं०) कपूर की तरह गंधवाला वाम (पट०-१)। [कपूर + साह < *कपूर] कपूरी—(सं०) पान का एक उत्तम भेद, जिसका पत्ता बड़ा कोमल होता है। यह कम कड़ुआ और खाने में स्वाद-युक्त होता है (मं०-२, मग०-५)। [< *कपूर] कप्पा—(सं०) नई अफीम से बहा हुआ रस, जो चिपड़े आदि पर इकट्ठा कर गाढ़ा किया जाता है (सा०, उ०-मुं०)। दे०-कफा। [कप्पा (=बिपड़ा) < *कर्पट] कफा—(सं०) दे०-कप्पा। पर्या०-काफा (शाहा०), कप्पा (सा०, उ०-मुं०)। [कप्पा (=बिपड़ा) < *कर्पट] कब्ज—(सं०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्रक। दे०-रसीद। पर्या०-काबिज (मग०-५)। [< *कब्ज: (प्र०)=अधिकार] कब्जाना—(सं०) मालगुजारी की रसीद लेने के लिए प्रति रपया एक पंसा पटवारी के द्वारा निर्धारित देय (पू०-मं०)। दे०-रसिदाना। [कब्जा (उड्), < *कब्ज: (प्र०)] कबरा—(बि०) दो रंगों का बेल आदि मवेशी, जिसकी आधी देह उजली और आधी काली हो।

(पट०-१, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०-चितकबरा (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कबरा < *कतुर] कबारया—(सं०) घान के बिड़ार से बीया उखाड़ने-वाला मनुष्य। (मग०-५) पर्या०-कबरिहा (सा०), मोरकबरा (उ०-मुं०, मग०-५)। [< कवारल (=उखाड़ना-कि०) (देशी) मिला० < *कर्व गतो] कबरिहा—(सं०) बिड़ार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (सा०)। दे०-कबरिया। [(बेसी) दे०-कवारल (कि०)] कबली—(सं०) उजले वर्ण का बड़े दानोंवाला मटर (मं०-उ०, मग०-५)। दे०-कबिली। [कावली < कालुली] कबाड़ल—(कि०) उखाड़ना, अलगाना, नोंचना (मुं०-१, मं०-२, मग०-५) [देशी] कबारल—(कि०) फसल, घास आदि का उखाड़ना। दे०-कबाड़ल। कबारी—(सं०)-(१) कबाड़नेवाला (२) साग-सब्जी बेचनेवाली कुँजड़ों की तरह एक जाति (मुं०-१, मं०-२, मग०-५)। [देशी] कबाला—(सं०) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा किसी की जमीन आदि संपत्ति दूसरे के अधि-कार में जाती है। दे०-केबाला। कबाला लिखल। (मुहा०)=कबाला लिखना। कबाला लिखाबल (मुहा०)=कबाला लिखाना। [कबाला (अ०)] कबिली—(सं०)-(१) (मं० उ०) दे०-कबली। पर्या०-कबली (मं० उ०), धेबली (उ० पू० मं०)। (२) चने का एक भेद जो बड़ा और उजला होता है (कावली, शाहा०-१)। [कावली] कबुरी—(सं०) दे०-कंबरी। कबूलियत—(सं०) वह दस्तावेज, जिसे पट्टा लेने-वाला पट्टे की स्वीकृति में ठीका देनेवाले या पट्टा लिखनेवाले को लिख देता है। पर्या०-करारनामा (पट०-४, मग०-५, सा०-१)। [कबूलियत (फ़ी० उड्) < *कबूलियत (प्र०) कबुलात, कबुलायत (मरा०)]

कमकोड़ी—(वि०) कामचोर, आलसी। [कम+कोड़ी<काम+कोड़ी, काम<कर्म, कोड़ी<कुष्टी]
कमची—(सं०) बाँस की चोरकर बनाई गई उसकी पतली फट्टी (चपा०-१, मं०-२)।
पर्या०—कमाची—(पट०-४, मग०-५)। [कञ्चिका (=बाँस की पतली डाली)। (मो० वि० डि०)]।
कमरकल्ला—(सं०)—(१) बंधागोभी, जिसमें पत्तों का संयुक्त होता है; चंत में इसमें फूल हो जाता है (मुं०-१)। दे०—कमरकल्ला। (२) सोमारों की एक अच्छी उपजाति (मग०-५)



कमरकल्ला

[कमर+कल्ला<कमर+कल्ल]

कमरख—(सं०) एक प्रकार का फल। इसका वृक्ष मध्यमाकार होता है, पत्ती एक-डेढ़ अंगुल चौड़ी और दा अंगुल लम्बी होती है, जेट-आधाड़ में फूलता-फलता है, पका फल खट्टा-मीठा होता है, फल की अचार-चटनी बनती है। यह दवा के काम में भी आता है। कच्चे का रंग भी बनता है (बर०-१, पूर्णि०-१, पट०-१, मं०-२, पट०-४, मग०-५)। [<*कर्मर (संस्कृ०)<ममर (प्रा०) कर्मरक]

कमर-खोलाई—(सं०) पुलिस अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अदालतों या पुलिस कास्टेबुलों द्वारा ग्राम में प्रवेश करने या शिविर डालने पर माँगा गया पुरस्कार। दे०—सलामी। [कमर+खोलाई]

कमरसायर—(सं०)—(१) लोहार के काम करने का निश्चित स्थान। पर्या०—लोहारो (सा०, चपा०, पट०-४, मग०-५) कमसारी, मरई (द० भाग०) कमरसाल (सा०-१)। (२) बड़ई के कान करने की जगह। पर्या०—कमरसार (मुं०-१, भाग०-१)। [कमर+सायर<कर्मर+शाल, कर्म+शाल]

कमरसार—(सं०) कमरों या बड़इयों का झुंडा या घर (मुं०-१)। [कमर+सार<*कर्मशाल<कर्मरशाल]

कमरसारी—(सं०) दे०—कमरसायर। [कमर+सार+ई<कर्मर+शाल, कर्मशाल]

कमरसाल—(सं०) लोहारों के काम करने का स्थान, कर्मशाला (सा०-१)। [कमर+साल<*कर्मशाल, <*ममरिशाल]

कमरिया—(सं०) मजदूर। पर्या०—जन (मं०, ब०-पू० मं०, चपा०, मं०-२) बनिहार, कमियाँ (पट०, गया, ब० मुं०, चपा०), चाकर (=वैतनिक नौकर)—(मं०), बहिया, चरवाह (प्रवैतनिक नौकर), रोजहा=रोज की मजदूरी पर काम करनेवाला। हाकिमहुक्मि-वह मजदूर, जिससे बिना मजदूरी दिये बलात् काम कराया जाता है। बेगार (गया)। [<*कर्मर, <*कर्मरक]

कमरी—(सं०)—(१) कटहल के फल का छिलका (शाहा०-१, मं०-२, पट०-४, मग०-५, सर्वत्र)। [कमर+ई (सादु० प्र०), <*कर्मल] (२) वह बैल, जिसकी कमर झुकी हो (पट०-१, चपा०, पट०-४, मग०-५), कमर+ई<कमर (फा०); मिला०—कम्र (संस्कृ०)=नम्र]

कमल—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल। यह पानी में होता है तथा करीब-करीब संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग का होता है। कहीं-कहीं पीले रंग का भी होता है। इसका पत्ता गोल-गोल बड़ी घाली के आकार का होता है, जिसे 'पुरइन' कहते हैं (बर०-१, पूर्णि०, मं०-२, चपा०, पट०-४, मग०-५, अन्यत्र भी)। [संस्कृ०]



कमल

कमलगट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट०-४, मग०-५, चपा०, सार०, अन्यत्र भी)। [कमल+गट्टा, गट्टा<गट्टा<ग्रन्थ(संस्कृ०) गट्टा (पा०)=गुच्छा, गट्टिमा (प्रा०) गट्टा (हि०)]

कमलघट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट०-१)। [कमल+घट्टा, गट्टा (हि०)]

कमला परसाद—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। [कमला+परसाद<*कमला+प्रसाद (?)]

कमसरे—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि-कर से मुक्ति (पू० मं०)। दे०—माघी।

पर्या०—जागीर (पट०-४, चपा०, मग०-५)। [देशी]

कमाइल—(कि०)—(१) काम करना, (२) जोतना-कोड़ना आदि कृषि-कार्य करना, (३) कच्चे चमड़े को सिद्ध करना, (४) किसी खेत को जोत-कोड़ कर तैयार करना (चपा०-१, मं०-२)। (वि०) कमाई हुई मिट्टी, खेत, चमड़ा, आदि। पर्या०—कमायल (भोज०, आज०)। [कमाइल कमन्] कमाई—(सं०)—(१) किसी तरह के काम करने के बदले बड़ई, चमार आदि की दी जानेवाली मजदूरी। (२) नये कोल्हू बनाने के बदले बड़ई की दी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० मं०)। दे०—खान, माँवर। (वि०) कमाया हुआ, अर्जित। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत करने आदि के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, पू० मं०, पट०-४)। दे०—कठा। (४) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (प०, पट०-४)। दे०—अगवाड़। [<*कर्मन्]

कमाउन—(सं०) दे०—कमनी।

कमाची—(सं०) दे०—कमची।

कमायल—(कि०) दे०—कमाइल।

कमार—(सं०)—(१) लोहा-लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—लुहार। (२) लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—बड़ई। [<*कर्मर]

कमावट—(सं०) खुरपी से खर-पात निकालने की प्रक्रिया (बर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—सोहनी (चपा०), निकौनी (पट०-४, मं०-२, मग०-५)। [काम<*कर्मन्]

कमावल—(कि०) दे०—कमाइल।

कमासुत—(वि०)—(१) काम करनेवाला, (२) अधिक परिश्रम से काम करनेवाला (चपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [कमा+सुत<कमाना (हि० कि०)+सुत]

कमिआई—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०, पट०-४, मग०-५)। [कमाइल (कि०)<*कर्मन्]

कमियाई—(सं०) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, ब० मुं०, पट०-४,

मग०-५)। दे०—अगवड़। पर्या०—कमियाँ [कमाइल (कि०)<*कर्मन्]

कमियाँ—(सं०)—(१) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, ब०-मुं०)। दे०—अगवड़। (२) वह परंपरागत नौकर या दास, जो अपने जमींदार स्वामी की इच्छा के बिना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है और नहीं कोई दूसरा काम कर सकता है (गया०, पट०, ब० मुं० पट०-४, मग०-५) दे०—नफर। [<*कर्मन्] कमियाँटी—(सं०)—(१) मजदूर की दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (गया)। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी। (गया, पट०-४, मग०-५)। दे०—हरवर। [<*कर्मन्]

कमी—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि-कर की छूट (पट०) दे०—माफी। [फा०] कमीना—(सं०)—(१) अधिक मेहनत से काम करनेवाला। (२) छोटी जाति के काश्तकार (शाहा०)। दे०—राड़ जाति। (वि०)—(३) बदमाश, बुरे आचरण का व्यक्ति। [<कमीन (फा०)]

कमीनी—(सं०) मजदूरी। [<कमाइल (कि०)<*कर्मन्]

कमुआ—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है (पट०)। दे०—कम्मा। [देशी]

कमेड़ा—(वि०) काफी काम करनेवाला मनुष्य (चपा०-१)। [<*कर्मठ<*कर्मन्]

कमनी—(सं०)—(१) छिछली कोड़ाई; खुरपी, कुदाल आदि से हल्के-हल्के कोड़ना (चपा०, मं०, मं०-२, मग०-५)। दे०—खुरपियाना। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (मं० उ०)। दे०—सोहनी। पर्या०—कमाउन (बर०-१, पूर्णि०-१), कमोन (बर०-१)। [कमाइल (कि०)<*कर्मन्] (२) कृषि, साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बड़ई को मिलनेवाली मजदूरी (ब० मुं०, चपा०)। दे०—कन। [कमाना (हि० कि०), कमावल (बिहा०)<*कर्मन्]।

कमोच—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला धान (उ०-५०) । [सं०—कमोच < *कुमुद]

कमोदी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम सुगन्धित धान । [सं०—कमोच < *कुमुद]

कमोरा—(सं०) कोहू की कतरी और मोहन के खंभे के ऊपर की ओर घूमनेवाले टेढ़े भाग से लगा हुआ बाँस या लकड़ी का टुकड़ा । दे०—खरचाड़ी । [देसी]

कमौनी—(सं०)—(१) खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की-हल्की कोड़ाई । छिछली कोड़ाई (ब० भाग०) । दे०—खुरपियाना । (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत से की जानेवाली घास आदि की सफाई (ब० भाग०, ब० मु०) । दे०—सोहनी । [कमाना (हि०), कमावल (बिहा०) < *कर्मन्]

कम्मा—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है । पर्या०—कमुआ (पट०) । [देसी]

कयरवा—(सं०) केले की तरह का लंबा-लंबा आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५) पर्या०—सुगवा, केलाबा (पट०-४), केरंबा (मग०-५), केरवा (म०-२, चंपा०), केरवा (चंपा०) । [कयर+वा (प्रा०) < कयरा < कयल < *कदल < *कदली]

कयरा—(सं०) केला । केले का पौधा, (पट०-१) पर्या०—केरा (पट०-४, मग०-५, म०-२, चंपा०, अन्य०) । [कयरा < कयल < *कदल]

कयरा के कंद—(सं०) केले की जड़ (पट०-१) । [कयरा+के+कंद]

करंगी—(सं०) काले दानोंवाला एक प्रकार का धान (ब०-५० शाहा०, सा०) । पर्या०—करंगी, करडा (चंपा०, म०-२) । [मिला०—करङ्ग = एक प्रकार की ईख (मो० वि० हि०), कडंगर—भूसा, डंठल]

करंगी—(सं०) (ब०-५० शाहा०, सा०) । दे०—करंगी ।

कर—(सं०)—(१) भूज का वह भाग, जिससे रस्तियाँ बाँटी जाती हैं (चंपा०-१) ।

(२) मालगुजारी, जैसे—जलकर, फलकर आदि (चंपा०-१) । (३) पावर्ष करवट (चंपा०-१) । [< *कर]

करइला—(सं०) एक प्रकार की लता और उसमें उत्पन्न होनेवाली तरकारी । (पट०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, अन्य०) । [< *कारवेल्ल]



करइली—(सं०) छोटा करेला (पट०-१, पट०-४, मग०-५) । [करइल+ई (प्र०) < कारवेल्ल]

करकंधा—(वि०) वह गाय या बैल, जिसके कंधे पर एक काला घन्ना होता है । पर्या०—करिकंधा (शाहा०) । करकन्हा (बाब०) । [कर+कंधा, कर < काल; कंधा < स्कंध, कालस्कंध, यथा—कालकंठ]

करकजाँधी—(सं०) बलों का एक रोग । इसमें चलते-चलते बैल के पैर एँठ जाते हैं (सा०-१, चंपा०, म०-२) । पर्या०—करजाँधिल (पट०-४, मग०-५) [करक+जाँधी, < कड़कल (बिहा०), कड़कना (हि०) + जाँधी]

करकट—(सं०) इतने समय पर चलानेवाली गाय या भैंस । पर्या०—लथराहु (म०) । [मिला०—कर्कोट = एक प्रकार का नाग, हाथ की एक विशेष मुद्रा]

करका—(सं०) काली मिट्टी । (वि०) काला [कर+का (प्र०) < *काल+कमिला करल (मरा०)]

करकी मौँटि—(सं०) काली मिट्टी (बर०-१) । [करकी+मौँटि < *कालक+मृत्तिका]

करकुट—(सं०) ईँट की गंदगी । [मिला०—करकर]

करखा—(सं०) दे०—करिखा । [< *कालक]

करखी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—करिखा । [< *कालक]

करखी—(सं०)—(ब० भाग०) । दे०—करिखा । [< *कालक]

करडा—(सं०)—(चंपा०, म०-२), दे०—करंगी ।

करज—(सं०)—(१) निश्चित अवधि के लिए वादा करके किसी से द्रव्य लेने की प्रक्रिया । दे०—करजा । (२) उधार । [कर्ज (अ०)]

करजखोख—(वि०)—(शाहा०), दे०—करज-खोख । [करज+खोख]

करजखोर—(वि०) कर्ज लेकर निर्वाह करने-वाला (पट०, पट०-४, मग०-५, म०-२, चंपा०, भाग०-१) । दे०—रिनिहा, करजखोख । [करज+खोर < कर्ज (अ०) + खर (का०)]

करजखोख—(वि०) कर्ज लेकर जीवन-निर्वाह करनेवाला (पट०, म०-२, पट०-४, चंपा०, मग०-५) । दे०—रिनिहा । [करज+खोख, खोख < खाना (हि०), खायल (बिहा०)]

करजवाम—(सं०) दे०—करजा । [करज+वाम = कर्ज; दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं]

करजाँधिल—(सं०)—(पट०-४, मग०-५) । दे०—करकजाँधी ।

करजा—(सं०)—(१) पशु खरीदने या कुर्जा आदि बनाने के लिए बी जानेवाली अग्रिम द्रव्यराशि, ऋण । पर्या०—तगाबी । (२) निश्चित अवधि के लिए सूच पर उधार लिया जानेवाला द्रव्य । पर्या०—करज (म०-६०), करजवाम, पैचा । [< *कर्ज—(अ०)]

करती मूरी—(सं०) इतने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गो या भैंस के सामने रखी गई घास या भूसे से भरी बछड़े या पाड़े की खाल (गया) दे०—लगवान । [करती+मूरी; मूरी < मूँड < *मूँड; करती < *कृत वा *कृत् (?)]

करदुस्म—(सं०) वह बैल, जिसकी देह उजली और पूँछ काली हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५) । [करदु+दुस्म < कार (बिहा०)+दुस्म (का०)]

करवीर—(सं०) एक प्रकार का पीला फूल, जिसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं और पौधा मूल से ही शाखावाली झाड़ी की तरह होता है (बर०-१, पूर्णि०-१) [< *करवीर]

करमकुल्ला—(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी या पत्ती-साग की जाति की एक तरकारी (पट०-४, मग०-५, म०-२) । पर्या०—खंघाकोबी । [करम+कुल्ला < करम (अ०) + कुल्ला (हि०)]

करमी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा काला धान । यह नीची जमीन में रोपा जाता है । (चंपा०, म०-२) । [मिला०—कलम, कलंव]

करमिया—(सं०) एक प्रकार का उजला शकर-कंद । दे०—देशी । [मिला०—कलम्वी]

करमी—(सं०) जल या दलदल में होनेवाली एक लता, जिसके फूल छोटे एवं उजले-बैंगनी रंग के होते हैं, इसका साग होता है तथा यह पशु-खाद्य भी है (ब० भाग०, पट०-४, मग०-५, म०-२) । पर्या०—करमीलत, करेम, (ब०-५० शाहा०), कर्मी (बर०-१) । [< *कलम्व, < *कलम्वी]

करमीलत—(सं०) दे०—करमी । [करमी+लत < कलम्वीलता]

करमोआ—(सं०) वह वस्तु, जो पूरी भीगी न हो (खासकर घस) —(चंपा-१, पट०-४, मग०-५) । [कर+मोआ, मोआ < मोआल (बिहा०) = (मिगोनासंज्ञ < √मिह (संज्ञना) वा < √मव (= बंधन) (?)]

कररुआ—(सं०) छोटे पत्तों वाला मोठा धान (प०, म०-२) । [कट्ट (१)]

करल—(वि०) करना, काम करना । मुहा०—खेती करल = खेती करना ।

करवानी—(सं०) दे० कड़वानी ।

करसी—(सं०)—(१) गोबर के स्वतः सूखे हुए टुकड़े, जिनका जलावन होता है (म०-२, चंपा० पट०-४ मग०-५ बाब०) । पर्या०—अमारी (ब० मु०, भाग०, गया; मग०-५, पट०-४) । (२) (प०) । दे०—खारदर । (३) गदहें की लीव (सा०-१) । [< *करीष]

करहनी—(सं०)—(१) छोट कर बोये जानेवाले ललगोंदिया धान का एक प्रधान भेद, जिसकी बाल काली होती हैं (पट०, पट०-४, मग०-५) । दे०—ललगोंदिया । (२) छोट कर बोया (बाबव) जानेवाला काली बालों-वाला उत्कृष्ट धान (ब० मु०, गया) । (३) छोटे काले दानोंवाले धान का एक प्रकार (ब०-५० शाहा०, सा०) । [कर+हनी < *काल+धान्य]

करहनी धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो पतला, काला और महीन होता है (पट०-१) । [कर+हनी+धान < कार*काल+धान्य]

करहा—(१)—(सं०) बड़े जलस्रोत या पन से

खेत तक जानेवाले जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (पट०, सा०, शाहा०)। दे०—पन। (२) पन से निकलनेवाली नाली। [< *कपू = नहर, गड्ढा (गड्ढा), ताल, आग। 'कपू' : पुमान् करीषामनौ स्त्रियां कुल्येष्टिखातयोः। (मेदि०)] (३) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प०, पट०, गया)। दे०—आरा। (४) नाली के किनारे को घेरनेवाली उठी हुई मेंड़ (शाहा०, पट०, गया)। दे०—मेंड़ [< *कपू = नदी, नहर, ताल] (५) कोल्हू के सामने बना हुआ लोहे का परनाला, जिससे होकर ऊँच का रस नीचे के बरतन में गिरता है। (ब० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—नाली।

कराई, कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी पकी दाल चिकनी होती है (पू० मं०)। दे०—उरिद। [< *कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय = (बं) = उड़द] टि०—पूर्वी मैथिली अथवा द० भाग० और द० मं० में उड़द को 'कराई' वा 'कलाई' कहते हैं तथा बंगला में भी 'कलाय' ही कहते हैं, किंतु संस्कृत में 'कलाय' का अर्थ मटर होता है।

कराम—(सं०) वह बड़ी मोटी और शंघ प्रकार की बनी रस्सी, जिसमें दोनों करने के लिए बेल बाँधे जाते हैं (पू० मं०)। दे०—मंझा। पर्या०—कड़ाम (बर०-१, पूर्ण०-१, मं०-२) कड़ाचि (चंपा०)। [देशी]

करार—(सं०)-(१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, द० मं०)। [मिला०—कराला = अनंत मूल, सारिवा] (२) काफी मजबूत जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी रहती है (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। दे०—केवाल [मिला०—]। सासर (संस्कृ०) = केवाल मिट्टी, कराल = कड़ा।

करारा—(सं०) नदी का लड़ा ऊँचा किनारा। पर्या०—अररा, अरार, अरारि, कड़ाड़, कड़ाड़ा, दाह (उ०) कंगनिया (उ०-पू० मं०)। [< *कराल = ऊँचा। कट। काटना हि०] + आर = (संस्कृ०) किनारा] - (हि० श० सा०)

करावल—(क्रि०) करल क्रिया का प्रे०। कराना, काम कराना।

कराह—(सं०) ऊँच के रस को उबालने का बरतन (सर्व०)। पर्या०—कड़ाह, कराहा।

(२) नमक बनाने अथवा नील आदि के रस उबालने के लिए प्रयुक्त लोड़े का बड़ा बर्तन। पर्या०—कड़ाह, कराहा, कराही। [< *कटाह]

कराह के घर—(सं०) चीनी बनाने का घर। दे०—चूल्हा के घर।

कराह घर—(सं०) नील उबालने का घर। [कराह + घर < *कटाहसूह]

कराहा—(सं०)। दे०—कराह। [< *कटाह] कराही—(सं०)—(१) (पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०, आज०) [कराह + ई] (२) दे०—कराह (प्रत्या० स्त्री० प्र०) < कटाह]।

करिंगवाह—(सं०) करीन चलानेवाला (पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करीन, दोनवाह।

[करिंग + वाह; मिला०—कलिज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिज = बाँस का एक पात्र-विशेष कलिजो वंस कप्परी, (पा० सं० मं०); कालिन्दी = एक पात्र-विशेष—(मो० वि० डि०)]

करिअंथा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (बर०, पूर्ण०-२, पट०-४, मग०-५, मं०-२)।

[करि + अंथा < करि < करि < *काल; अंथा < *आप्र]

करिआकामोद—(सं०) एक अगहनी लंबा काला घान, जिसके दाने महीन और चावल सफेद तथा सुगंध-युक्त होते हैं (सा०-१)। [करिया + कामोद; करिया < *कालक]

करिकंधा—(वि०)—(शाहा०)। दे०—करकंधा। [करि + कंधा < *काल + स्कन्ध, कालक ठवत्]

करिखा—(सं०) कालिब। करिखाइ हाँड़ी करिखाइ हाँड़िया = दुष्ट आँखों से फसल को बचने के लिए खेत में रखी जानेवाली हंडी। पर्या०—करखा, करखा (शाहा०), कारिख (गया), करखो (द० भाग०)। [करिखा (देशी), कालिख (हि०) कालाक (संस्कृ०)]

करिङवाह—(सं०) दे०—करिंगवाह।

करिनवाह—(सं०)—(पू०, पट०-४, चंपा०, मग०-५)।

करियवा—(वि०)—(१) काले वर्ण का पशु। दे०—कारी। (२) काले रंग का आम।

[करिय + वा (वि० प्र०) वा < वान् < मान् < मत्पू, वा < वर्य; करिय < कारी < काली]

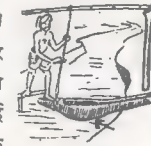
करिया—(वि०) दे०—कारी। [करिया < कारी < काली]

करिया, कारी—(सं०) काली उड़द (शाहा०, द० पू० मं०)। दे०—डंगा। [करिया < कारी < काली]

करिलत—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१)। [देशी]

करिंग, करीन—(सं०) लकड़ी, टिन या लोहे की बनी हुई एक नलिका जो

बीच में गहरी ऊपर खुली हुई तथा लंबी होती है और जिससे सिचाई का काम होता है। इसकी लंबाई सात से लेकर नौ हाथ तक तथा चौड़ाई करीब एक



करिंग

हंड फुट होती है (पू०, चंपा०, उ० विहा०, मग०-५, पट०-४, मं०-२, द० मं०-१)। दे०—दोन।

करीनवाह—करीन चलानेवाला। [मिला०—कलिज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिज = बाँस का पात्र विशेष "कलिजो वंशकपर्परी" (पा० सं० मं०), कालिन्दी (संस्कृत) = एक पात्र विशेष (मो० वि० डि०)]

करीङ—(सं०) दे०—करिंग।

करीन, करिंग—(सं०) - (पू०, बर०-१)। दे०—करिंग।

करिंगवाह—करीन चलानेवाला।

करुआइनी—(सं०) (१)—एक प्रकार का कीड़ा (चंपा०-१)। [(देशी), मिला०—कटुकोट, एक प्रकार का मच्छर (मो० वि० डि०)]। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी दातून अच्छी मानी जाती है, फली तीखी होती है और नजर आदि से बचाने के लिए बच्चों के गले में ताबीज की तरह पहनाई जाती है। [< *करंज (संस्कृ०), करंज, करंजवा, कठोपनी, डिठैरी (हि०), डहर वरंज (बं०), व्रज (जाचे (मरा०), कणभी (गु०), कंज (ते०), पंग (त०) पंगस (मल०)]

करुआ—(वि०)—(द० भाग०)। दे०—कारी। [कर + उआ (वि० प्र०) < काल, कालक]

करुआ तेलिया—(सं०) वह बेल, जिसकी पूँछ काली और अन्य अंग दूसरे किसी रंग के हों (पट०-१, मग०-५, पट०-४) [करुआ + तेलिया]

करुआर—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका गया टंडा पतला लोहा।

(चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)।

पर्या०—करुआरा (प०) करुआरी (पट०, चंपा०, प० (मं०), खूरा (द०-प० शाहा०),

जोक (पट०), जोकी, चोभी (द०-पू० मं०), गाँसी (उ०-पू० मं०), करुवार (आज०)। [(देशी), मिला०—कटर्कक (= तराजू के डंडे के दोनों ओर की मुड़ी किनारी, मुड़े हुए हाथ को मुद्रा, करुवार (हि०, देशी))] करुआरा—(सं०)—(प०)। दे०—करुआर।

करुआरी—(सं०)—(पट०, चंपा, प०-मं०)। दे०—करुआर।

करुना—(सं०) एक प्रकार का लट्टा फल, जिससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं (बर०-१)। दे०—करोना। [< *करमर्द]

करुवा—(सं०) वह बेल, जिसके पुट्टे, गर्दन और पूँछ चमकदार हों (पट०-१)। [करु + वा (प्र०) < कार < *काल]

करेयवा सीम—(सं०) तरकारी के काम में जानेवाली मटर की छोटी की तरह फलनेवाली सेम (पट०-१)। [करेयवा + सीम, करेय + वा (प्र०), करिय + वा < करिय + वा < कालिक; सीम < शिम्वि]

करैल—(सं०)—(बर०-१, पूर्ण०-१)। दे०—करैला।

करैल—(सं०)—(१) (उ० पू० मं०)। दे०—करैला [< *करावेल्ल] (२) कुछ नीली-काली मिट्टी (प०)। [मिला०—कासार (= केवाल मिट्टी; कराल (=) कड़ा, ऊँचा)]

करैला—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की कड़वी तरकारी। इस लता की पत्तियाँ पाँच



नूकीली फाँकों में कटी होती है, इसमें लंबे-लंबे आकार के फल लगते हैं। छिलके पर लंबे-लंबे छोटे-बड़े दाने उभरे रहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक बैसाखी, जो फाल्गुन में बयारी में रोपा जाता है और जमीन पर फैलकर फलता है। इसका फल कुछ पीला होता है। दूसरा बरसाती, जो बरसात में रोपा जाता है और झाड़ पर चढ़ता है। सालों-भर फलता-फूलता है। कहीं-कहीं जंगली करेला भी मिलता है, जो छोटा तथा ज्यादा कड़वा होता है। पर्या०—करैलो (शाहा०, ब० भाग०), करैल (उ०-पू० मं०, बर०-१, पूर्णि०-१)। करैल (बर०-१, पूर्णि०-१)। [$< *कर-$ वेल्स, (संस्क०), कारइल्ल (प्रा०), करेला (हि० पं०) करैलो (ने०), करला (बं०), कलरा (गो०), करेली (गु०, मरा०) करेलो (सि०), करिविल (सिहा०), करेल (कन्न०)]
करैली—(सं०)—(शाहा०, ब० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करैला। [$< *करवेल्स$]
करौंदा—(सं०) दे०—करौना।
करौना—(सं०) करौंदा, एक प्रकार का फल, जो छोटा, चिकना और स्वाद में खटा होता है। यह एक कंठीली झाड़ी में होता है (चंपा०-१, ग्रन्थ०)। पर्या०—कलौंदा, करौंदा—(पट०-४)। करना—(बर०-१)। [करमर्द (संस्क०), करमर्द (प्रा०), करवंदा, करौंदा, करौंदा, करौना (हि०) करमचा, करमिया (बं०), करवंद (मरा०), करमदा, करमर्द (गु०), करिजिगे (क०), करवंदे, वाक्ता (ते०), करवंदा (मरा०)]
कलंबक लेंबू (सं०) एक प्रकार का नींबू जो कुछ लंबा होता है (पट०-१)। [कलंबक+लेंबू $< कलंब$ (= शाक माल) + लेंबु]
कल—(सं०)—(१) वह यंत्र, जिसमें ऊख पेरा जाता है। मिल। दे०—कोलू। (२) मशीन, (३) शांति, आराम। [कला (संस्क०) = ग्रंथ, पुरजा, बिद्या, कला (पा० प्रा०), कल (हि०), कल (ने०, काश्म०, बं०), कल (ओ०, पं०, ल०) कल्प (= स्वस्थ, कुशल)]
कलउ—(सं०) बांगहर का भोजन (चंपा०-१)।

पर्या०—कलउआ (मग०-५, भाग०-१) [कल + उ $< कलेउ < कलेवा < *कल्यवर्त्त$]
कलउआ—(सं०)—(मग०-५, भाग०-१)। दे०—कलउ।
कलटरी—(सं०) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—मालगुजारी। [कलटर + ई (प्र०) $< *कलैक्ट$ (प्र०)]
कलम—(सं०)—(१) रोपने के लिए प्रस्तुत पान के नये-नये बीज के पोथे (पट०, गया, शाहा०)। पर्या०—बेल (ग्रन्थ०)। (२) आम अथवा किसी दूसरे पोथे का दूसरे के साथ मिलाकर पैदा किया गया उत्कृष्ट पोथा। पर्या०—कलसी। (३) लेखनी। [$< *कलम$]
कलम, कलमी—(सं०) नील आदि की दूसरी या तीसरी फसल, जो दूसरे वर्ष में उत्पन्न होती है। [$< *कलम$]
कलमकाठी—(सं०) मोटे और लंबे अगहनी धान का एक किस्म। इसका चावल सफेद होता है। (मुं०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—सिर-हंटी। (पट०-४)। [कलम+काठी]
कलमदान—(सं०) उजले रंग का एक उत्कृष्ट धान (पट०-१)। [कलम+दान $< *कलम$ + दान्य]
कलमबाग—(सं०) कलमी आमों का बगीचा।
कलमी, कलम—(सं०)। दे०—कलम।
कलमी आम—(सं०) गुण और आकार के अनुसार आमों की एक मुख्य जाति, जिसमें मालवह, बंबइया, फजली आदि भेद होते हैं। यह आम के दो पोथों के योग से होता है। (बर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, अन्य०)। [कलमी+आम; कलमी $< कलम$; आम $< आम्र$]
कलमी साग—(सं०) एक प्रकार का पत्तियों वाला साग, जिसके ऊपर का भाग तोड़कर भाजी बनाई जाती है और वह पोथा बढ़ता जाता है। [कलमी+साग]
कलस—(सं०)—(१) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पत्तलव (चंपा०-१) पर्या०—फुजजी, कन्नी, कनसी (पट०-४, मग०-५)। [मिला०—कन्दल = नया अंकुर]। (२) पानी रखने

अथवा निकालने के लिए पीतल, ताँबा, मिट्टी आदि का बना बरतन। पर्या०—कलसा, कलसी। (३) यज्ञ, पूजा आदि पर प्रयुक्त कलश, जिसकी मंत्रों से प्रतिष्ठा करके उसी पर देवताओं की पूजा होती है। [कलस (संस्क०), कलस (पा०, प्रा०) कलस, कलसा (हि०, गो०), कलह (अस०), कलहोटा (ल०), कलसियो (गु०) कलसा (मरा०)]
कलसा—(सं०) दे०—कलस—२।
कलसी—(सं०) दे०—कलस—२।
कलई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो रलेटी रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है, इसकी पकी हुई दाल चिकनी होती है (पू० मं०)। दे०—उरिद। पर्या०—कलाय (बर०-१)। [$< *कलाय$ (संस्क०) = मटर, कलाय (बं०) = उड़द]
कलाएल—(क्रि०) फसल की बाल बा दूढ़ होना (बं०-गु०)। दे०—हबसाएल। पर्या०—कइला-एल (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कल्प (सं०), कड़ा (हि०)]
कलेउ—(सं०) दे०—कलेवा। [$< *कल्यवर्त्त$]
कलेवा—(सं०) मध्याह्न का भोजन। पर्या०—कलेऊ, कलौ (मं०), खाय (पट०), खैया (गया), खाईक (बं० मुं०), कलौआ (बं० भाग०)। टि०—‘कलउ’, ‘कलउआ’, ‘कलेऊ’, ‘कलौ’, ‘कलेवा’ और ‘कलौआ’ शब्द ‘कल्य’ से संबद्ध हैं, जिसका अर्थ है—प्रातः कालीन प्राज्ञ, अरुण-प्रकाश अथवा प्रातः काल। [$< *कल्यवर्त्त$ = प्रातःकालीन भोजन]
कलौर—(सं०)—(१) प्र.त-वयस्क वाछी (पा०, प्राज०)। (२) पहले-पहल आसन्नप्रसवा गान (शाहा०-१, पं० चंपा०-१)। दे०—जोसर। [$< *काल्या$]
कलौजी—(सं०) एक सफेद अगहनी धान, जिसका दाना गठीला और चावल लाल होता है सा०-१, मग०-५)। [मिला० कलन्धु = एक प्रकार का पोथा (मो० वि० डि०)]
कलौ—(सं०)—दे०—कलेवा। [$< *कल्यवर्त्त$]
कलौआ, कलौवा—(सं०)—‘बं० भाग०, मुं०-१)। दे०—कलेवा। [$< *कल्यवर्त्त$]

कवछुपा सेम—(सं०)—(उ० बिहा०)। दे०—कवछ।
कवाछ—(सं०)—(१) सेम की जाति की एक फली। पर्या०—केंवाछ, भूपडेम (गया), कवछुआ सेम (उ० बिहा०), कवाँछ (पट०-४)। (२) एक प्रकार का जंगली पोथा। इसमें फल लगता है। इस फल के रेशे के शरीर में स्पर्श करने से जोरों की खजलाहट शुरू होती है तथा उस स्थान पर खजलाकर उस जगह से शरीर के दूसरे अंग को स्पर्श करने पर वहाँ भी खजलाहट मालूम होने लगती है। [कपिकच्छु (संस्क०); कवाछ, कवाच, कौच, क्रौच, कौछ, कैवाछ, क्रिवाछ, क्रिवाच (हि०), आलकुशी, आलाकुशी, शुवाशिबी (बं०), कुहिली, खाज कुहिली, कुहिलिये बीज, कपास कुहिली, काच कुहिली, कवच (मरा०), नसु कुशी, नसुकुशी (क०); चुलमुंडी पल्ली अड्डु, डलमुंडी (ते०); कवच, कौच, कठच, कनुच (गु०); पुनाइक काती, पुनाइक (ता०); कौच, कौनच (ने०); जुनी (पं०)]
कवाछु—(सं०)—(शाहा०-१)। दे०—कवाछ। [$< *कपिकच्छु$]
कवाछल—(क्रि०) तंग होना (मग०-५)।
कसइलिया—(सं०) कसली की तरह छोटा-छोटा फलनेवाला आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [कसइली + आ (प्र०) $< कसैली < कपायिल$]
कसमिरा—(सं०) एक प्रकार का पोथा, जिससे रस्सी आदि बनाने के लिए रेशे-जैसी चीज निकाली जाती है (उ०-पू० मं०, मग०-५)। दे०—सन। [देशी, मिला०—काश्मीरक]
कसर—(सं०) तोलने के बाद पूरक रूप में अतिरिक्त (कमी की पूर्ति में) अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (पा०, मं०-२)। दे०—पछुआ। [कसर (प्र०) = देहा, घाटा, हानि]
कसाई—(सं०) पशुओं का बध करनेवाला मनुष्य। [किसान लोग काम में दिलाई करनेवाले पशुओं को यों ही गाली देते हैं—‘जाह कसैया खूँटा’—(तुम कसाई के खूँदे

पर जाओ, अर्थात् जाकर काटे जाओ)।

[कसाई, कससात्र (अ०); मिला०-✓कस (हिंसाब)]

कसैया—(सं०) दे०—कसाई।

कसौजी—(सं०)—(१) छोरों पर अरुणाईलिवे ईषद् इवेत-रवत, एक मोटा अगहनी धान, जिसका चावल उजला और सुगंधित होता है। (२) चकवड़-जैसा, पीधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रवत होती हैं। [मिला०—कसौजी < कासमई (संस्कृ०) = चकवड़-जैसा एक प्रकार का पीधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रवत होती हैं। संभवतः यह धान भी ईषद् इवेत-रवत होने के कारण 'कसौजा' कहलाता है।]

कसौन्हा—(सं०) एक प्रकार का लाल अगहनी धान (बर०, पूणि०-१)। दे०—कसौजी। पर्या०—जड़हन (पट०-४)।

कस्तूरा—(सं०) एक प्रकार का पीधा। यह तीन-चार हाथ लंबा होता है तथा इसके फल काँटेदार होते हैं। जानवरों के 'लोहरहा' रोग में इसका डंठल गले में बाँधा जाता है (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—फरहद् (पट०-४, मग०-५)। [देशी]

कहरनी—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०, पूणि०-१, पट०-४)। [देशी]

कहार—(सं०) गाँवों में बसनेवाली एक जाति, जो खेती-बारी या नोकरी-चाकरी करती है।

[कहार < काहार (देशी), कहार (मरा०, हिं०, पं०), काहार (बं०), काहाल (ओ०), कहास (सि०)]

कहेरिया—(सं०) वह बेल, जिसका रूप-रंग चीते की तरह हो (पट०-१)। पर्या०—बघछल्ला

(सं०) [कहेरि + या < केहरी < *केसी]

काँकड़ि—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा फल, ककड़ी (बर०, पूणि०-१)। [^{*}कर्कटी]

काँकरि—(सं०) दे०—ककड़ी। [^{*}कर्कटी]

काँखी—(सं०) (१) तंबाकू या किसी पीधे के ऊपरी भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (ब० मं०, मग०-५, चंपा०, मं०-२, पट०-४, भाग०-१)।

दे०—बोंजी। (२) मकई से निकलनेवाले बाल का अंकुर (सा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०-१, भाग०-१)। [^{*}कण्ण्ड < *कण्णिकुर]

काँडल—(सं०) (१) धान के कटे पीधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [^{*}काण्ड = पुंज]

काँडल—(सं०) लाल से रौंदना (चंपा०-१)। [^{*}काँडल < *काँड]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ब० मं०, मं०-२)। दे०—मंडड़ा। [^{*}कटक]

काँच—(सि०)—(बर०-१, पूणि०-१)। दे०—कच्चा।

काँजोहाउस—(सं०) वह चिरा स्थान या बाड़ा, जहाँ दूसरे की फसल आदि चरनेवाले मवेशी बाँधे जाते हैं, मवेशियों का जेल। दे०—अड़गड़ा। [काइन (= काउ) + हाउस (अंग०)]

काँट—(सं०)—(१) एक प्रकार का कंटोला पीधा (चंपा०-१, मं०-२)। (२) किसी पीधे या फल आदि का मोकोला कड़ा भाग, जो गड़ता है। पर्या०—कंटा, कौंटा (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [^{*}कंटक]

काँटा—(सं०)—(१) तील करने का बड़ा तराजू। जिसमें ऊँख लौलने का यंत्र (बिह०, री०, हरि०, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—राटल (री०), रातल (ओ०, मग०)। (२) एक कंटोला पीधा (पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)। दे०—कंटा, काँट। [^{*}कंटक]

काँटाघर—(सं०) बीमी की मिल में वह घर, जिसमें ऊँख लौलने का काँटा रहता है (बिह०, री०)। पर्या०—रातलघर (सं०)।

[काँटा + घर]

काँड़—(सं०)—(१) चारे के लिए काटे गये जनेर के डंठल की एक राशि (ब० मं०, मं०-२)। दे०—गाँज। (२) ललिहान में राशिकृत फसल के बोझों का ढेर (चंपा०, पू०)। दे०—गाँज।

(३) वह रस्सी, जिसमें दोनी के लिए बेल बाँधे जाते हैं (चंपा०, गया)। दे०—मझा।

(४) मवेशी को दवा पिलाने का बाँस का चोंगा (मुं०-१)। [काँड़, वंशकाँड़]। (५) चूहे का बिल (चंपा०-१, मग०-५, मं०-२)।

[काण्ड = बोझा, बंडल, पुंज, काँडिन् = बिल (मो० सि० डि०)]

काँड़ल—(सि०)—(१) धान के कटे पीधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [^{*}काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(सि०) लाल से रौंदना (चंपा०-१)। [^{*}काँडल < *काँड]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ब० मं०, मं०-२)। दे०—मंडड़ा। [^{*}कटक]

काँड़ल—(सि०)—(१) धान के कटे पीधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [^{*}काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(सि०) लाल से रौंदना (चंपा०-१)। [^{*}काँडल < *काँड]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ब० मं०, मं०-२)। दे०—मंडड़ा। [^{*}कटक]

काँड़ल—(सि०)—(१) धान के कटे पीधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [^{*}काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(सि०) लाल से रौंदना (चंपा०-१)। [^{*}काँडल < *काँड]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ब० मं०, मं०-२)। दे०—मंडड़ा। [^{*}कटक]

काँड़ल—(सि०)—(१) धान के कटे पीधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [^{*}काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(सि०) लाल से रौंदना (चंपा०-१)। [^{*}काँडल < *काँड]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ब० मं०, मं०-२)। दे०—मंडड़ा। [^{*}कटक]

काँड़ा, काँड़—(सं०)—(१)—(चंपा०, गया)। दे०—मझा, काँड़ा। (२) मूँच का डंठल, जो घर छाने और टट्टी बाँधने के काम में आता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। (३) धान के पके हुए पीधों का पुंज या टाल (मुं०-१)।

(४) गोड़ाई। पर का एक बाभूषण (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [^{*}काँड़, < *कटक]

काँड़ी—(सं०)—(१) पशुओं को दवा आदि पिलाने के लिए बनी बाँस की नली (चंपा०, शाहा०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)।

पर्या०—ढरका (चंपा०, शाहा०)। [काँड़ + ई (ग्रन्था० स्त्री० प्र०)]।

[< *काँड़, < *वंशकाँड़] (२) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है (ब० मं०, शाहा०, भाग०)।

दे०—ओखरी। (३) चूहे के बिल का मूसल द्वार के अतिरिक्त एक गुप्त द्वार, जिससे होकर, कभी मोका पड़ने पर, निकल भागे (चंपा०)।

(४) हाथी के पैर का एक रोग। इसमें हाथी के पैर में छेद हो जाता है (चंपा०)। [काण्ड, मिला०—काण्डाल (= वेंट या तीक की ढाकी)]

काँधी—(सं०) कोल्हू के बेल के हुबड़ (कुबड़) पर का टाट का गद्दा (पट०-४)। [कन्धा; कन्ध; स्कन्ध]

काँनी—(सं०) दे०—कान्ही।

काँसी—(सं०) फसल को पुर्णतः हानि पहुँचाने वाली एक प्रकार की बस्त (ब० मं०, पट०, गया, ब० मं०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कन-सन। [काँस + ई (स्वा० प्र०) < *कास]

काउन—(सं०)—दे०—काऊन।

काउर—(सं०) धान की दोनी में पूजाक निकाल लेने के बाद बचा हुआ उसका महीन बंध (चंपा०-१)। [देशी]

काउन—(सं०) बाजड़े की जाति का, सूक्ष्म बानों-वाला एक अनाज (ब० मुं०)। दे०—टंगूनी।

पर्या०—काउन (बर०, पूणि०-१), कौबनी (बर०, पूणि०-१)। [कडगु]

काकुट—(सं०) चारा काटने का एक औजार (पट०-२, पट०-४, मग०-५)। [देशी]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छिलका पतला होता है (बर०, पूणि०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१)। [कागज + ई (अ०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट०-१)। दे०—कागजी। [कागजी + लेम्बो]

काग-बदन—(सं०) वह बेल, जिसका मुँह काला और शरीर उजला हो (पट०-१, पट०-४)। [काग + बदन < काक + बदन]

काक—(सं०) दलदल जमीन (सा०, मग०-५)। दे०—सील। पर्या०—कछुई साटी (पट०-४, मग०-५)। [^{*}कच्छ]

काकल—(सि०)—(१) पोस्ते की फली में से जफीन का उठाना या संग्रह करना (उ० पं०, उ० मं०, मं०-२)। दे०—उठावल। (२) किसी तरल पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पतली वस्तु से निकालना। [कषण]

काकल—(सि०) वह मवेशी, जो काम करते-करते रुक जाता है या बैठ जाता है। सुस्त होता है तथा काम से जी चुराता है (चंपा०-१)। पर्या०—कोढ़िया, कदराह (पट०-४, मग०-५)। [^{*}कल]

काटल—(सि०)—(१) तंबाकू या किसी पीधे के ऊपर का पत्ता काटना। दे०—पत्तातूल। (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना। (३) फसल काटना। पर्या०—लौनी करल (ब० मं०, शाहा०); छोलल (सि०) = ऊँख काटना (उ० मं०); गेंडा करल (पं०, पट०, गया, चंपा०, ब० मुं०); धूर काटल (ब० भाग०); पतौर पारल—ऊँख काटने की प्रक्रिया (ब० भाग०); कटनी, कटिया, लौनी—फसल की कटाई। कटनी = फसल के कटने का समय। [काटना (हिं०) < *कृती (छेदने)]

काड़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। पर्या०—काड़ी (स्त्री०) (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। दे०—पाड़ा। [^{*}कटाह; *कटाह: कूर्मकपर्परे १०० जायमान-विषाणाग्रमहिषीशावकेऽपि च ॥]—(मेवि०)]

काड़ी—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छिलका पतला होता है (बर०, पूणि०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१)। [कागज + ई (अ०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट०-१)। दे०—कागजी। [कागजी + लेम्बो]

काग-बदन—(सं०) वह बेल, जिसका मुँह काला और शरीर उजला हो (पट०-१, पट०-४)। [काग + बदन < काक + बदन]

काक—(सं०) दलदल जमीन (सा०, मग०-५)। दे०—सील। पर्या०—कछुई साटी (पट०-४, मग०-५)। [^{*}कच्छ]

काकल—(सि०)—(१) पोस्ते की फली में से जफीन का उठाना या संग्रह करना (उ० पं०, उ० मं०, मं०-२)। दे०—उठावल। (२) किसी तरल पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पतली वस्तु से निकालना। [कषण]

काकल—(सि०) वह मवेशी, जो काम करते-करते रुक जाता है या बैठ जाता है। सुस्त होता है तथा काम से जी चुराता है (चंपा०-१)। पर्या०—कोढ़िया, कदराह (पट०-४, मग०-५)। [^{*}कल]

काटल—(सि०)—(१) तंबाकू या किसी पीधे के ऊपर का पत्ता काटना। दे०—पत्तातूल। (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना। (३) फसल काटना। पर्या०—लौनी करल (ब० मं०, शाहा०); छोलल (सि०) = ऊँख काटना (उ० मं०); गेंडा करल (पं०, पट०, गया, चंपा०, ब० मुं०); धूर काटल (ब० भाग०); पतौर पारल—ऊँख काटने की प्रक्रिया (ब० भाग०); कटनी, कटिया, लौनी—फसल की कटाई। कटनी = फसल के कटने का समय। [काटना (हिं०) < *कृती (छेदने)]

काड़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। पर्या०—काड़ी (स्त्री०) (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। दे०—पाड़ा। [^{*}कटाह; *कटाह: कूर्मकपर्परे १०० जायमान-विषाणाग्रमहिषीशावकेऽपि च ॥]—(मेवि०)]

काड़ी—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काड़ा—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटाह]

काढ़—(सं०)—(१) हरिस में पानी बँवों के लिए हरिस के नीचे की ओर का काड़ा हुआ अंग। दे०—खेड़ा। (२) दे०—काढ़। [काढ़ < *वर्ष < *कृष्] काढ़ा—(सं०) (१) कतरी के अंत में एक पक्कड़ से बँधी हुई रस्सी, जो बेल के कुवड़ (कुवड़) से होकर फिर कतरी के एक छेद से बाँधी जाती है। (२) दे०—खेड़ा। (३) बँधे हुए पानी के निकास के लिए छोड़ी गई नाली। पर्या०—कनभो (सं०-१)। [< *वर्ष, < *कृष् < *कृष्] कातर—(सं०) ऊँख के कोल्हू का वह समतल तल्ला, जिसपर बेल हाँव से ढाला बैठता है। पहले चौड़ा तल्ला होता था, किन्तु आजकल बीम-जंजी गोल लम्बी लकड़ी लगी रहती है। दे०—कातर। [का + तर < *काए + तल, कर्त्तु = काटनेवाला (हि० श० सा०)] कातर—(सं०)—(शाहा०, ब०-पू० सं०, ब० भाग०, ब्राज०)। दे०—कतरी। [का + तर < *काएतल, कर्त्तु = काटनेवाला (हि० श० सा०)] कातरि—(सं०)—(१) ऊँख के कोल्हू का वह समतल तल्ला, जिसपर बेल हाँकनेवाला बैठता है। आजकल बीम जंजी गोल लंबी लकड़ी लगी रहती है। पर्या०—कातर, कातरि। (२) (शाहा०, ब०-पू० सं०, ब० भाग०)। दे०—कतरी। [का + तरि < *काएतल] कातिक—(सं०) कातिक, भारतीय वर्ष का आठवाँ और शरद-रतु का अंतिम महीना (प्रवृत्ति के अंत के और नवम्बर के आदि के प्रायः १५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः कृत्तिका नक्षत्र हुआ करता है, अतः कातिक नाम पड़ा। [*क्रात्तिक < कृत्तिका < कृत्ति < *कृत्ति (छेवने) + कृष्ण (प्र०)] कादो—(सं०)—(भोज०)। दे०—कदो। कादो—(सं०)—(१) धान रोपने के लिए खेत को पानी से भरकर इस प्रकार जोतने की प्रक्रिया, जिसमें धास-पात न रहने पावे, जमीन खूब गीली तथा मुलायम हो जाय एवं पौधे आसानी से रोपे जा सकें (उ०-प०, सं०)। दे०—लेव। (२) वह कीचड़, जिसमें धान की

फसल होती है। पर्या०—कदोई, कदई। (३) कीचड़ (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कादो, कानो (भोज०)। [< *कदम] कादो करल—(मुह०) धान की बोआई के लिए खेत को तैयार करना। पर्या०—कदुवा करल, लेव बरल (सा०), मसाह करल (चंपा०)। [कादो + करल < कदमी + < *कृ] कान—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कान्ह। [< *काएड, < *कए, < *स्कन्ध] कान, काना—(सं०) हँकुल के रतम के ऊपर की शाखा, जिसपर हँकुल लटकता है। पर्या०—काना, कानी, कजा, कजी, दुकानी, दोकानी (चंपा०, ब०-पू०)। [< *काएड, < *कए, < *स्कन्ध] कानर—(सं०)—(१) वह पहला उठान या जल-शय, जहाँ करीन आदि से पहले पहल पानी गिराया जाता है (उ०-पू० सं०)। (२) वह कच्चा कुम्हा, जिसको बांस की पट्टी या तल के पत्तों से बने घरे से बांध दिया जाता है, जिसमें कि मिट्टी नीचे गिरने न पावे। वह घेरा डोल कहलाता है (मग०-५)। (३) खेत में अथवा नदी के किनारे नदी के पानी से संबद्ध छोटा गया छोटा कुआँ (पट०-४)। [< *कानर (?) स्कन्ध] काना—(सं०)—(१)—(पट०, सं०, ब० सं०, चंपा०-१)। दे०—कनवा। [देशी] (२)—(सं०, पट०, पू०)। दे०—कनवा। (३) कोड़ा लगा हुआ ऊँख का पौधा (पट०)। दे०—सीना। (४) दे०—कान। (५) कनहा—(वि०) वड़ फल जो भीतर से सड़ा हो (सं०-१)। [< *काए, कए, स्कन्ध] कानी, कजा—(सं०)—(१) कुएँ के ऊपर लगे खंभे की एक शाखा (नोक), जिसपर घिरनी चलती है। (२) कौपल, पेड़-पौधों की नई शाखा (सं०-१, पट०-४, मग०-५) मुता०—कानी निकलल या फूटल—नई कौपल निकलना, नई शाखा निकलना। [< *काएड, < *स्कन्ध] कानी, कजी—(सं०)—(पट०-४, मग०-५ सं०-२)। दे०—कान। [< *काएड, < *स्कन्ध] कानी हाउस—(सं०) दे०—कानी हाउस, अड़गड़ा।

कान—(सं०)—(१) कोल्हू के लिए ऊँख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (ब० सं० सा०)। टि०—ऊँख को काटकर पेरेने की प्रक्रिया पहले थी। लोहे के कोल्हू का प्रचलन होने पर आजकल तो समूचा ऊँख कोल्हू में लगाया जाता है। पर्या०—पटवाह (चंपा०), गेड़िकाटा (ब०), अंगरवाह (प०), टोनकट्टा (कहीं-कहीं), टोनि-कट्टा (ब०-प० सं०), मजुरा (उ०-प० सं०), जन (उ०-पू० सं०)। (२) एक विशेष जाति, जो भूँजा भूने का व्यवसाय करती है। पर्या०—कनुइन, कनुनियो, कानुन (स्त्री०)। [< *कान्दविक < *कन्दू] कानो—(सं०) कोड़ा लगा हुआ ऊँख का पौधा (ब० भाग०)। दे०—सीना। कानो—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादो। [काए, कदम] कानो-किचचड़—(सं०) किसी पोखरे के तल की पकिल जमीन (प०)। दे०—तरी। [कानो + किचचड़, < कादो + कीचड़ (हि०) < *कदम + कचड़] कान्ह—(सं०)—(१) ऊँख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन (जाठ) के मूँड़ के ऊपर का बटा हुआ भाग। पर्या०—कंधा (सं० उ०, पट०), कन्हिया (उ०-प० सं०), पंजा (ब०-पू० सं०), कान या लोंगरा (शाहा०), मोहनथम्भा (गया), डेका (ब० सं०)। (२) कोल्हू के जाठ (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। कंधा। [< *काएड, < *स्कन्ध] टि०—आजकल ऊँख पेरेने के लिए लोहे के कोल्हू के प्रचलन के बाद तेल के कोल्हू की तरह उस कोल्हू में जाठ आदि नहीं होते हैं, बल्कि सभी पुरजे लोहे के होते हैं। कान्दी—(सं०)—(१) ऊँख के रोपने में प्रयुक्त दो हलों में से पिछले हल में चारों ओर से बँधा हुआ धास का बंडल, जो हल से बिये गये बटाव (सिराउर) को विस्तृत करता है (प०)। पर्या०—कान्नी, कान्ही के हर। (२) पोखर या नदी का सड़ा किनारा (चंपा०-१)। [< *स्कन्ध, < *काए] कान्ही के हर—(सं०)—(प०)। दे०—कान्ही। [कान्ही + के + हर]

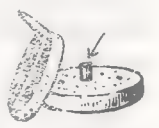
काविल लगान—(वि०) वह जमीन, जिसकी मालगुजारी लगती है, लगान लगने के योग्य। (सा०-१)। [काविल + लगान] काविस—(सं०) लाल मिट्टी (ब० प० शाहा०, ब्राज०)। दे०—ललकी मिट्टी। पर्या०—गाविस (चंपा०, सं०-२)। [< *कपिष] कामत—(सं०)—(१) घर से दूर की जमीन की देखभाल और व्यवस्था के लिए उसी स्थान पर बनाई गई छावनी, जहाँ किसान या उसका प्रतिनिधि, माल-मवेशी और खलिहान आदि होते हैं। एक तरह की जिरात या जामीर की जमीन (सा०-१)। [संभ०—< *कमान—(नेपा०), < कमाना (हि०)?] कामती—(सं०) खेत खलिहान में मजदूर से काम करानेवाला दमादार (ब० सं०)। [कमाना (हि०) < *कर्मन्] कामदार—(सं०) मिल में नियुक्त वह कर्मचारी, जो मिल की ओर से गाँवों में घूम-घूमकर कृषकों को विशेष ऊँख का प्रचार-प्रसार, उसके गुण, खती का प्रकार, कोढ़नी सिचाई और खाद डालने आदि का ढंग सिखलाया करता है (सी०, मग०-५)। [काम (हि०) + दार (फा० प्र०)] कारपरदाज—(वि०)—(१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—लपरदार। (२) अदालत में जाकर अपना या किसी दूसरे का मुकदमा देखनेवाला व्यक्ति (मग०-५, अन्यत्र भी)। [कार + परदाज (फा०); मिला०—कार < कार्य] कारावोगहा—(सं०) छोटकर (बाबग) बोया जानेवाला निकुष्ट प्रकार का कासा वन (पट०)। दे०—ललगोदिया। [कारा + वोगहा, कारा < काल; वोगा (संभ०) < वावग] कारी, करिया—(वि०)—(१) बाली उड़द (शाहा०, ब०-पू० सं०)। दे०—डंगा। (वि०) काला, काले वर्ण का अनाज, पशु आदि। [करी < काली < *काल] कारीबाँक—(सं०)—(१) एक उत्कृष्ट कोटि का धान, जो काले रंग का होता है और जिससे विशेष प्रकार की सुगंध निकलती है (पट०-१, पट०-४, *मग०)। (२) रोपा जानेवाला

एक प्रकार का धान (२० मं०) । [कारी + वॉक < कारी < काल; वॉक < वंक < वक्र]
 कारू—(सं०) एक प्रकार की घास (२०, पूर्ण०-१, भाज०) । [देशी]
 काला—(सं०) काली उड़द (गया) । दे०—डंग ।
 (वि०) काले वर्ण की वस्तु । [< *कालक]
 कालाकंद—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।
 पर्या०—कलाकंद (मग०-५) । [काला + कंद < *कलाकंद (?)]
 कालागीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (उ० पू० मं०) । दे०—अवाल-वीर । [देशी (?) , मिला०—कालगिरि]
 कालापहाड़ आम—(सं०) एक प्रकार का आम । यह बड़ा और काला होता है (पट०-१, चंपा०) । [काला + पहाड़ + आम]
 काश्तकार—(सं०) दे०—असामी । [काश्त + कार (फा०) ; मिला०—कास (संस्क०) < √ कृ]
 काश्तकारी—(सं०) वह जमीन, जिसकी लगान जमींदार को देकर उसपर स्वत्व प्राप्त किया गया हो (सा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१, चंपा०) । [काश्त + कार + ई (प्र०) (फा०)]
 कास—(सं०)—(१)—(शाहा०, उ० वि०) । दे०—कनकन । (२) शरद् ऋतु में फूटने-वाली एक प्रकार की कुश की जाति की घास । [काश, कास]
 कासचराई—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मं०, पट०, पू०, मग०-५) । दे०—खरचरी । [कास + चराई]
 कासनी—(सं०) एक प्रकार का पोषा, जिसका उपयोग औषधों में होता है । [कासनी (फा०)]
 काहचराई—(सं०)—(मं०, पट०, पू०) । दे०—खरचरी । [काह (फा०) + चराई (हि०) < चराना; काह < कास (संस्क०)]
 काहू—(सं०) एक प्रकार का पोषा, जिसका बीज औषधों में प्रयुक्त होता है (पट०, गया, मग०-५) । [फा०]

किआली—(सं०)—(१) गाड़ीवानों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क (उ० पू० मं०, चंपा०) । (२) अन्न-विक्रेता की तोल पर निर्धारित कर । पर्या०—केयाली, चरदाना (पट०) । टि०—कभी-कभी, गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ-जहाँ रात बिताते थे, वहाँ-वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था । [देशी]; मिला०—किराट = बनिया (मो० वि० डि०)]
 किचराइल—(फि०)—(१) आकाश में यत्र-तत्र भेष का नजर आना (चंपा०-१, पट०-४) । (२) आँख से कीचड़ निकलना (चंपा०-१) । [किचर + आइल (प्र०) < कीचड़ (हि०)]
 किछार—(सं०) नदी या पोखरे का किनारा (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) । [किछार < कछार < *कच्छ]
 किता—(सं०)—(१) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग (पट०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१) । दे०—खंघ । (२) भू-स्वामी का गाँव में बिखरा हुआ खेतों का प्रत्येक टुकड़ा । दे०—खलता । [कत (प्र०)]
 किनल—(फि०) खरीदना । दे०—कीनल । [क्रयण < √ क्री (= क्रीणाति), किनाति (पा०), क्रिम्ई (प्र०), किनना (हि०), किन्नु (ने०), किना (बं०), किनिवा (ओ०), कनुन (कदम०), किनेल (रोमा०)]
 किनावल—(फि०) किनल किया का प्रेरणार्थक । खरीदवाना ।
 किनार—(सं०) नदी आदि का किनारा ।
 कियारा—(सं०) ऊँख के खेत में बनी हुई कियारी (पू० मं०) । दे०—हातावाला । [< *केदार]
 कियारी—(सं०) (१) सींचने या बोनो आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े । पर्या०—घड़ारी (चंपा०), गँड़ारी (पट०, बं०-पू०), गँड़ारी (गया) । (२) खेत पटाने के लिए खेत में बनी हुई नाली (बिहा०, भाज०) । कियारी ।
 पर्या०—केआरी (बं० भाग०) । [< *केदार]



कियाल—(सं०) अनाज की तोल-जोख करने-वाला (पू०-१) । [मित्रा—किराट (रा० त०) = बनिया । मिला०—काकिनी—“काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटेके”—(मेदि०)]
 कियाली—(सं०)—(१) गाड़ीवानों द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क (उ० पू० मं०) । (२) अनाज आदि तोलने का काम या उसकी मजदूरी (बं० मं०-१) । (३) अन्न-विक्रेता की तोल पर निर्धारित कर । पर्या०—केयाली, चरदाना (पट०) । टि०—कभी-कभी गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ रात बिताते थे, वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था । [देशी०], मिला०—किराट (रा० त०) = बनिया, काकिनी—“काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटेके”—(मेदि०)]
 किराइल—(वि०) कीड़ा लगा हुआ (सा०-१) । पर्या०—खराब, पिलुआइल, घुनाइल । [किर + आइल (प्र०) < *कीट]
 किराइल—(फि०)—(१) कीड़ा लगना (चंपा०-१) । [किरा + इल (प्र०) < कीट]
 किराना—(सं०) पसरहट्ट की वस्तुएँ, फूटकर विक्रय-वार्थ (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) । [< *कीर्ण]
 किराया—(सं०)—(१) जमींदार की ओर से अन्नविक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (गया) । दे०—कौड़ी । (२) किसी वस्तु या मकान आदि का भाड़ा । [आ०]
 किौना—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि पर प्रहार करता है (बं० पू० शाहा०) । दे०—गाँधी या गंधी । [किर + औना (प्र०, देशी) < *कीट]
 किरीयों—(सं०) एक प्रकार का अन्न (बर०, पूर्ण०-१) । [देशी]
 किरी—(सं०) मकई, मटर आदि का अधफुटा चबूना । पर्या०—बजड़ी (पू०-१, मग०-५, भाग०-१), दुर्गी, ठोरी (पट०-४, मग०-५, चंपा०, मं०-२) । [(देशी), मिला०—खिल (संस्क०)]

किल्ला—(सं०)—(१) (बं०-पू० मं०) । दे०—अखोता । (२) पानी पटाने के काम में आने-वाले लाठे के पिछले भाग के अंत में लगी कोल, जिसके सहारे मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, बं०-पू०, पट०-४, मग०-५) । (३) मवेशियों को बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना छोटा स्तंभ (खूँटा), जो जमीन में गड़ा रहता है । दे०—खूँटा । (४) जाँता के दोनों पाटों के बीच के छेद में लगा खूँटा । (५) कुम्हारों के चाक की धुरी (प०, पट०-४, चंपा०, मग०-५) । दे०—कीला ।

 किल्ला [< *कील, < *कीलक (संस्क०), कील (पा०, प्रा०), कील, किल्ली (हि०), किलो (ने०), कील (बं०), कीला (मो०), कीलिया (ओ० फि०) = कील ठोंकना; कीर, कीरा, कीरी (सि०), कील्ला, कील्ली (पं०), किल्ल, किल्ली (ल०), कीली (गु०), किल्ली, कील (मरा०), क्युलु (काश्म०), किलो (रोमा०)]
 किल्ली—(सं०)—(१) लकड़ी की कोल या खूँटी, जिससे मोटा रस्सी में बाँधा जाता है । पर्या०—गुल्ली । [कील, कीलक] (२) कूँड़ में बार-बार लगी हुई फट्टी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है । पर्या०—गुल्ली, रनकिल्ली, पुल्ली (बं० भाग०) । (३) एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर 'कड़हड़ी' को कसे रहता है । दे०—फरकिल्ला । [कील, कीलक, कीला]
 किसन अरपन—(सं०) कृष्ण की पूजा के निमित्त अर्पित कर-युक्त भूमि । दे०—संरूप । [किसन + अरपन < *कृष्णार्पण]
 किसमिस—(सं०) एक प्रकार का सूता और मोटा मेवा, जो अंगूर को सुखाकर बनाया जाता है । यह कश्मीर, बलूचिस्तान, पाकिस्तान के पश्चिमी सीमांत प्रदेश और अफगानिस्तान के इलाके में होता है । [किशमिश (फा०)]
 किसमिसिया—(सं०) वह रंग, जिसका रंग किशमिश की तरह हो (पट० १) । [किसमिस + इया (प्र०) < किशमिश]

किसान—(सं०) कृषि-कार्य करनेवाला, खेती-बारी करनेवाला । [कृषाण, कृषाणु (सायण); किसान (हि०, सं०), किसान, मरा०), किसान (ने०), मिला०—कस (सिहा०) < कर्षण]

किसानी—(सं०) किसान का काम ।

किसुनपख—(सं०) चांदमास के पंद्रह दिनों का एककालिक परिमाण, जिसमें चंद्रमा की कला घटती रहती है, कृष्णपक्ष । दे०—पख ।

[किमुन+पख, पच्छ < *कृष्ण-पक्ष]

किसुनपच्छ—(सं०) दे०—किसुनपख ।

किसुनभोग—(सं०) एक प्रकार का आम, जो बड़ा, कुछ गोलाकार और गुद्देदार होता है (पट०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, भाग०-१) । [किमुन+भोग < *कृष्ण भोग]

किसोरी—(सं०) एक जंगली फल, जिसकी तरकारी होती है (पट०-१) । पर्या०—केसौरी (मग०-५) । [देशी, मिला०—किसोर (१)]

किस्त—(सं०) निश्चित मुनाफे के साथ निश्चित समय पर दिये जानेवाले कर्ज का कुछ निश्चित अंश । पर्या०—किस्तबंदी । [किस्त-(अ०)]

किस्तबंदी—(सं०)—दे०—किस्त । [किस्त+बंदी < किस्त (प्र०)+बंदी (का०); मिला०—वंद < वंध (सरह०)]

कीच—(सं०)—(१) किसी पोखरे के तल की गीली जमीन (साहा०) । दे०—तरी । (२) जल के नीचे की वथवा जल सूख जाने पर की गीली मिट्टी । (३) गीली मिट्टी, कादो, पंक । [कीच < कीच, < कीचड़ (हि०) < *कचड़]

कीनल—(कि०) खरीदना (सा०-१, चंपा०-१, दे० ५०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, भाग०-१) । दे०—कीनल । (वि०) खरीदा हुआ । [क्रयण < *क्री]

कीरी—(सं०) कृमि का एक भेद (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) । पर्या०—कीरी (दे० भाग०) । [< *कीट < *किरी (संस्क०), कीट, कीटक (पा०), कीड, कीडअ (पा०), कीड़ा, कीड़ी (हि०, सं०, ल०), कोड़ो, कोड़ी (गु०), कीड़ा, किरा (ब०), कीड़ (मरा०), किरों (ने०, कुमा०), कीरी (सि०), किरी (रोमा०)]

कीरो—(सं०)—(दे० भाग०) । दे०—कीरी । [< *कीट, < *किरी]

कील—(सं०) घुरी के अंत में पहिये के बाद लगी हुई कील, जो पहिया को गिरने से बचाती है (साहा०) । दे०—घुरकिल्ली । [< *कील, < *कीलक]

कीला—(सं०) चाक की घुरी, पर्या०—विल्ला (पा०, दे०-४, मग०-५), खूटी या खुट्ट (गु०), सिल्ला (दे० भाग०) । [< *कील, < *कीलक]

कुआ—(सं०) जल की प्राप्ति के लिए खोदा हुआ गोलाकार गहरा गड्ढा, जिसमें जल रहता है (चंपा०-१) । [कूप]

कुंजड़ा—(सं०) तरकारी बेचनेवाले मुसलमानों की एक जाति (पट०-४, मग०-५, मै०-२, चंपा०, भाग०-१) । पर्या०—कुजड़ा (दे०-१, पूर्णि०-१) । [कुंज+ड़ा (प्र०)]



[कुंज+ड़ा (प्र०) < *कुञ्ज = निकुञ्ज, < *कुञ्ज < *कुञ्जिका = गुंजा, सोया-जाति का शाक (मो० वि० डि०) । काजी (मरा०), काजियों (गु०); < कचड़; मिला०—कुंज (का०)]

कुंड—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेटा जाता है (गु०) । दे०—खान । [कुण्ड]

कुंडमुंदन—(सं०) बावग के अंतिम दिन का एक उत्सव, जिसमें किसान खेतों में से थोड़ा-सा बचाकर बीज लाकर एक कूंडे में डाल देता है, तत्पश्चात् अनेक प्रकार का भोजन तैयार कराता है और सभी लोगों के साथ मिलकर खाता-पीता है । पर्या०—कुंडमूनन, हर-सोधन (चंपा०) । [कुंड+मुंदन < कुंड+मुद्रण]

कुंडमूनन—(सं०)—दे०—कुंडमुंदन । [कुंड+मूनन < कुंड+मुद्रण]

कुंडा—(सं०)—(१) वह बरतन, जिसमें ऊख का रस चूता है (साहा०, पा०-मै०, पट०, पट०-४) । दे०—खोर । (२) चावल की महीन मूसी । [कुण्ड]

कुंडा—(सं०) चावल की महीन मूसी । [कुण्ड]

कुंडिया चास (१) (सं०)—कुएँ से पटाई जाने-वाली भूमि (दे० भाग०) पर्या०—मोटवाही (पा०) । [कुंडिया+चास; कुंडिया < *कुंड; चास (देशी)]

कुंडियाटी—(सं०) (पा० उ०) । दे०—कनेटी । [कुंडिया+टी, आठी (प्र०); यथा—भुजनाठी = भूजने की सीकों का बंडल यथा लुकाठी । अथवा ठी, आठी < *आवेष्ट, ग्रंथि]

कुंडी—(सं०)—दे० कूंड ।

कुंडी—(सं०) (१)—हंकुल (लाठा) में लगा हुआ, पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र । दे०—कूंड । (२) हेंगा खींचने के लिए रस्सी की जगह पर काम में लाई जानेवाली बांस की लग्गी (दे० सं०) । पर्या०—बंसजोसी (दे० भाग०), झरौआ । (३) किवाड़ के दोनों पट्टों को बंद करने के लिए सिकड़ी लगाने के निमित्त चौकट में जड़ी कील । [(देशी) मिला०—कुंडी (हि०), < *कुण्ड]

कुंद—(सं०) चंपा की जाति का एक फूल, कुमुद (दे०-१, मग०-५) । [< *कुंद]

कुंदरी—(सं०) तरकारी के काम में जानेवाली एक फली (मै०-१, पट०-१, पट०-४ मग०-५, मै०-२, चंपा०, भाग०-१) । [कुन्दरु]

कुआँ—(सं०) गहरा खोदा हुआ गोलाकार (कच्चा या पक्का) गड्ढा, जिससे पानी निकाला जाता है । (बिहा०, आज०) । दे०—कुआँ । [कूप]

कुआर—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ तथा शरद ऋतु का पहला महीना । (अधिकतर सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५ दिन) । दे०—आसिन । [कुमार (?)]

कुआरी—(सं०) आश्विन में काटा जानेवाला एक धान । पर्या०—असनी (पट०-४, मग०-५) । [कुआर+ई (प्र०) < कुमार (?)]

कुइयाँ—(सं०) दे०—कच्चा । [कु+इयाँ (अल्पा० स्त्री०) < कुआँ+इयाँ < *कूप]

कुकरौधा—(सं०)—(१) एक पशु-खाद्य घास । हमका दवा में भी प्रयोग होता है (पट०-४, मग०-५, मै०-२) । [कुकरु+औधा < *कुक्कुरदु]

कुकाठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर ऊख काटा जाता है (पट०) । दे०—निसुहा । पर्या०—कुकाठी (पट०-४) । [कु+काठ < काष्ठ]

कुकाठी—(सं०)—(पट०-४) । दे०—कुकाठ । [कुकाठ+ई (प्र०)—(देशी) वा < कुकाष्ठ (?)]

कुकुटी—(सं०) कपास में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (सा०, सं०) । [(देशी), मिला०—कुरुरु = एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०)]

कुकुरौना—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१) । दे०—कुकुरौवा । [कुकुरौना < कुकुरौवा < *कुक्कुरदु]

कुकुसा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (दे०-पा० साहा०) । [(देशी), कु+कुसा < कुसा (?)]

कुकुदी—(सं०) हेमन्तऋतु के अनाज को नष्ट करने-वाला एक कीड़ा (उ०-पा०) । [< *कुक्कुमी]

कुक्षा—(सं०) कच्चे आम को कुँच कर बनाया हुआ अचार या खटाई (पट०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, दे० भाग०) । [कूचल (बिहा०), कूचना (हि०) < *कुट्ट (?)]

कुटकटना—(सं०) लकड़ी का कुंदा, जिसपर गेंडासी से चारा काटा जाता है (मग०-५) । दे०—ठेहा । [कुट+कटना < कुट < कुटी; कटना < काटल (बिहा०) < काटना (हि०)]

कुटका—(सं०)—(१) भारतीय फसल (मकई आदि) का डंठल (पा० उ०) । दे०—डॉट । (२) विभिन्न जड़ी-बूटियाँ, जिनसे प्रसूता के लिए पौष्टिक औषधि बनाई जाती है । (दे०-१) । [कुटका = डंठल, काण्ड—(मो० वि० डि०)]

कुटकी—(सं०) अन्न के पीछे की डाँठ का छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१, मै०-२) । [कुटका+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < कुटका]

कुटकुर—(सं०) सूखी हुई जमीन (साहा०-१) । [देशी]

कुटरी—(सं०)—(दे० भाग०) । दे०—कुटरी । [√कुट्ट वा < *कृत् < *कृती (छेवने)]

कुटिया—(सं०)—(१) घास, फसल की डंठल आदि का कटा हुआ पशुओं का महीन खाद्य (दे० भाग०) । दे०—कुटरी । [कुट्टी < कुट्टित < *कुट्ट, कूट, वा < *कृत् < *कृती (छेवने)] (२) खर-पात की बनी शोपड़ी, साधुओं का मठ । [कुट+इया (प्र०) < कुटी]

कुटियावल—(कि०) घास-पात काटकर कुट्टी

बनाना (सं०-१, भाग०-१)। [कुटिया+आवल
< कुट्टी < √ कुट्, वा < *कृत् < √ कृती
(छेदने)]

कुट्टी—(सं०) घास या फसल की डंठल आदि का
काटा हुआ पशुओं का नहीं खाद्य। पर्या०—
कुटिया, कुटरी (द० भाग०), कट्टा (पट०),
लेदी (चंपा०)। [< √ कुट् वा < *कृत् <
√ कृती (छेदने)]

कुठाँव—(सं०) दोनी करने के बाद ओसाने के
लिए रखे हुए मूसा और अनाज मिले हुए अन्न
की राशि (पट०, उ०-प० बिहा०)। दे०—
सिल्ली। [देशी, मिला०—कूट=अन्न की
राशि]

कुड्डिया—* (सं०) ऊख या तेल के कोलू में
लगे जाठ के ऊपर घूमनेवाले टेढ़े भाग और
कतरी से लगा हुआ बाँस का टुकड़ा। दे०—
खरचाड़ी। [< *कुंड, < *कुंडल (संस्क०),
कुंडी (हि०)]

कुड़—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[(देशी), मिला०—कुड़ (हि०) < कूट=
अन्न की राशि, कुट=आपधि]

कुड़दहिना—(सं०)—(१) हँगा में बाईं ओर में
बहनेवाला बेल। दे०—पंचोत। [कुड़+
दहिना; कुड़ (प्रा०), कुट (संस्क०) =
हाथी वगैरह के बाँधने की रस्सी। कुटक, कूट
(संस्क०), हल, विना हरीस का हल।
दहिना < दक्षिण] (२) मेंह के पास घूमने-
वाला समूह का सबसे छोटा और दुबल बेल
(गया)। दे०—मेंहियाँ बेल। पर्या०—
मेंहों (चंपा०)। [कुड़+दहिना, मिला०—
कुंडल=रस्सी का बना गोल घेरा; कुंड
(प्रा०), कुट (संस्क०) = हाथी वगैरह के
बाँधने की रस्सी (पा० सं० म०); दहिना
< दक्षिण]

कुड़हरि—(सं०) कुल्हाड़ी (दर०, पूर्णि०-१)।
पर्या०—टेडारी (म०-२, चंपा, पट०-४), टेंगारी।
टंडुली (मग०-५, चंपा०)। [< *कुठार]

कुड़ि—(सं०) लकड़ी का बना पानी पटाने का
एक साधन (दर०-१)। [कुंड]

कुड़ी—(सं०) दे०—कुड्डी।

कुड़ी—(सं०) अन्न आदि की रखी हुई छोटी-
छोटी राशि या ढेर। पर्या०—कुड़ी (पट०-४),
कुड़ी (चंपा०, म०-२, पट०-४)। [< *कूट
(संस्क०), कुड़ (हि०)]

कुत—(सं०) कूतने की प्रक्रिया।

कुतल—(क्रि०)—(१) खेत की फसल के परि-
माण करना और मूल्य का निर्णय करना, कूतना
(दर०-१)। पर्या०—कन करना। (२)
किसी वस्तु का मूल्यांकन करना। [मिला०—
√ कुत=पैलना (मो० वि० डि०), कुत (प्रा०)
=किराया। कूतना (हि०), कूत (कुमा०)
या कुत (ने०)=जमीन को लगाना।
कुत (मो०)=किराये पर देना]

कुतूरुम—(सं०) सन की जाति का एक पौधा,
जिसकी छाल के रेशों से बोरा आदि बनाने के
लिए सुतली बनाई जाती है। इसके फूल कुसुम
की तरह होते हैं। दे०—पटुआ। [(देशी),
मिला०—कुन्दर=एक प्रकार की घास;
कुन्दरिका=एक पौधा (मो० वि० डि०)]

कुदरम—(सं०) एक छोटा-सा पौधा, जिसके
फल की चटनी होती है (पट०-१)। [देशी]

कुदरुम—(सं०)—(द० भाग०) दे०—कुतूरुम,
पटुआ। [(देशी), मिला०—कुन्दर=एक
प्रकार की घास, कुन्दरिका=एक पौधा (मो०
वि० डि०), कुदरुम, (संता०)]

कुदर—(सं०) फाबड़ा, कुदाल, मिट्टी खोदने का
एक हथियार (म०, प्राज०)। दे०—कुदारी,
कोरा। [< *कुदाल, < *कुदर, < *कुदालक,
* < कुदाल < कु + √ दल + आ (< घञ्)]

कुदारी—(सं०)—(१) जमीन कोड़ने के लिए लोहे

का बना चौड़ा और तेज धार का
एक औजार, जिसमें लकड़ी या
बाँस की बेंट लगी रहती है।
पर्या०—कोदारि या कोदारी,
कोदार (चंपा०), कुदाली
(म० द०), कुदाल और कुदर,
ठेंडी कोदार (द० भाग०, चंपा०) कुदारी
[< *कुदाल, < *कुदर, < *कुदालक;
कुदाल (संस्क०), कुदालको, कोदाली (पा०),
कुदाल, कोदालिया (प्रा०), कुदाल (हि०),



कोदाल (बं०, मरा०), कोदाल (प्रा०),
कोदारि (सि०), कोदालो (गु०), कुदाल,
कुदाला (बं०), कुदल (मरा०), कोडालि
(प्रा०) < कुठार (१), कुड़ि (संता०)। (२) सन
के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल
(उ०-पू० म०)। दे०—गुदरी। [देशी]

कुदाल, कुदर—(सं०) दे०—कुदारी।
[< *कुदाल, < *कुदालक]

कुदाली—(सं०)—(म०-द०)। दे०—
कुदारी।

कुदूरुम—(सं०)—(शाहा०-१)। दे०—
कुदरुम। [देशी]

कुड़ी—(सं०) वन का छोटा ढेर (द० मू०,
पट०-४, मग०-५)।—लगाने (मुहा०)=छोटा-
छोटा हिस्सा लगाना, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में
किसी चीज को बाँटना। [मिला०—कूट=
राशि, कुदय=कुदय=दीवाल]

कुनरी—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका
फल व्यंजन में प्रयुक्त होता है। [< *कुन्दरु]

कुन्बी—(सं०) (१)—(द० भाग०)। दे०—
बन्बी। (२) निष्फल बीज (द० भाग०)
मिला०—सुग्गी। [कु + ब्बी < कुबीज]

कुमुदनी—(सं०) एक प्रसिद्ध जलप फूल, कुमुद
(दर०-१, पट०-४, मग०-५)। [कुमुद, कुमुदिनी]

कुमुदसार—(सं०) महीन धान का एक भेद
(मू०-१)। [< *कुमुदशालि]

कुम्हड़—(सं०) कौहड़े की जाति का एक श्वेताभ
फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि
के बनाने में होता है (गु०)। दे०—भनुआ।
पर्या०—सजकुम्हड़ (म०-२), सीसकौहड़ा
(चंपा०, भाग०-१)। [< *कुम्मांड]

कुम्हिलाइल—(क्रि०) किसी फल-फूल का घूप
में पड़ने या पेड़ से टूटने के बाद कुछ-कुछ
सूखने लगना (चंपा०-१)। [कुम्हिल + आइल
(प्रा०) < कुम्हिल, कुम्हिलाना (हि०) <
कुम्हिलान (हि० श० सा०), < *कुम्मिल =
एक प्रकार का विषकीट; मिला०—कुम्मांड =
बच्चों का एक रोग, जो कुम्मांड प्रेतों के कारण

होता है और जिसमें बच्चे सूख जाते हैं।
कुम्हाउनु (ने०), कुम्भण (देशी०), कुमावण
(ल०), कुमाइजाणु, कुमातिजाणु (सि०),
कोमण (मरा०)]

कुम्हस—(सं०)—(द०-पू० म०)। दे०—कूहा।
[मिला०—कुहेला, केहेडिका, कुहेडा]

कुरकुट—(सं०) पृथाल का मूसा (चंपा०-१)।
[< *कुकूल]

कुरखेत—(सं०) (१) जोता हुआ वह खेत, जिसमें
कुछ दिनों से हल नहीं चलाया गया हो (चंपा०)।
(२) खेतीबारी। [कुर+खेत < *कृष्टक्षेत्र
< *कृष्य क्षेत्र < *कृत क्षेत्र]

कुरताली—(सं०)—(१) किसान और दूसरे छोटे
किसान के बीच बटाई पर की गई खेती की
फसल का निश्चित परिमाण में विभाजन
(द० भाग०, मू०-१)। [कुरत + आली < कृत
+ अर्थ < *कृतार्थ अथवा *कृताधिक या
कृष्टार्थ, कृष्टार्थिक] (२) फसल के आधे-आधे
या १/७ के बंटवारे की शर्त पर जमीन
जोतना। अधबंटवारे पर जमीन को उपजाने के
लिए लेना (मू०-१)।

कुरताली करल—(मुहा०) कुरताली की शर्त पर
दूसरे किसान का खेत लेकर खेती करना।

कुरथी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो थोड़ा
लाल होता है और बड़ा कड़ा होता है।
[< *कुलथ, < *कुलथिका (संस्क०),
कुलथ कुलथा (पा०, प्रा०), कुरथी, कुलथी
(हि०), कुरथि (ने०), कुलथा (बं०)=जंगली
कुर्या। कुलथ (पं०), कुलथी (पं०, सि०)]

कुरथौली—(सं०) साधारण काश्तकारों के नीचे
एक छोटा रयत। दे०—सिकमी। [दे०—
कुरताली]

कुरदन—(सं०)—(१) (पट०)। दे०—ओखरी।
(२) मिट्टी का बना ओखर (पट०-४, मग०-५)।
[(देशी), मिला०—कुरण्ड, कुंडकंठ = घड़ा—
जंसा पात्र। कुटंक=कोटर (पा० सं० म०),
कूट=पात्र, छिपी वस्तु]

कुराव—(सं०) वह परती जमीन, जो पहली बार
जोती जाती है (द०-पू०)। दे०—खोल।

[(देशी), मिला-कुराय (हिं), कुरा (प्रा०) = अकर्म, भूमिविषय (पा० सं० म०), मिला-कुराँउ (संता०) = वह परती जमीन, जिसमें जंगल काटकर विना जोते बीज बोया जाता है]

कुर्की—(सं०) कजंदार या अपराधी की जायदाद की, ऋण या जुर्माने की वसुली के लिए, सरकार द्वारा की जानेवाली जब्ती (सा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कुर्क (अ०)]

कुलहर—(सं०)—(१) अगली वर्षा में बौने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जोत (द०-प० शाहा०)। दे०—माघड़ जोतल। (२) वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोती ही जाती है तथा दूसरी बरसात में उसमें धान का बीज बोया जाता है (द०-प०)। दे०—दोतरा चोमास। [देशी]

कुलिचा—(सं०) वह बैल, जिसका एक पैर दूसरे पैर से टकराता है (पट०-१)। [देशी]

कुल्हाड़ी—(सं०)—(बिह०)। दे०—कुल्हारी।

कुल्हारी—(सं०) लकड़ी फाड़ने तथा पेड़ काटने के काम में आनेवाला बसुला से कुछ लंबा एक प्रकार का हथियार। दे०—टंगा। पर्या०—कुल्हाड़ी (बिह०)। [कुल्हारा+ई (अल्पा० प्र०), कुल्हारा < कुठारक (संस्क०), कुठार (प्रा०), कुल्हाड़ा (हिं), लहान कुल्हाड़ (मरा०), कुल्हाड़ी (गुज०)]

कुस—(सं०) एक प्रकार की पवित्र घास (बिहा०, भाज०)। [कुश (संस्क०), कुस (पा०, प्रा०) कुस, कुसा (हिं), कुसा (बं०) कुस (संता०)] कुसबटना—(सं०) रोपे जानेवाले धान में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (उ०-प०)। पर्या०—कुसियाना (मं०)। [देशी, < कुश-वर्तन (?)]

कुसही—(सं०) छोटे दानोंवाला काला मटर (पट०, गया, द०-पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—बजरी। पर्या०—जेसवरिया (पट०-४)। [देशी (१), मिला-कोश, कौशिक = गोल वस्तु]

कुसही केराव—(सं०) एक साथ उत्पन्न जो और केराव का मिश्रण (पट०, द०-पू०, पट०-१)। दे०—जो केराई। [कुसही+केराव, कुसही < *कोश, < *कौशिक (संस्क०), कौसिय (प्रा०), केराव < *कलाय]

कुसाध—(सं०) वह बैल या भैंस, जिसका मुँह चौड़ा हो (पट०-१)। [देशी]

कुसियाना—(सं०)—(मं०)। दे०—कुसबटना। [देशी]

कुसिया मटर—(सं०) छोटे दाने का मटर, केराव (मं०-१, मग०-५)। [कुसिया+मटर < कुसिया < कुशिक < कौशिक, मटर < मठ < मट्ठ (बेसी) < *मृष्ट (?)]

कुसियार—(सं०) दंडाकार एक प्रसिद्ध पोधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती है, ईख (उ०-पू० मं०, मं०-२)। दे०—ऊख। [< *कौशिकार]

कुसिहार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो छोटा और कड़ा होता है। [< *कौशिकार]

कुसुम—(सं०) बरें (कुसुम) का पीला फूल, जिससे रंग बनाये जाते हैं (गं० उ०, मं०-२, मग०-५, चंपा०, पट०-४)। पर्या०—बरें (पट०-४), कोसुम (गं० उ०) फूल (मं०)। टि०—कुसुम से निम्नलिखित रंग बनाये जाते हैं— १. असमानी = हल्का नीला रंग; २. कागी = तेज बैंगनी रंग; ३. काला = काला रंग; ४. काहि सबुजा = गाढ़ा हरा रंग; ५. केसरिया = हल्का लाल-पीला रंग; ६. गुलाब, गुलाबी = गुलाबी रंग; ७. चंपई = नारंगी रंग; ८. नारजी = नारंगी-पीला रंग; ९. पैठानी = नील के साथ मिला हुआ रंग; १०. फलसाही = बैर के रंग का रंग; ११. बादामी, बेदामी = बादामी रंग; १२. बैंगनी = बैंगनी रंग; १३. मासी = नितांत गाढ़ा हरा रंग; १४. लाल = लाल रंग; १५. लीला = गाढ़ा नीला रंग; १६. सबुजा = हरा रंग; १७. सुरमई = सुरभा-जैसा काला रंग; १८. सुख = गाढ़ा

लाल रंग। १९—सोनहला = सुनहला पीला रंग। यद्यपि पूर्वोक्त रंग केवल कुसुम से नहीं बनते हैं, किंतु इसका आधार अवश्य रहता है। गाढ़े रंग के बनाने में नील का सम्मिश्रण रहता है। कुसुम के विषय में एक पहेली नीचे दी जाती है— “बाप रहल पेटे, पूत गेल बरियात”।

(जब कि बाप (कुसुम का बीज) पेट (बीज-कोष) में रह रहा था, उसी समय पूत (कुसुम फूल,) कपड़ों के रंग के रूप में, बारात चला गया [कुसुम, कुसुम्भ (संस्क०), कुसुंभ (पा०, प्रा०), कुसुम, (अस०), कुसुंभ, कुसुम, कुसुंब (हिं), कुसुंभ, कुसुंभा (पं०), कुसुंबो (सि०), कुसुंबो (गु०), कुसुंब, कुसुंबा (मरा०)]

कुहरा—(सं०) ओस, कुहेसा (चंपा०-१)। पर्या०—कुहा (पट०-४)। [कुहेडा या कुहेला]

कुहेसा—(सं०) सबरे का कुहरा (नीहार) — (द० भाग०)। दे०—कुहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला-कुहाशय वा कुहेशय < कुह (कुहर) + आशय, शय]

कुहा—(सं०)—(पट०-४)। दे०—कुहरा।

कुहेस—(सं०)—(प०, उ०-पू०, मं०, द०-पू० मं०, मं०-२)। दे०—कुहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला-कुहाशय, कुहेशय < कुहा + आशय, शय]

कुहेसा—(सं०)—(प०, पट०-४)। दे०—कुहा।

कूचा—(सं०)—(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए व्यवहृत ताड़ या खजूर के डंठल की जड़ का कूचकर बनाई गई झाड़ू या कूची। दे०—सिरहय। (२) नारियल की सींक, खजूर के डंठल और पत्तियों एवं ताड़ की पत्तियों की सीकों आदि से बनी झाड़ू। (३) दे०—कुच्चा। [कूच, कूचक (संस्क०), कुच (प्रा०), कूचा (हिं), कूचो (ने०), कूची, कूची (बं०), कुच, (पं०), कूचिण (ल०), कूचो, कूची (सि०), कूचो, कूचड़ो (गु०), कूचा (मरा०), कोस्ता (सिहा०), कुच (रोमा०) = दाढ़ी]

कूची—(सं०) छोटा कूचा (द०-प० शाहा०)। दे०—सिरहय और कूचा। [कूचा+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)]

कूड़—(सं०)—(१) भोजन और अन्न रखने का मिट्टी का बड़ा बर्तन (प०, पट०)। (२) कुएं से पानी निकालने के लिए लोहे का बना गोल बर्तन। दे०—डोल। (३) *ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेटा जाता है (पू०)। दे०—खान। टि०—पहले कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था, किंतु आजकल तो लोहे का होता है। इसलिए, वैसा खोखला भाग नहीं होता है। (४) डंकुल में लगा हुआ पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र (बिहा०, भाज०)। पर्या०—कूड़ी, कुंडी। [कुंड, कुंडक, कुंडो, कुंडिका (संस्क०) कुंडिका, कुंड पा०, प्रा०]



कूड़ो, कुंडो, कुंडो (बं०), कुंडी (मरा०), कुंडी (हिं), कुन्नी (पं०, ल०), कुंडो (ने०), कुंडी (गु०, मरा०), कुंडिया, कुरी, कुन्नी (सिहा०)]

कूड़ा—(सं०) (१) अन्न रखने के काम में आने-वाला एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन (गं० उ०)। पर्या०—कूड़ी (द० भाग०)। (२) दही मयने का मिट्टी का बर्तन, जो हाड़ी में मिट्टी लगाकर बनाया जाता है (चंपा०)। [कुंड, कुंडक]। कूड़ी—(सं०)—(१) उबाले हुए रस को रखने का बर्तन (द० भाग०)। दे०—मट्की। (२)—(द० भाग०)। दे०—कूड़ा। [कूड़+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < *कुंड] (३) डेर—(चंपा०-१)। [कूट (संस्क०), कूड (प्रा०)] (४) दे०—कूड़। [< कुंड]

कूआ—(सं०) भगमंस्थ जल निकालने के लिए खोदा, गया बहुत गहरा और साधारणतः गोल कच्चा गढ़ा, जो ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया जाता है। [कूप, (संस्क०), कूप (पा०), कूवा, कूआ (प्रा०), कूआ, (हिं), कूआ (बं०) कूआ (मरा०), कूआ, खूह (पं०), कूवा (ने०), कूवो (गु०), कूवा (मरा०), कूआ (दर०)। पं० खूह, (पं० कं०) खूह (कश्मीर), खूहा (पं० पहा०), खूहु (सि०) शब्दों का मूल संभवतः कसेर, कसुयु (रोमा०) है, जिसका अर्थ है—खेद, गड़ा। इसी प्रकार खोह (हिं, पं०, बिहा०), खो (गु०) भी हैं।

किन्तु वस्तुतः पा० काकूपो = कूआ, मस्तूल, कुवो (गु०), कुंवा (सि०), खुहा (ने०) की व्युत्पत्ति में समानता है (नेपा०)]
 कूचल—(सि०) घूरना, पीसना, पीटना (सं०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०) । [कुच + ल (प्र०), मिला०—√कुच्, √कुच् (संस्क०), कुचि (प्रा०) = टंडा कूचना (हि०), कुचान (बं०), कुचेहवा (ग्री०), कुचिनु (ने०)]
 कूचा—(सं०)—(गया, व० सं०) । दे०—कूचा और सिरहवा । [< कूचक (संस्क०), कुचच (प्रा०)]
 कूट—(सं०)—(१) पुआल का छोटा टुकड़ा, जो भूसा के समान होता है (चंपा०-१) । (२) मोटी लुगदी से बना कागज का एक मोटा भेद (बिह०) । [कूट = पुंज; कुटिक, कुटित = दबा हुआ, मुड़ा हुआ ।]
 कूटी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कूट ।
 कूटल—(सि०) किसी चीज को ढँकी या ओखल में कूटना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१) । (वि०) कूटा हुआ (चंपा०-१) । [√कूट (संस्क०), कूट (पा०, प्रा०), कूटना (हि०), कूटनु (ने०), कुटिना (अस०), कूटा (बं०), कुटिना (ग्री०), कूटणा (पं०), कूटण (ल०), कूटणु (सि०), कूटणो (मरा०), कूटणु (गु०), कुरेल (रोमा०), कुड (बर०), कोटनवा (सिहा०) । जूल ब्लाक और कटेल के मत से इस धातु का मूल प्राविड है । मिला०—कुडो (कन्न०) = ठोकर देना । कुट्टु (त०, कन्न०), कोट्टु (सं०, त०—नेपा०)]
 कूड़ा—(सं०) खाद, बृहान (पू०, सा०, चंपा०) । दे०—खाद । [कूट (संस्क०), कूड (प्रा०)]
 कूड़ा-कुरकुट—(सं०)—(पू०, सा०, चंपा०) । दे०—कूड़ा और खाद । [कूड़ा + कुरकुट < कूट + कुरकुट (दे० - कुरकुट = घुर्ग)]
 कूड़ा—(सं०)—(१) छोटी मड़ई (पट०, गया) । दे०—गोहिया । (२) खेत या खलिहान में खड़ी की गई ओरड़ी (गया) । दे०—मड़ई । [कूट, कूटक, कूटज]
 कूत—(सं०) दे०—कन । [कूतना (हि०), मिला०—√कूत = फँकना-फँकाना (मो० वि०, डि०) दे०—कूतल]

कूप—(सं०) दे०—कूआ । [कूप]
 कूर—(सं०)—(१) सूखी घास, बृहान, गोबर आदि का ढेर (उ०-पू० सं०, शाहा०) । [कूर] (२) नदी का किनारा (चंपा०-१) । पर्या०—कोर (नं०-२) । [कूल]
 कूरी—(सं०) चीजों की छोटी-छोटी ढेरी (नं०-२, सं०-१) । दे०—कुद्दी । [कूर + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < *कूर]
 कूरो—(सं०) जमीन, खेत आदि की बीस कट्टे की एक नाप (पू० सं०) । दे०—बिगहा । [देशी]
 कूहा—(सं०) सबरे का कुहरा । पर्या०—कुहेसा, कुहेसा (पं०), कुहसा (ब० भाग०), कुहेस (उ०-पू० सं०, ब०-पू० सं०), कुमुहेस । [कुहेसा, कुहेडा, मिला०—कुहाशय, कुहेशय < कुह (= कुहर) + आशय, शय, कोहड़, कोहरा (हि०), कोहरा (बं०), कोवा-मोवा (अस०), कुहुडी (ओ०), कुहुर (पं०), कोहीर (ल०), कोहड़ (मरा०), कोहरी (ने०)]
 कूआँ—(सं०) तंबाकू के पत्तों में बिल बनाकर रहने वाला एक कीड़ा विशेष (गं० उ०, सं०-२) । दे०—लरका । [देशी] ।
 कैंकरोट—(सं०)—(१) दे०—कैंकरोटिया । [< कैंकरोस्थि (२) (गया) । दे०—गैंगट । कैंकट + ओट] (?)
 कैंकरोल—(सं०) केकड़े के द्वारा ऊपर फँकी हुई मिट्टी या बंसी मिट्टीवाली जमीन (गं० उ०) । कैंकुरल—दे०—कैंकुरल ।
 कैंडी—(सं०)—(१) हाथ की सफाई के कारण कम तेलना (चंपा०-१) । (२) पेट की त्रिवलि (चंपा०-१) । (देशी), मिला०—[कूट = छल, कितव]
 कैंपी—(सं०) कीचड़, कावो (सं०-१) । [कैंपी < कप + पंक—वर्ण—विपर्यय]
 कैंवाछ—(सं०) दे०—कवाछ । [कपिकच्छ]
 कैंयारी—(सं०)—(ब० भाग०) । दे०—कियारी । [केदार]
 केआल—(सं०) अन्न तेलनेवाला पुरुष (पट०, व०-पू०) । दे०—हटवा । [(देशी) (?)], मिला०—किराट = वनिया (रा० त०), काकिनी (गो०) = एक माप, क्रयण]

केआली—(सं०)—(१) अन्न तेलनेवाले पुरुष का शूलक (प्रति मन सेर-भर) —(ब०-पू०) । दे०—हटवाई । (२)—(उ० पू० सं०) । दे०—किआली । [केआल + ई (दे०—किआली, केआली)]
 केओट (सं०) मल्लाहों की एक शाखा (गं० उ०) ।
 केओटीन—(सं०) (१) एक प्रकार की घाल (बर०-१) । (२) मठों में नाचनेवाली देवदासी (चंपा०) । () केवट (जाति-विशेष) की स्त्री । [मिला०—कैवर्त, कैवर्ति मुस्तक = एक घास (मो० वि० डि०)]
 केकुरल—(सि०)—(१) जाड़ा आदि के कारण मवेशी या किसी व्यक्ति का सिकुड़ जाना (चंपा०-१) । (२) पाका और एक रोग-विशेष के कारण पीधों का सिकुड़ना । (वि०) सिकुड़ा हुआ । पर्या०—वेंकुरल, केकुरल । [केकुर + ल (सि० प्र०) < केकुरा < *ककटका]
 केइवारी—(सं०) फलों का नया बागीचा (शाहा०) । दे०—गछली । [केइ + वारि, केइ < केतकी, कदली अथवा केदार + वाटिका > वारि]
 केतकारि (सं०) आदिवन, कात्तिक और अगहन का महाना (बर०-१) । [(देशी), मिला०—कात्तिकदि (?)]
 केतकी—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (बर०-१) । (२) केइड़ा का फूल । [केतकी]
 केतरपार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने-आला (पट०, गया) । दे०—अंगेड़ीहा । [केतर + पार < केतारी + पार < कान्तर + पार । पार = अंत, पारयति = समाप्त करता है, पार (= उत-पाट)]
 केनार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला और लंबा हुआ करता है तथा कात्तिक में पोवना होना है (गया, ब०-पू०, मग०-५) । पर्या०—केनारा (पट०), केवाली (सा०), केवाही (शाहा०), रौंदा (ब०-पू०) । [कान्तरा] केनारा—(सं०)—(पट०) । दे०—केतार ।
 केनारी—(सं०)—(सं०, पट०, गया, व०-पू० बिहा०, पट०-४, मग०-५, भाग०-१) । दे०—ऊख । [केतार + ई < कान्तरा] ।
 केन डेहरी—(सं०) धनगोपनी के अंत में अंत के एक-कोने में विशेष रीति के साथ एक मुट्ठी

मोरी (धान्य-बीज) के रोपने की एक रीति, पर्या०—पचाटी (पट०-४, मग०-५), गव लगवल (चंपा०) । [देशी, केन + डेहरी < कोण + देहली]
 केनगाड—(सं०) चीनी-मिल की ओर से ट्रक पर लादकर लाये जानेवाले ऊख पर बँठा हुआ वह कर्मचारी, जो रास्ते में उस ऊख की रखवाली करता है, ताकि कोई उसमें से ऊख ले न ले । [केन + गाड < केन + गार्ड (अं०)]
 केना—(सं०)—(१) अनाज के खेत में होनेवाला एक पशु-खाद्य घास (प०, गया, पट०-४, मग०-५, सं०-२) । दे०—कनवा । [देशी, मिला०—कण]
 केना—(सं०) (प०-सं०, प०) । दे०—कनवा । [देशी, मिला०—कण] ।
 केनौला—(सं०) एक झाड़, जिसके फल की चटनी बनती है । पर्या०—करोँदा (सं०-१, मग०-५) । [कुन्दुरु]
 केमाम—(सं०) शुद्ध (ताजा) अफीम (कफा) के रस को उबालकर गाढ़ा करके बनाया गया पदार्थ (गया) । दे०—मदक । [किमाम < किमाम (अं०)]
 केरबा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (बर०-१, पट०-४, गया०-५) । [केरा + वा < केला < कदली]
 केरबी—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (बर०-१) । [केरबी < केला < कदली]
 केरा—(सं०)—(१) लोहार, बड़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली धान्य की एक छोटी राशि [जितनी बीनों भुजाओं (पाँजा) के बीच में आती है] । दे०—खरबन । [(देशी), मिला०—कर + (साल) यथा—अंकमाल > अक्रवार अथवा कोल, क्रोड (= पाँजा)]
 केरा—(सं०) केला, एक प्रसिद्ध फल । (बिहा०, आज०) । [कदली] (संस्क०), कयली, कयलि (प्रा०), केरो, केरा (ने०), केलो (कुमा०), कला (बं०, अस०), केला (हि०, पं०), केल्हो = केला, केविरो = पोया (सि०), केल (गु०) = केले का पोया, केलु (गु०) = केला, केला, केली, केले (मरा०), कैमेल, केहेल (सि०)]



केतारी

इन सभी पर्यायों का (संस्कृत, पा०) के 'कदली' और (ग्रा०) के 'कयली', 'कवली' शब्द से स्पष्ट संबंध नहीं दीखता है। केवल हि०, ब०, अस०, प०, मरा० और संभवतः कुमा० के पर्यायों का ही संबंध इनसे मिलता-सा है, किन्तु गु० के पर्याय का कोई संबंध नहीं है। ब० को छोड़कर ऊपर के पर्याय और गु० के पर्याय प्रा० के केली, केलो से संबद्ध हैं और ये दोनों संस्कृत के कदली से व्युत्पन्न नहीं हैं। जे० राइलस्की (J. Przyluski—MSL XXII, P.206) के मतानुसार 'कदली' शब्द आग्नेय-एशियाटिक से उधार लिया हुआ है, जिसमें 'ली' के पहले पूर्वसर्ग (prefixes) 'क' और 'त' लगते हैं। इनमें 'ली' प्रत्यय प्रतीत होता है। क्या प्रा० का 'केली' आग्नेय-एशियाटिक 'कलि' से व्युत्पन्न हो सकता है? डब्लू० गाइगर (इटि० सिंह० पृ०-२७) के अनुसार 'केसेल'—(सिंह०) का 'स' सादृश्याधिक है, किन्तु यह मत उचित नहीं दीखता। यह शब्द वस्तुतः किसी दूसरे मूल शब्द का व्युत्पन्न रूप हो सकता है—नैपा०।]

केराओ—(सं०) मटर। [कलाय]

केरावल—(०) दे०—किराना।

केराव—(सं०) छोटे दानों का मटर (बिहा०, ग्राज०)। दे०—मटर। [कलाय (संस्कृत), कलाय (ग्रा०), कलाइ (ब०, अस०)]

केरावल—(कि०)—छड़ी फलवाले खेत से घास-पात निराना, निकोनी करना (मु०-१, मग०-५)। [केरा+ केराव आवल (प्र०) < *किर (यथा-किरति) < √कृ (बिभंषे)]

केरोनी—(सं०) (१) छिछली कोड़ाई; खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की कोड़ाई (बंपा०, मं०)। दे०—खुरपियाना। पर्या०—किरोनी (मग०-५)। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (मं० उ०, ब० भाग०, ब० मु०)। दे०—सोहनी। [केर+ औनी < *किरण < √कृ (बिभंषे)]

केलासार—(सं०) अच्छी किस्म का एक मोटा

अगहनी घान (मु०-१)। [केला+सार < *कदली+शालि]

केलौनी—(सं०)-(१)-(ब० भाग०)। दे०—केरोनी और खुरपियाना। (२)-(ब० भाग०, ब० मु०)।

दे०—केरोनी और सोहनी। [केलौनी < केरौनी < केराना < *किरण < √कृ (बिभंषे)]

केवई—(सं०) एक प्रकार की मछली (बंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—कवई (बंपा०, मं०-२)।

[*√कविक, *√कविका]

केवलहा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (गबा)। दे०—ललका। [देशी, संभ०—केवल+हा (प्र०) < केवाल (बिहा०)=काली चिकनी मिट्टी]

केवाल—(सं०) काफी मजबूत काली जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी का अंश रहता है। पर्या०—करार (ब०-पू०)। [केवाल, कासार] कहा०—'असल के बेंटी अउ केवाल के खेती'=असल माँ-बाप की बेंटी और केवाल जमीन की खेती अवश्य फलदायक होती है (पट०-४)।

केवाला—(सं०)-(१) कज के भुगतान में या नकद रुपया लेकर जमीन बेचने की प्रक्रिया। (बंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)।

केवाला देखल (मुहा०)=कवाला देना।

केवाला लिखल (मुहा०)=किसी के नाम से अपनी सम्पत्ति लिख देना। केवाला लिखावल (मुहा०)=किसी से केवाला लिखाना।

कवाला—(प्र०) (२) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में दी जाती है।

केवाली—(सं०)-(सा०)। दे०—केतार।

[केवाल+ई < केवाल (मिट्टी)]

केवाही—(सं०)-(शाहा०)। दे०—केतार।

[मिला०—केवाली]

केसर—(सं०) कदमर की घाटियों में होनेवाले एक प्रसिद्ध फूल का देश, जो पीलापन लिये, लाल रंग का, सुगंधित एवं बहुमूल्य होता है और भोजन की वस्तुओं या पूजा-सामग्री के लिए व्यवहृत होता है। [केसर]

केसरिया—(सं०)—दे०—कुसुम। [केसर+इया (प्र०) < *केसर]

केसी—(सं०) मूट्टे के ऊपर के केशों का गुच्छा। दे०—भूआ। [< केसिक]

केसौर—(सं०)-(१) लम्बे दानोंवाले घान का एक उत्तम प्रकार (मु०-१, मं०-२)। (२)

शकरकंद की जाति का एक मोटा कंद, जो कच्चा खाया जाता है। (३)

चौर में होनेवाला एक छोटा कंद, जो मोथे क, तरह होता है और कच्चा ही खाया जाता है।

केसौर

[क+सौर < केतकी+शालि वा केसर+शालि]

केडुनी—(सं०)-(१) दोनों मुजाबों के अंदर भरकर आनेवाली फसल का परिमाण (पू० मं०)। दे०—पंजा। (२) कोहनी, हाथ और बांह के बीच की संधि। [< कपोशि = केहुनी]

कैत—(सं०) छोटे बेल-जैसा एक प्रकार का खट्टा फल (शाहा०-१, पट०-४)। [कपित्थ (संस्कृत), कदित्थ (ग्रा०)]

कैत—(सं०) एक प्रकार का साप-जैसा श्वेत घरो-वाला लंबा फल, जिसकी तरकारी बनती है (सा०)। दे०—

चिरा। [संभ०—< *श्वेता < श्वेतराजि (संस्कृत), कैता भिगा (संता०)]

कैता—(सं०)-(पू० मं०, मु०-१)। दे०—कंत और चिरा।

कंता

कैदक—(सं०) जमींदारों और किसानों के बीच का एक प्रकार का हिसाब, जो कागज की एक चिट पर लिखकर बंडल में रख लिया जाता है। यह वही में नहीं लिखा जाता है। दे०—तबलक [देशी, संभ० < कायदा < कायदः (प्र०)]

कैरियार—(सं०)-(शाहा०)। दे०—कोरार। [कैरि+यार < कैदार+वाट, कदली+वाट, कन्दली+वाट]

कैरी—(सं०) कटहल के कोये का ऊपरी भाग, जिसमें कोया छिपा रहता है (पट०-१)। पर्या०—मोथी (सं० प०) [देशी, संभ०—< *कवरी]

कैल—(वि०) पीताभ-धूसर पशु (बर०-१, पूणि०-१, मं०-२)। पर्या०—कैला कइल

(बंपा)। [कपिल (संस्कृत), कयिल (ग्रा०)] कैला—(वि०)—दे०—कैल।

कैलाएल—(कि०)—फसल की बाल को दूढ़ (अन्न के रूप में) होने की अवस्था को प्राप्त करना। (वि०) पकती हुई फसल। दे०—हबसाएल।

[कैला+एल (कि० प्र०) < *कपिल] कैला गैल—(वि०)—(पट०, पट०-४, मग०-५)।

दे०—कैलाएल और हबसाएल। [कैला+गैल < कपिल; गैल < गएल < गयल < गम]

कैलिया—(सं०) दे०—कोइली। [संभ० < कपिल] कौकड़चल—(सं०) (१) कंकड़े का बिल (बंपा०-१)

(२) कंकड़े के बिल के ऊपर की मिट्टी।

[कौकड़+उल < *ककट < कुल]

कौकड़ा—(सं०) कंकड़ा, एक जलीय जन्तु, जिसके आठ पैर और दो पूंजे होते हैं। यह आगे-पीछे समान गति से चल सकता है। यह घान के खेत से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है। [< ककटक]

कौकड़ियाइल—(कि०) रोग या पाले से किसी पौधे के पत्ते का सिकुड़ना या संकुचित हो जाना (बंपा०-१, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—केंकुरियाएल (पट०-४)। [कौकड़िया+आइल < *कौकड़ा < *ककटक]

कौच—(सं०) महुआ के फूल का छत्ता (पट०-४, मग०-५, बंपा०-१)। दे०—छत्ता। [< कूच, कुच, गुच्छ]

कौदिला—(सं०)-(१) एक पशुशाव घास (बंपा०, उ० मं०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से बिवाह का और बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुछ (संस्कृत), कूठ (हि०)]

कौपड़—(सं०)-(१) पशुओं का एक ऐब, जिसमें सींग की जड़ में पत्त उखड़ी है। दे०—गाड़ा। (२) बांस की जड़ से निकला हुआ नया कोमल अंकुर (बंपा०-१, मं०-२)। [कौपड़ < कौपल < कोमल—(हि० श० सा०), < कूडमल (संस्कृत) < कुपल (ग्रा०), कोपाल (हि०) कोपलो (गु०), कोपिला (ने०), कोम्भ या कोम्ब (मरा०)]

कौपल—(सं०) बांस की जड़ का नया अंकुर (सा०-१, उ० मं०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से बिवाह का और बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुछ (संस्कृत), कूठ (हि०)]

कौपल—(सं०) बांस की जड़ का नया अंकुर (सा०-१, उ० मं०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से बिवाह का और बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुछ (संस्कृत), कूठ (हि०)]

कौपल—(सं०) बांस की जड़ का नया अंकुर (सा०-१, उ० मं०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से बिवाह का और बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुछ (संस्कृत), कूठ (हि०)]

मग०-५, पट०-४)। [कोपल < कोमल—(हि० श० सा०), < कुटुमल (संस्क०)]

कोहड़ा—(सं०) कद्दू की जाति का एक गोल फल, जो रंग में हरा या पीला होता है तथा जिसकी तरकारी मीठी होती है। पर्या०—कोम्हड़ा (उ० मं०), कवीमा (पू० मं०, मं०-२)। [< कुम्भाण्डक, (संस्क०), कुम्भाण्ड (प्रा०), कुम्भण्डो (ने०); कुम्ड़ा (बं०) कुम्हड़ा (हि०), कोम्ड (सिंह०), ड० < ण्ड)। कूहण्ड कोहण्ड, (प्रा०), कोहली (बेसी)—मिला०—कुम्भफला (संस्क०), कोहड़ा, कोहर (हि०), कोहलु (गु०), कोवहाला (मरा०), कोहोलें, कोहलें, कोहलें (मरा०)]

कोहरबट्टी—(सं०) कुम्हार द्वारा काम में लाई जानेवाली मिट्टी (सा०-१)। [कोहर+बट्टी < कुम्हार (हि०) + मिट्टी < कुम्भकार+मृत्ति]

कोआ—(सं०) (१) कटहल के फल का बीज-कोष, जिसे लोग खाते हैं (चंपा०-१, पट०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) रेशम के कीड़े का घर (चंपा०-१) (३) आँख का डेला (डेल) — (चंपा०-१)। (४) ताड़ के फल के बीज-काष से निकलनेवाला एक द्रव्य खाद्य। [कोशक < बीजकोशक (संस्क०), कोसा, कोया (हि०)]

कोइन—(सं०)-(१) महुए की गिरी (बीज), जिससे तेल निकाला जाता है (सं० उ०, बं०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) महुए का फल। पर्या०—गहुआ (मं०-२), कोइनी (बं०-पू० मं०, आज०), कोइन्दा (बं०-पू० शाह०), कोयन कोइन (मं०-१), कोयँड (सं० प०) कोइना (आज०)। [को+इन < *कोशिन]

कोइनी—(सं०)-(बं०-पू० मं०, आज०)। दे०—कोइन। [को+इनी < *कोशिन]

कोइन्दा—(सं०)-(बं०-पू० शाह०)। दे०—कोइन। [को+इन्दा < कोआ+इन < कोशिन]

कोइया—(सं०) अनाज के भांडार को भीषण हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का पतला, काला कीड़ा। [देशी]

कोइरी—(सं०) हिंदुओं की एक जाति, जो साग-पात की खेती करके अपनी जीविका चलाती है। पर्या०—कोयरि (बर०-१)। [कोइर+ई, कोयर (हि०) = साग पात; < कोपल < *कुटुमल]

कोइल—(सं०)-(१) आम के बीज का गूदा या गिरी, जिसकी रोटी भी कहीं-कहीं पकाई जाती है। (मं०-१)। [देशी]

(२) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो (पट०, गया)। दे०—मराएल। [कपिल]

(२) एक पक्षीविशेष, जिसका रंग काला होता है तथा बोली बड़ी मीठी होती है। पर्या०—कोयल (चंपा०)। [कोकिल]

कोइलखो—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली कटिंदार एक घास। पर्या०—गोखुला (प० मं०, चंपा०, पट०, गया, बं० मं०, पट०-४, मग०-५, मं०-२), गोरखुल (प०), बासी (सामा०)। [बेसी], संभ०—कोकिलाक्ष]

कोइलपत—(सं०) चोट लगने के कारण दाग लगा हुआ आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०-१)। [कोइल+पत < कोकिल+पद (= चिह्न)—(?)]

कोइला—(सं०)-(१) फसल के पुष्ट होने की अवस्था। (२) लकड़ी अथवा पत्थर का कोयला, जो जलाने के काम आता है। [कोइल+आ < *कोकिलक, कपिलक]

कोइलाइल—(फि०) किसी अन्न या फल का पुष्ट होना (शाह०-१)। [कोइल+आइल (प्र०) < कोइल, कइल < कपिल]

कोइला माता—(सं०) कुएँ को सुरक्षित रखने-वाली कल्पित देवी। [कोइला+माता। संभ०—< कमला माता, कोकिला (देवी)—(मो० वि० डि०)]

कोइली—(सं०) चावल में लगनेवाला विभिन्न प्रकार का कीड़ा। पर्या०—कोड़िया, केलिया। [(बेसी) संभ०—< कपिल]

कोकटि—(सं०) एक प्रकार की लाल कपास, जो भाँसे में पकती है। इसकी खेती तिरहुत में होती है तथा इसके सूत बड़े महीन और सुन्दर होते हैं। पर्या०—भदैया। [देशी]

कोकड़ा—(सं०)-(शाह०)। दे०—कोकड़ा। [कोकड़ा < कोकड़ा < *ककटक]

कोचला—(सं०) लता में होनेवाला एक प्रकार का कड़वा फल। इसका फला हरा होता है, किन्तु पकने पर लाल हो जाता है। पर्या०—तिलकोच (भाग०-१)।

कोचला के साग—(सं०) एक प्रकार का साग। [कोचला के+साग]

कोचिआइल—(फि०)-(१) महुए के पेड़ में फूल के गुच्छों का होना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)।

कोचिआवल—(फि०) साड़ी या धोती को चुनना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)।

[कोचि+आवल (प्र०) < कोचि < *कुञ्च, कुञ्ची < √कुच्]

कोठला—(सं०) दे०—कोठिला, कोठी।

कोठिबा ईंट—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्ताकार ईंट (बं०-पू० मं०)। दे०—बकी। [कोठिया+ईंट < कोष्ठ+इष्टक]

कोठियारी—(सं०) गाँव में रहनेवाले सिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क (चंपा०, मं०)। दे०—मोतरफा। [कोठिया < कोठी < (संभ०) *कोष्ठ]

कोठियौ—(सं०) वर्षा से बचाने के लिए बाल-सहित कटी हुई फसल का लगाया हुआ ढेर (सा०) पर्या०—पूँज, पुँजौर (उ०-प०, पट०, गया, बं०-पू०)। [कोठियौ < कोठिया < कोठी < कोष्ठक]

कोठिला—(सं०)-(१) बाँस की फट्टी आदि से बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुर्जा (प०)। पर्या०—गड़ौआँ (पट०)। [कोठि+ला (प्र०) < कोठी < कोष्ठ] (२) दे०—कोठी। [कोठि+ला (अल्पा० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठिली—(सं०)—दे०—कोठी। [कोठी+ली (अल्पा० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठी—(सं०)-(१) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्टियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया

गोल ढाँचा (उ०-प०, आज०)। पर्या०—डोल (उ०-प०, मग०-५), ढौड़ (उ०-प०, पट०, शाह०), दोल (बं०-पू०), बिडी (कहीं-कहीं बं०)। (२) मिट्टी या ईंट का बना हुआ एक प्रकार का गोल या चौकोर घेरा, जिसमें अन्न रखा जाता है। (बिहा०, आज०)। पर्या०—कोठिला, कोठिली। (३) अन्न, भूसा आदि के रखने के लिए खुली हवा में पुआल, फट्टी, या खड़ का बना हुआ एक प्रकार का घेरा। दे०—बलार। (४) बाँस के पोखों का एक समूह (चंपा०, आज०)। [कोठ+ई (प्र०) < *कोष्ठ]

कोड़ देल—(मुहा०)—खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालना (उ०-प०, उ०-प० मं०, मं०-२)। दे०—अर खुरपी सोहल। [कोड़+देल < कोड़ल (बिहा०) कोड़ना (हि०) < √कुट् (छबने), अथवा √कुह् (बैकत्ये)। (संभ०) < कु+दार < √द (प्रवचारे) से नामधातु प्रत्यय के साथ व्युत्पन्न होकर बना हो।]

कोड़न—(सं०)-(१)-(बं० भाग०, मं०-२)। दे०—कोड़नी। (२) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टेंगुनी आदि की जोत या कुदाल आदि से की गई कोड़नी (गया, चंपा०, मं०-२)। दे०—बिदाह।

कोड़नी—(सं०)-(१) कोड़ाई, कोड़ने की प्रक्रिया। दे०—कोड़ल। (२) अनाज के खेत की छिछली कोड़ाई करके की गई घास आदि की सफाई। (३) मकई आदि के पोखों के उग जाने पर, जड़ के आसपास की मिट्टी को धीरे-धीरे कुदाल से कोड़ कर हल्की कर देने की प्रक्रिया (मं०-१, मं०-२)। पर्या०—तमनी (चंपा०, मं०), निकोनी (पट०, गया, बं०-पू०), छेजनी (बं०-पू० शाह०), कोड़न, खड़ (बं० भाग०)। (४) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजड़े, टेंगुनी आदि की कुदाल से की गई कोड़ाई।

कोड़ल—(फि०) कोड़ना, कोदना (बर०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२) पर्या०—पारल, तामल (चंपा०, मं०), छेजल (बं०-पू० शाह०),



[कोइल (प्र०), कोइना (हि०), मिला०—
✓कुट (छेवने), ✓कुट् (बैक्ये) । (संभ०)—
कु+दास् < ✓द (प्रवृत्त) से ना० घा० प्र०
लगाकर बना हो]

कोइल—(वि०) कुदाल से छोदी हुई जमीन
(चंपा०-१) । [कोइ+ल (वि० प्र०)]

कोड़ा—(सं०)-(१) उस की दूसरी छिन्नाई (पट०)
पर्या०—दोसर पटावन (अन्यत्र), दोसरो
पटावन (ब० भाग०) । कोड़नी (पट०-४,
मग०-५) । [देशी, (संभ०) < कोइल (बिहा०),
कोइना (हि०)] (२) (चंपा०-१)
दे०—कोरा । [कुर=बालों का गुच्छा] ।
(३) आग तापने के लिए बने घूर का ढेर
(चंपा०-१) । पर्या०—घूर (मै०-२, चंपा०),
घुरौरा (पट०-४, मग०-५) ।

कोड़ार—(सं०)-(१) वह खेत, जिसमें साग-भाजी
बोई जाती है (चंपा०-शाहा०-१) । दे०—कोरार ।
(२) वह खेत, जो बार-बार कुदाल से कोड़ा
जाता है (शाहा०-१) । (३) गाँव के पास की
उपजाऊ भूमि । (४) वह जमीन, जिसमें फुल-
वारी में लगाये जानेवाले पीछे पैदा होते हैं
(पट०, प०) । पर्या०—कोरियार (पट०, गया),
कोरॉट (ब० मै०), कैरियार (शाहा०), बारी
(मै०), लतिहानी (ब० मु०) । [कोड़ा+आर,
कोड़ा < कोण अथवा कोइल (बिहा०), आर
(हि०) अथवा < केदार वा कालमृद्, गौरमृद्
अथवा (संभ०) < कडार (=पीला) ?]

कोड़ी—(सं०) दे०—कोरी ।

कोड़—(सं०)-(१) सामा (श्यामाक) के जाल को
दूध में पकाकर बनाया गया एक प्रकार का भोज्य
पदार्थ (वर०-१) । पर्या०—कोड़ा (मै०-२) । (२)
एक प्रकार का भेषज चर्मरोग । [मिला०—कुष्ठ]
कोड़ा—(सं०) (१) मकई की बड़ी बाल
(मु०-१) । (२) सोने-चांदी के आभूषण को
गुंथने के लिए उसके ऊपर बना हुआ छेद
(मु०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२) ।
[मिला०—कुंडल]

कोड़ि—(सं०)-(१) हल या गाड़ी में चलनेवाला
मोटा और बालसी बेल, जो कार्य करते समय
अधिकतर बैठ जाया करता है । पर्या०—पुरुआ ।

लोको०—'कोड़ि बरद के फेरि बहुत' =
कोड़िया बेल ज्यादा हफता और उच्छवास
लेता है । (२) कोड़-रोग-ग्रस्त [कोड़ि < कोदी
< कुष्ठिन्]

कोड़िआइल—(वि०) वह पीछा, जिसमें कली
आ गई हो (चंपा०-१) । (कि०)—किसी पीछे में
कली लगना (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४) ।

[मिला०—कुष्ठ=डाली आदि का अग्र भाग ।

कोरक < (वि०)—कोरकित, कुडमल]

कोड़िया—(सं०) दे०—कोइली । [मिला०—
कोल=एक प्रकार का घुण । कुष्ठ=एक
प्रकार का रंग]

कोड़िला—(सं०) धान के खेत में उगनेवाली एक
घास (उ० मै०, वर०-१) । इस घास के डंठल
से विवाह के लिए मोर और इसी प्रकार की
दूसरी चीजें बनाई जाती हैं । दे०—लेंडई ।

[(संभ०) < *कुष्ठ, कुष्ठल अथवा कुट्]

कोदी—(सं०)-(१) ताल का वह पेड़, जिससे रस
निकाला जाता है (उ०-पू० मै०, मै०-२) ।
पर्या०—बहिरा (उ०-पू० मै०), बाँझी सिसवा
(ब०-पू० मै०), अनाड्ड (ब०-पू० मै०) ।
(२) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वराशक्ति
को चुकी हो । दे०—ग्रस । (३) (गं० उ०)
दे०—पुआ, कोड़ि । (४) कली । [कोदी (हि०)
.. कुष्ठिन् (ला० प्रयो०)]

कोतनयना—(सं०) वह बेल, जिसकी आँखें लाल
और भीतर कोटर में चँसी हुई हों (पट०-१) ।
[कोत+नयन+आ (प्र०), कोत < कोट <
कोटर+नयन]

कोदई—(सं०) (शाहा० चंपा०) । दे०—कोदो ।

[कोदो+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < कोद्रव]

कोदवा धान—(सं०) कोदो की तरह होनेवाला
एक छोटा धान (पट०-१, मग०-५, पट०-४) ।
[कोदवा+धान < कोद्रवक+धान्य] ।

कोदार—(सं०)-(१) फावड़ा, कुदाल । गिट्टी
खोदने का लोहे का बना एक औजार (ब० भाग०,
चंपा०, ब० मु०) । दे०—कोरा । [कुदार, कुदाल,
कुदाल] (२) (चंपा०) दे०—कुदारी ।

कोदारि—(सं०) (मै०-४) दे०—कुदारी ।

कोदारी—(सं०)-दे०—कुदारी ।

कोदो—(सं०)-(१) सामा की जाति का एक

कदम इस जन्म की विशेषता यह है कि भूसी-
सहित रखने पर यह पचासों वर्ष तक सुरक्षित
रहता है । पर्या०—कोदई=छोटा कोदो
(शाहा०) । (२) एक प्रकार की भदई फसल
(पट०-४) । [कोद्रव (संस्कृ०), कोदव, कुदव
(प्रा०), कोदो (हि०), कुमा०, बं०), कोदो,
कोदा, कोद्रा (प०), कोड़ीरी (सि०), कोद्रो
(गु०), कोद्रु (गरा०), कोदुरु (कश्मीर०)]

कोन—(सं०)-ब० मु०, ब्राज०) । दे०—कोनिया
जोत । [कोण (ला०) (?)]

कोनसिया—(सं०)-(१) (चंपा०, ब०-पू० मै०) ।
दे०—कोनिया जोत । [कोन+सिया < *कोणशः
< *कोणसीत्य (< सीता=जोत की रेखा)]

(२)—दे०—कोनिया घर ।

कोनसी—(सं०)—(ब० मु०) । दे०—कोनिया
जोत । [दे०—कोनसिया]

कोनाकोनी—(सं०,—(प०) । दे०—कोनिया
जोत । [कोना+कोनी (संभ०) < *कोणा-
कोण, (यथा-कणकणि, मुष्टी-मुष्टि आदि)]

कोनासी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कोला ।

[कोना+सी (प्र०) अथवा (संभ०) कोणसीत्य]

कोनाह—(वि०) दे०—कोनाहा । [कोना+ह (प्र०)
< कोना < *कोण]

कोनाहा—(वि०) वह वस्तु, जिसमें कोना निकला
हो, कोना बना हुआ (मु०-१, पट०-४, मग०-५,
मै०-२, चंपा०, भाग०-१) । पर्या०—कोनाह ।

[कोना+हा (प्र०) < कोण]

कोनिया—(सं०) बाँस की फट्टी की सीकों का बना
फटकने का साधन जिसके तीन ओर गोल मेंडू
बनी होती है । (उ० पू० मै०, वर०-१) । दे०—
मड़रा । (वि०)—कोनबांला, कोने की ओर

(मु० १) । [कोन+इया (प्र०) < कोण,
कोणिक]

कोनिया घर—(सं०) वह घर, जो किसी कोने
में स्थित हो । [कोन+इया (प्र०)+घर <
कोण, < *कोणिक घर < गृह]

कोनिया जोत—(सं०) एक कोने से दूसरे कोने
तक की ज़ताई की रीति । पर्या०—कोन,
कोनसी (ब० मु०), कोनसिया (चंपा०,
ब०-पू० मै०), कोनी (गया), कोना कोनी

(प०) । [कोनिया+जोत कोनिया < *कोण,

जोत < जोतल (बिहा०)] जोतना (हि०) <
जोजन / ✓जुज् (योगे)]

कोनी—(सं०)—(गया) । दे०—कोनिया जोत ।

[कोन+ई (प्र०) < कोण, कोणिक]

कोपड़—(सं०)—(चंपा) । दे०—कोपड़ । [कोमल
(?) , कुडमल]

कोबी—(सं०)-(१) एक प्रकार की तरकारी का
छोटा पीछा, जिसके बीच में बड़ा पसरा हुआ
फूल होता है । (२) ओषध के लिए प्रयुक्त
एक वनस्पति-विशेष । [कोबी < गो < गोजिहा
(संस्कृ०) कोभी, गोभी (हि०), दाड़िशाक,
दाड़िशाक गोजिया (बं०), पाथरी, भुइयारी
(मरा०) भोपाथरी, मुइयात्रा, जिमी (गु०),
येदुनालुक चेट्टु, भरिलिक चेट्टु, (सं०)
घाउन (कों०), यलुना गले (क०) कलम रूमी
(फा०, भारोप०-कैबेज ग्रं०), पुर्त०—कोउदे]

कोम्हड़—(सं०)—(उ० मै०) । दे०—कोहड़ा ।

[कुम्मांड]

कोयन—(सं०)—(ब० मु०) । दे०—कोइन ।

कोयरी—(सं०)—(वर०-१) । दे०—कोहरी ।

कोयला—(सं०) चूल्हे या इंधन में जलाया
जानेवाला लकड़ी का बनाया या खान से
निकला इंधन-विशेष । [कोकिलक (संस्कृ०),
कोल (ग्रं०)]

कोयला फर्नेस—(सं०) कोयले से जलाया जाने-
वाला बड़ा चूल्हा, जो बड़ी-बड़ी मिल्हों और
फैक्टरियों में रहता है । ऐसे चूल्हों का उपयोग
वाष्प-शक्ति तैयार करने के निमित्त बड़े-बड़े
पीपों को गर्म करने के लिए होता है (बिहा०) ।

[कोयला+फर्नेस < कोयला (हि०) + फर्नेस
(ग्रं०), कोयला < कोकिलक]

कोरंजा—(सं०)-(१) वह मजदूर, जिसे मज-
दूरी में प्रधानतः नकद रुपये ही दिये जाते हैं
(उ० पू०) । (२) भोज-भंडारे में दही-चूड़ा-
पुड़ी आदि का पक्का भोजन । इसके विपरीत
कच्चे भोजन को 'मतवान' कहते हैं । [देशी],
॥ मिला०—कोरंजा < कोर + अनाज = वह जन्म
जो मजदूरी में दिया जाय (हि० शा० सा०)]

कोरई—(सं०)-(१)-(शाहा०) । दे०—कोरो ।
(२) (चंपा) दे०—कोरो-३

कोरट—(सं०) वह स्टैंड, जिसकी देखभाल का

कार्य सरकार की ओर से होता है (सा०-१, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कोर्ट, कोर्ट आफ वाटर्स (सं०)]

कोरवास—(सं०) पान की पंक्तियों के आधार-स्तम्भ के बीच का अवकाश (उ०-पू० सं०)। [कोर+वास, मिला०—कोर (हि०)=पंक्ति, श्रेणी, करता। कोर=पोर, अंगों की संधि]।

कोरौट—(सं०)-(१)-(२० सं०)। दे०—कोरार [(बेशी) (सं०)] केदार+मृद, अथवा काला+मृद, गौर+मृद। (२) कटि आदि के गड़ जाने से पंर के तलवे में हो गया चट्टा। पर्या०—कोरौटी।

कोरौटी—(सं०)—दे०—कोरौट (२)।

कोरा—(सं०) छोड़ा हाँकने का चाबुक। पर्या०—कोड़ा, चाबुक। [कवर (संस्क०)=बालों का गुच्छा]।

कोराइ—(सं०)-(१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर निकाला गया निष्फल मोटा अंश (पट०, सं० ५०)। विशेषकर दलहन दलने के बाद निकली ऊपर की भूसी (पट०)। दे०—चोकर। (२) चावल या चिउरा कूटने पर उससे निकली वह महीन भूसी, जिसमें अंश के ऊपर का महीन अंश मिला रहता है (चंपा०-१)। [(बेशी)—मिला०—कंडंगर, कंड्य < √कड (भेबने), कौंडा (मरा०)]

कोराई—(सं०) दे०—कोराय।

कोराना—(सं०) देतन के बदले नीकर को दिया जानेवाला अनाज (५० मु०)। दे०—मनी। [कोर+आना—कोरा+अनाज (हि०) सं० सा०]

कोराबाल—(सं०) काफी बाल जमा हो जाने के कारण बेकार जमीन (सा०)। पर्या०—बलान (उ० प० सं०)। [कोरा+बाल < कोरा+बालू < कोरा < केवल]

कोराय—(सं०) दलहन का छिलका (भूसी), जो पशुओं का पुष्ट भोजन है (मु०-१)। पर्या०—कोराई (पट०, चंपा०, मग०-५, भाग०)। [(बेशी) मिला०—कंडंगर, कंड्य < √कड (भेबने)]

कोरार—(सं०)-(१) दे०—कोड़ार; गोएंड, डीह। [कोर+आर, कोर < कोर्य; आर (हि०)

अथवा केदार (संस्क०), वा काल+मृद, गौर+मृद > गोरट, गोरौट]

कोरियार—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—कोड़ार। [मिला०—वैदार्थ अथवा कदारिक]

कोरी, कोड़ी—(सं०) पान की २० पंक्तियों अथवा किसी भी दूसरी वस्तु की एक राशि। बीस का समूह (सं० २०, पट०-४, मग०-५, चंपा०, सं०-२)। पान के पत्तों के कुछ परिमाण निम्न-लिखित हैं—चोठया—पान की पचास पंक्तियों की एक राशि (सं० २०)। आधा डोली—पान की १०० पंक्तियों की एक राशि। एक डोली—पान की २०० पंक्तियों की एक राशि।

सं० उ० और बाहु० में निर्मांकित परिमाण हैं—
७ डोली=१ कनवा।
१४ डोली=१ अचवा।
२८ डोली=१ पीया या पावा।
४ पीया=१ लेंसो।
१०८ डोली=१ लेंसो (सं० २०)।

[(बेशी), मिला०—कपदिनु (संस्क०), स्कोर (सं०)]
कोरीकरल—(मुहा०) पशुओं द्वारा लाई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्ध (पागुर) करना (पट०, गया)। दे०—पगुरो करल। [कोरी+करल; कोरी < कवल (< कवलो + √कृ)]

कोरो—(सं०)-(१) पान की पंक्तियों का प्रधान अवलंब (सं०, चंपा०, मग०-५)। पर्या०—कोरई (शाहा०), इकरी (सं०, पू०, सा०)। (२) पान के बाग में ऊपर दिये गये छप्पर का आधार-स्तम्भ। पर्या०—खंभा (पट०, गया), खाम्हा। (३० मु०)। (३) घर में लगे छप्पर का आधार-स्तम्भ। यह लकड़ी या बाँस का होता है तथा कड़ी के रूप में काम में जाता है (बिहा०, भाग०)। [(बेशी), मिला०—कुड्य, कुट्य]

कोलटारा—(सं०) कोयला टालने या उसकाने की लोहे की छड़, जिसका एक छोर टंडा और दूसरा छोर हाथ में पकड़ने लायक बना होता है। (बिहा०)। दे०—बैकुड़ा। पर्या०—बैकुड़ा (हरि०)। [कोल (सं०) वा कोयला (हि०)+टारा (< टारना-हि०)]

कोलवासी—(सं०) (१) आम का दागदार टिकोला (चंपा०-१)। (२) आम के टिकोले की कोमल गुठली (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)

(३) वह आम, जो चोट खाकर काला पड़ गया हो (शाहा०-१)। [कोल < वॉसी < *कुल्माष, < *कल्माष]

कोलवा—(सं०) कोने वाला, तंग जगह में पड़ने-वाला (मु०-१)। पर्या०—कोलक घर=कोनिया घर (मु०-१), कोला (मग०-५)। [कोल+वा (प्र०) < कोण]

कोलवाइ—(सं०) जमीन का छोटा टुकड़ा, जो घर के पास हो (उ०-प०)। दे०—कोला। [कोल+वाइ (प्र०) < कोण]

कोलसार—(सं०)-(१) दे०—गुड़ीर। (२) (पट०, गया, पू०)। दे०—कोल्हवार। [कोल+सार; कोल < कोल्ह < कुलहंडक (=तोड़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला)+सार < शाला]

कोलसार, कोल्हसार—(सं०) वह स्थान, जहाँ ऊँख पेरकर गूड़ बनाने के लिए कोल्ह बैठाया जाता है (मु०-१, पट०-४, मग०-५)। [कोल+सार < कोल्ह+सार < शाला; कोल्ह—मिला०—कुलहंडक=तोड़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला]

कोलसुप—(सं०)-(१) अनेक प्रकार के अन्नों को फटकने, पंचने और चालने के लिए प्रयुक्त एक साधन, जो बाँस की कमाचियों या मूँख की सीकों का बना



कोलसुप

होता है। दे०—सूप। (२) अनाज फटकने के लिए प्रयुक्त एक साधन। पर्या०—डगरा (उ०-प० सं०, चंपा०), सूप। [कोल+सुप, कोल (बेशी) वा कोल < क्रोड; सुप < शूर्प]

कोलहकड़—(सं०) ऊँख के कोल्ह को ठीक (दुबस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बड़ई को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०)। दे०—पचरावन। [कोलह+कड़ < कोल्ह+कड़ < काढ़ल (बिहा०) < कर्ष < √कृष्]

कोलह पचरानी—(सं०)-(३० भाग०)। दे०—कोलह कड़ और पचरावन। [कोलह+पचरानी, कोलह < कोल्ह, पचरानी < पचर (बिहा०), (हि०) < पचनिका (संस्क०)=हल का एक भाग, टुकड़ा]

कोलासी—(सं०) दे०—कोलवासी।

कोला—(सं०)-(१) जमीन का वह छोटा अंश, जो घर के पास हो तथा शाक-भाजी उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता हो (शाहा०, उ०-पू०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कोली, कोलवाइ (उ०-प०), बारी (चंपा०, सं०), खंड, खंडू (सा०, पट०) (वस्तुतः इसका अर्थ है ध्वस्त घर), घेवारी (गया), गल्की (बैक० नाम व० भाग०), कोनासी (बैक० शाहा०)। (२) दे०—कोलवा। (३) चारों ओर डरेर (भेड़) से घेरकर बनाया गया खेत (चंपा०-१)। [कोल=गली, तंग रास्ता, तंग जमीन का एक टुकड़ा]

कोलिऐती असासी—(सं०) साधारण काश्तकारों के स्तर से नीचे का एक छोटा रंगत (पू० सं०)। दे०—सिकमी। [कोलिऐती+असासी]

कोलिया—(सं०) चारों ओर भेड़ से घिरा हुआ खेत का छोटा टुकड़ा (शाहा०-१, चंपा०, सं०-२)। [कोल]

कोली—(सं०)-(उ०-प०)। दे०—कोला।

कोल्ह—(सं०) ऊँख या तेल पेरने का यंत्र (बिहा०, भाग०)। पर्या०—कोल्ह, कल। दे०—कोल्ह। [< कुलहंडक]

कोल्हकर—(सं०)-(३० मु०)। दे०—कोल्हकड़ और पचरावन। [कोल्ह+कर < कोल्ह+कर] कोल्हआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ कोल्ह गाड़ा जाता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कोल्ह+आड़ < कोल्ह+वाट < कुलहंडक+वाट]

कोल्हआर—(सं०)-(१) ऊँख पेरने तथा गूड़ बनाने का स्थान। पर्या०—गोलौर (उ०-प० शाहा०), कोलसार (पट०, गया, पू०), कोल्ह-आड़ (चंपा०-१)। (२) दे०—गुड़ीर। [कोल्ह+आर < कोल्ह+आड़ < कुलहंडक+वाट]

कोल्ह—(सं०)-(१) ऊँख पेरने की कल, जो आज-कल लोहे की बनी होती है और

इसमें तीन बेलन लगे रहते हैं। पहले यह लकड़ी अथवा परधर का, आजकल के तेल के कोल्ह की तरह, बना होता था



और इसमें ऊँख काटकर दिया जाता था।

ऊपर लोहे का मोहन लगा रहता था, जिससे उसका टुकड़ा पेरता था। (२) तेल पेरने की, लकड़ी की बनी कल।
 मिला०—कूलहंडक (संस्क०), कोलुओ (देशी), कोलू (हि०), कोल (ने०)।
 कोसिला—(सं०) पारिवारिक संपत्ति के अतिरिक्त जमा की जानेवाली व्यक्तिगत संपत्ति (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [(सं०) < कुसूल कोश]
 कोस—(सं०) ३५२० गज या दो मील की दूरी की एक नाप। (अंग० के अनुसार इसकी दूरी में अंतर होता है)। [कोश]
 कोसल—(सं०) गुप्त घन। पर्या०—पौगली, कुल्पी, धरोहर (म०-१, म०-२, मग०-१)। [कोसल < कुसूल, कोश]
 कोसा—(सं०)-(१) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (ब०-५० म०, चंपा०, म०-२)। दे०—लोइया। (२) आम के फल में होनेवाली गुठली (चंपा० १)। (३) आम के बीज का गुदा (गिरी), जिसकी रोटी भी पकाई जाती है (म०-१)। [कोश (संस्क०), कोस (पा०, प्रा०) कोसा (हि०)। कोसो (ने०)=बीजकोश, कोसा, कोसी (ब०) अनाज की वाली या भुट्टे आदि के ऊपर रेशे का गुच्छा]
 कोसी—(सं०) एक साथ उत्पन्न जो और मटर का मिश्रण (ब० भाग०)। दे०—जो-केराई। [(देशी), कोशिका]
 कोसुम—(सं०)-(म०-४०)। दे०—कुसुम। [कुसुम]
 कोइड़ा—(सं०)-(शाहा०-१, चंपा०)। दे०—कुम्हा। [कुम्हाण्ड]
 कोहा—(सं०)-(१) अन्न रखने का मिट्टी का बर्तन। पर्या०—कटिया (उ०-पू०, ब०-५० म०), करवा (चंपा०)। (२) दही घनने का मिट्टी का बर्तन, जिसकी पंढी में बाहर से अतिरिक्त मिट्टी लगा दी जाती है। (३) कटोरे के बाकार का मिट्टी का एक पात्र (चंपा०, शाब०) [कोश = पात्र—“कोशोऽस्त्री कुड मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके”—(मेदि०), कोहा



(अस०)=तबे का जलपात्र। कोस (म०)=चमड़े का बना बाल्टी-जैसा पात्र]
 कौकरी—(सं०) चठल या खेससा-नामक फल, जिसकी तरकारी बनती है (म०-१)। दे०—चठल। [कर्कटा]
 कौरी—(सं०) सामा के बावल की लीर (पट०-१) [(देशी), मिला०—कौनी < कंगु]
 कौआ-भूपान—(सं०) (ब०-५० शाहा०)। दे०—कौआ लुकान। [कौआ+भूपान (देशी); कौआ < काक, काकोल। भूपान (देशी)]
 कौआभोग—(सं०) मृण के अनुसार नाम का एक भेद (बर०-१)। [कौआ+भोग; कौआ < काक, < काकोल]
 कौआरा—(सं०) एक पशु-साध घास (पू० म०) [(देशी), मिला०—कावार=एक जलीय घास (म० बि० डि०)]
 कौआलुकान—(सं०) लगभग छह इंच का ऊँचा नया पौधा, जिसमें कौआ छिप सकता हो (गया, सा०, शाहा०)। पर्या०—कौआ-भूपान (ब०-पू०), कौआ-लुकान (चंपा०-१), कौआ-भूपान। [कौआ+लुकान (देशी)। कौआ < काक < काकोल। लुकान लुकावल (बिहा०), लुकावा (हि०) < लुप् < त्रि + ली]
 कौआ हाँकल—(सं०) खेत से कौओं को हटाना (हाँकना)—सर्वत्र। दे०—हाँकी। [कौआ+हाँकल। कौआ < काक, < काकोल। हाँकल (अनुकरणमय शब्दपरक), वा < आ + √हं]
 कौकड़ी—(सं०) एक प्रकार की बरसती लता का फल, जिसकी रसदार या सूखी स्वादिष्ट तरकारी बनती है (ब० भाग०)। दे०—चठल। [कर्कटी]
 कौड़—(सं०)-(प०)। दे०—घूर। [कूट, कौट]
 कौड़ी—(सं०)-(१) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (उ०-प०)। पर्या०—मलिकाई चूटकी (ब०-पू० म०), बयाई (शाहा०), किराया (गयः), मोंगनी, किआकी, केबासी (उ०-पू० म०), बरदाना (पट०)। (२) समुद्र में उत्पन्न होनेवाला शंख की जाति का एक जीव, जिसका अस्थिकोश भारत में पैसे से कम मूल्य के सिक्के के रूप में व्यवहृत

होता था। इससे बेलों का भूषण बनाया जाता है और बच्चे इससे खेलते हैं।
 [कौड़ी < *कपई (संस्क०), कवड्ड (भा०), कौड़ी (हि०), कौड़ी (ब०, ओ०, कुमा०), कौड़, कौड़ा (प०), कौड़ी (ल० प०), कौड़, (सि०), कौड़ें, कौड़, कौड़ी (म०), कवड्ड, कवड़ी (मरा०)]
 कौनी—(सं०) बाजरे की जाति का सूक्ष्म दानों का एक अनाज (म०-२, पट०-४, मग०-५, भाग०-१, चंपा०-१, बर०-१, म०-१)। [कड्डु (संस्क०), कुंगुनी, कांकुनी, कौनी, टंगुनी (हि०), काँगुनी, कानी धान (ब०), काँग (मरा०), काँग (म०), नवणे (कन्न०), प्रेक्कण पुचेट्टु (तेलु०), गल अरजुन (का०), दुखन (प्र०)।]
 कौर—(सं०)-(१) भूमि को खोद कर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि जलाकर जाड़े की रात में ग्रामीण लोग तापते हैं (प०)। दे०—घूर। (२) पीसने के समय जीता में एक बार दिया जानेवाला अन्न-परिमाण। दे०—झींक। (३) खाने के समय मुँह में एक बार जानेवाला भोजन का परिमाण। [कुंड]
 कौराकादल—(मुहा०) आदकर्म में भोजन के पहले कोए आदि तिर्यग्योनि के निमित्त उड़द की दाल और भात के कौर का निकाला जाता।
 कौर जाएल—(मुहा०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (उ०-पू० म०)। दे०—विजमार। [कौर+जाएल, कौर (देशी), कौरना (हि०)=घोड़ा भूना, सँकना। मिला०—कुडि (दाहे)=जलना]
 कौरीकरल—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्ध (पागूर) करना (पट०, गया, चंपार)। दे०—पगुरी करल। [कौरी + करल। कौर < कवर < कवरल (कवली + √कृ)]
 कौवा—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध काला पक्षी, काक; (२) एक प्रकार की मछली, जो अंगुली के समान गोल और लंबी होती है एवं जिसका मुँह कौवे की चोंच के समान होता है (चंपा०)।

पर्या०—कौवा ठोठी। [कौवा < √*काकोल]
 कौवा-भूपान (सं०) दे०—कौआ-भूपान।
 कौवा-ठोठी—(सं०)-(१) (म०-२)। दे०—कौवा-(२)। (२) एक लता, जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा कौवे की चोंच की तरह लंबे होते हैं। [< *काकतुण्डी]
 कौवा लुकान—(सं०)-(चंपा०-१)। दे०—कौआलुकान।
 कौवा हाँकल—(मुहा०) दे०—कौआ हाँकल।
 कृत्तिका—(सं०) तीसरा नक्षत्र, कृत्तिका। छह तारों का यह नक्षत्र होता है। [कृत्तिका < कृत्ति < √कृत्]
 क्वाड—(सं०) चीनी-मिल में उस के रस को गाढ़ा करनेवाला एक चौकोर यंत्र (बिह०)। [क्वाड < क्वाड वा क्वाडूट (अ०)=वर्गाकार]
 क्वाड-मैन—(सं०) चीनी-मिल में क्वाड पर काम करनेवाला कर्मचारी (बिह०)। [क्वाड+मैन (अ०)]
 क्वार—(सं०) आखिन मास, कुमार। दे०—आसिन, कुमार। [क्वार < कुआर < कुमार(?)]

ख

खँखड़—(सं०) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (शाहा०-१)। दे०—खँखड़। [देशी]
 खँखड़ा—(सं०)-(१) अन्न का बड़ ढाँचा, जिसमें केवल भूसा ही हो, अन्न का अंश न हो (चंपा०-१)। पर्या०—खँखरी (शाहा०)। (२) एक पौधा-विशेष, जिसके डंठल से मोर बनता है। कभी-कभी औरतें अपने कान के छेद को बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग करती हैं। [(देशी), मिला०—कंकाल=हड्डियों का ढाँचा-मात्र; खँखर, खँखर (संस्क०)=छिद्रवाला, खँखर=कठोर, घना]
 खँखड़ी—(सं०)-(१) अन्न के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जिससे बाल में दाँत नहीं होता। (२) यह अन्न कोश जिसके अन्दर अन्न उत्पन्न ही न हुआ हो। खँखड़ा का स्त्रीलिंग। [(देशी), मिला०—कंकाल (संस्क०) =

हड्डियों का ढाँचा। खैर, खैरखर (संस्कृत) = छिद्रवाला, खैरखट (संस्कृत) = कठोर, घना (म० वि० डि०), खैर = कंक = छछा, खाली (हि० शा० सा०), कंकट (संस्कृत) = कवच, ऊपरी आवरण]

खैर-खैरी—(सं०) (शाहा०) दे०—खैरडा।

खैरगड़ीवा—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तंबाकू (पू० बिहा०)। दे०—पनउठिया। [(बेशी), मिला०—खैगी < खंगना (< खि-जये) = खीजना, घटना; खैगी + डीवा (< प्रजोर ?)]

खैगरा—(सं०)—(१) ताड़ (ताल) का नया पेड़ (पट०-४, मग०-५, चंपा०)। (२) ताड़ का डंठल-सहित पत्ता (चंपा०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—खगरा, खगरी (पट०-४, मग०-५, म०-२, चंपा०)। [(बेशी), मिला०—खगड = एक प्रकार की बेंत]

खैरडा—(सं०)—(१) पंक्ति, दलदली जमीन या धारा के साथ बहकर जमी हुई मिट्टी (ब०-प० शाहा०)। दे०—भास। (२) बदमाश, वण-संकर। [खैच + डा (प्र०) < कच्छ, < खच्छ]

खैरडाह—(सं०) वह अन्न, जिसमें कई अन्नों की मिलावट हो (चंपा०-१)। पर्या०—सतंजा (पट०-४, म०-२, मग०-५, चंपा०)। [खैज + डाह, मिला०—खैजकारि = खेसारी; मिला०—खैज (मन्थे), खैचू (समवाये = मिलाया)]

खैर—(सं०)—(१) (शा०, पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कोला। [खंड] (२) (ब० भाग०)। दे०—कोइल, कोइनी। [खैर < खडि]

खैरचर—(सं०)—(ब० शाहा०)। दे०—खैरचाड़ी। [खैर + चर; खैर < खंड। चर < चौड़ी = (बिहा०) = अवलंब, स्तम्भ]

खैरमोड़ा—(सं०) हथेली (लकड़ी का काबड़ा-जैसा बना औजार) से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गया)। दे०—हथ-वाहा। [खैर + मोड़ा < खंड (= जमीन का टुकड़ा, बयारी) + मोड़ा < मोड़ल (बिहा०), मोड़ना (हि०)]

खैरवाह—(सं०)—(पट०)। दे०—खैरमोड़ा और हथवाहा। [खैर + वाह < खंड (= जमीन

का टुकड़ा, बयारी) + वाह (प्र०) या वाह < वृह]

खैरवाहा—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (पट०)। दे०—पनमोरा। [खैर + वाहा < खंडवाह]

खैरसारी—(सं०) लाड़ (चीनी) तैयार करने का स्थान (म० ब०, पट०-४, मग०-५)। दे०—चीनी के कारखाना। [खैर + सारी < खंड + शाला; खैर (हि०)]

खैरहुल—(सं०)—(१) खड़ का जंगल (चंपा०, म०-२)। दे०—खदौर। (२) दे०—खंडू (पट०-४, मग०-५)

खैरहू—(सं०) पानी के वेग से बांध का फटना या कट जाना (गया)। पर्या०—खधिया (म०-२), खैरहुल (पट०-४, मग०-५) [खैर + हू < खंड]

खैरडा—(सं०)—(१) गृहस्थी के काम में आनेवाला लकड़ी आदि काटने का एक औजार (मु०-१)। (२) घर या खेती की सामग्री (पट०-४)। [< खंड, खड्डा]

खैरधार—(सं०)—(१) (गया)। दे०—खैरवाहा और पनमोरा। (२) बांध के पास टूटकर बना गड़वा (मग०-५)। [खैर + धार < खंड]

खैरौरा—(सं०)—(ब०-प० शाहा०)। दे०—खैर। [खैर + औरा। खैर < खंड; औरा < चौरा चाउर < चावल (हि०) < तंडुल (संस्कृत)। मिला०—खैरौरा (हि०) = मिसरी का लड्डू, ओला; खैरौरी (हि०) = चावल का टुकड़ा। खैरउलि (ने०), खैरदी < खैर—(नेपा०)]

खैर—(सं०) परती जमीन, जहाँ तरकारी वगैरह बोई जाती है (पट०-२)। [(बेशी) मिला०—खैरा (मग०) = गढ़ा]

खैतर—(बि०) खोदनेवाला (मु०-१)। [खनित्र (संस्कृत), खण्टे, खेंते (मरा०) < खनित्रक (बला०)]

खैता—(सं०)—(१) पानी के भीतर का बना हुआ गड़वा (मु०-१)। (२) नदी-नाले के पास खोदा हुआ गड़वा। (३) भट्टी में जलती हुई घाग को उसकाने के लिए प्रयुक्त लोहे की छड़। (४) खोदने के लिए लोहे का बना एक लंबा औजार। (५) (ब० भाग०) दे०—खैर।

(६) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (ब०-प० शाहा०, ब०-प० म०)। दे०—खनित, तरहा। [खैत, खनित्रक < खैन्]

खेती—(सं०) जमीन खोदने के लिए लोहे का बना एक औजार (मु०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२)। [खनित्र, खनित्रका (संस्कृत), खनित्री (प्रा०), खनिच (प्रा०), खेती (हि०), खेन्ति (ने०), खेंति (अस०), खेंता (ब०), खण्टी, खण्टा (मो०), खण्टें (मरा०)]



खेती

खंध—(सं०) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग। (खंध के खेतों की खाता-खंधा एक होती है, किन्तु प्लाट-सं० प्रलग-प्रलग होती है पट०-४, मग०-५)। पर्या०—खंधा, कित्ता, कित्ता (पट०, गया)। [खंध < स्कंध = समूह (खेतों का समूह)]

खंधा—(सं०)—(पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—खंध। [खंध < स्कंध = समूह (खेतों का समूह)]

खैरौट—(सं०) खेती की हुई भूमि के एक बड़े भाग का उपभाग, जो और भी कई टुकड़ों में बँटा रहता है। दे०—खंध। [खैर + औट; खंध < स्कंध = समूह (खेत-समूह), औट < आवट, आवर्त्त]

खैरा—(सं०)—(१) कुएँ की जगह पर गाड़ा हुआ दो नोकवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (पट०, चंपा०, ब०-पू०, पट०-४, मग०-५, म०-२)। दे०—बुरही। (२) दो कानियोंवाला ऊँचा लंबा स्तम्भ, जिसपर लाठी लटकता रहता है। पर्या०—धुरैया (पट०, शाहा०), धुरई (प०)। (३) लेंकी का वह स्तम्भ, जिसपर लेंकी टिकी रहती है (ब०-प० शाहा०)। दे०—जंघा। (४) (पट०, गया)। दे०—कोरो। (५) किसी वस्तु के अवलंबन के लिए जमीन में गाड़ा हुआ स्तम्भ। पर्या०—खम्हा, खन्दिआ (बिहा०,

आज०)। [स्कम्भ (संस्कृत), खंभा (हि०), खम्बा (ने०)]

खंभार—(सं०) दे०—खम्हार।

खई—(सं०)—(१) गड़वे का किमारा, मेड़। पर्या०—खाई, खत्ता, खावौ, खंता (ब० भाग०), डोभरा = छोटे गड़वे की मेड़ (गया)। (२) गहरा खेत (चंपा०, म०-२)। [खई < खेय (= परिखा)]

खचरा—(सं०) दे०—खौर।

खडवा—(सं०)—(१) ताड़ की छाल (पट०-२)। (२) ताड़ के पत्ते के काटने पर बचा हुआ सूखकर गिर जानेवाला पत्ते का मूल भाग (पट०-४, मग०-५)। [< खोलक]

खखड़ी—(सं०)—(मु०-१, म०-२)। दे०—खैरड़ी।

खखरा—(सं०)—(१) अनाज के ऊपर का छिलका। धान या किसी भी अनाज का बिना दाने का निष्फल छिलका (ब० भाग०, ब० मु०, मग०-५)। दे०—भूसा। (२) खलिहान में पड़ा हुआ निष्फल अनाज (प०, उ०, मग०-५, पट०-४, मग०-१)। दे०—पटपर। [मिला०—खैरडा]

खखसी—(सं०)—चटेल नाम की एक तरकारी। यह महीन काटदार तथा गोल आकार की होती है। पर्या०—खेखसा (मु०-१, पट०-१, पट०-४)। [देशी]

खखोड़नी—(सं०)—(बर०-१)। दे०—खखोरनी।

खखोरन—(सं०)—(१) अफीम के बरतन से खुरचकर निकाली गई अफीम (गया, ब०-प० शाहा०, मु०-१)। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। दे०—खुरचन। [अनु०]

खखोरनी—(सं०) वर्षा या सिंचाई के बाद धूप लगने से खेत की मिट्टी कड़ी हो जाने पर उसे मृदायम करने के लिए, लोहे के कांटों का बना हुआ हल (म०, चंपा०-१, म०-२)। दे०—कांटा। पर्या०—खखोड़नी (बर०-१)। [अनु०, वा (बेशी), खखोरल (बिहा०), मिला०—अनु०—खटखटायेते (संस्कृत), खडहड (प्रा०), खखोराना, खटखटाना (हि०),

खरखान (बं०), खरखर (ग्र०), खड़खड़नु (गु०), खड़खड़ने (मरा०), खरखानु (ने०)।
 खसारी—(सं०)।(चंपा०-१, मै०-२)।
 दे०—खसोरन, खुरचनी।
 खगड़ा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)।
 [(देशी), मिला०—खगड़ = एक प्रकार की घास, सरपत (मो० वि० डि०)]
 खगरा—(सं०) दे०—खंगरा।
 खगरी—(सं०) दे०—खंगरा।
 खचोला—(सं०) भूसा रखने के लिए बाँस या रहठे की बनाई गई एक प्रकार की छोटी टोकरी (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५)। [(देशी) मिला०—खसु = बाँधना]
 खजड़ाह—(सं०) कई प्रकार का मिला हुआ अनाज (चंपा०-१)। [मिला०—खजड़ाह]
 खजाना—(सं०)।(१)—(सं० ब०)। दे०—कानर, थेवका। (२) धान की उपजवाली ऊँची समतल भूमि के चारों ओर का वह लंबा बाँध, जो पानी को रोक रखता है (दे०, उ०-५०, पट०-४, मग०-५)। दे०—डंडड़ी। (३) गाँव के पास का वह जलाशय, जो चारों ओर बाँध से घिरा हुआ होता है तथा जिसका पानी आसपास की जमीन की सतह से ऊँचा होता है। इसका उपयोग खेतों की सिंचाई में किया जाता है (पट०, गया, ब० मु०, पट०-४, मग०-५)। (४) लालटेन का निचला भाग, जिसमें तेल रहता है। (५) कोष, आँडार। (६) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (उ०-पू० मै०, बर०, चंपा-१)। दे०—मालगुजारी। (७) *नील के कारखाने में पानी इकट्ठा करने की बावली। [खजानह (ग्र०); खजिना (मरा०)]
 खजुरबन्ना—(सं०) खजूर के पेड़ों से भरी हुई जगह (पट०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२)। [खजुर + बन्ना < *खजूर वन]
 खजुरिया—(सं०) वह बीज आम, जो खजूर की तरह लंबा होता है (पट०-१)। [खजुर + इया (प्र०) < खजूर < *खजूरैक]
 खजूर—(सं०) (१) ताड़ की जाति का एक वृक्ष, जो सीधा और लम्बा होता है तथा जिसके फल छोटे, पीले और एक साथ गुच्छे

में लटके रहते हैं। पकने पर फल खाया जाता है। इसके वृक्ष से नीरा (ताड़ी) भी निकलता है। इस पेड़ में फलनेवाला फल (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, भाग०-१, बर०-१, सा०-१, पट०-१)। [खजूर (संस्कृ०), खजुरी (पा०), खजूर (प्रा०), खजूर, खिजूर (हि०, पं०, ल०) खेजूर गाल, खाजूर (बं०), खजूर, शिन्दी, शिन्धी (मरा०), खजुरी (गु०), खाजूर (अस०), खजुरी (ग्र०), खजर (कदम०), इचुली, इंचुल, करि इंचुल (कन्न०), इष्टाचेदु, खजुर पंडु (ते०), कडुरु (सिंह०), तमर खतव, खुरमाय हिंदी (फा०), खुरमातर, रतव हिंदी (ग्र०)]
 खटल—(क्रि०) खटना, परिश्रम करना (चंपा०-१)। [(देशी), संभ०—< घट्ट (चेष्टायाम्)]
 खटाई—(सं०)।(१) चना की पत्तियों पर पड़ा हुआ धारांश। दे०—नोनी। (२) आम की सुलाई हुई खटाई। (३) खट्टापन (बिहा०, आज०)। [(देशी), मिला०—कट्ट]
 खटावल—(क्रि०) खटल क्रि० का प्र०। खटाना, पूरी मेहनत कराना।
 खड़—(सं०) दे०—खड़।
 खड़कट्टा—(सं०) (चंपा०, ब० भाग०)। दे०—खड़मोड़ा और हथवाहा। [खड़ + कट्टा; खड़ < खंड; कट्टा < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < कृन्त]
 खड़चर—(सं०)।(पट०, गया)। दे०—खेरचाँड़ी। [मिला०—खड़चर]
 खड़तरोई—(सं०) एक प्रकार की तरोई, जो तरकारी के काम में आती है। इसका छिलका मोटा और धारीदार होता है (शाहा०-१)। [खड़ + तरोई (देशी)]
 खड़बिड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची (असमतल) जमीन (पट०-४, मग०-५, शाहा०-१)। [खड़ + बिड़ + आह (प्र०); संभ०—< खड़ < खडु < *खात, गर्त; बिड़ < विट (विद्योत्री...भेदि०)। खड़बड़ (ने०), खड़बड़ी (सि०), खरवर (हि०)।(नेपा०)]
 खड़मास—(सं०) पूस या चैत का महीना, जिसमें विवाहादि शुभ कार्य व्रजित होते हैं (मु०-१)।

पर्या०—खट्मास, खरमास (चंपा०, मै०-२)।
 [खड़ + मास < खर + मास]
 खड़हा—(सं०)।(१)(ब०-पू० मै०)। दे०—खेड़ा।
 (२) एक जंगली जानवर, जो बिल्ली की तरह और तेज दौड़नेवाला एवं उजला या चितकबरा होता है—खरहा। [खड़ + हा < खंड, खात]
 खड़ही—(सं०) एक प्रकार की घास, जिससे चर छाया जाता है (बर०-१, मै०-२)। [(देशी), मिला०—खर, खड़]
 खड़ा—(सं०)।(१) बिना हँगा दिये जुता हुआ खेत। (२) फसल का खेत में लगा रहना। (वि०) (३) खड़ा हुआ। [देशी]
 खड़ा टाल—(सं०)।(१) अनाज निकालने के पहले मकई, रहर, आदि का, कटी फसल को सुखाने के लिए उसके ऊपरले भाग को ऊपर करके रखा हुआ, ढेर (गं०-उ०)।(२) टाल की सूखी जमीन, जिसमें वर्षा के बभाव से नमी न हो (मग०-५) [खड़ा + टाल, मिला०—आटाल = ऊँचा भवन]
 खड़ारा—(सं०) दे०—खड़ार।
 खड़ुआ—(सं०) धान का खड़ा पुआल (मु०-१); कतरा। [खड़ा + उआ]
 खड़ुका—(सं०) अफीम या किसी फसल के खेत में उगनेवाली एक घास (उ०-पू० मै०, शाहा०)। आजकल यहाँ अफीम की खेती नहीं होती है। पर्या०—खरथुआ (पट०, गया), बथुआ, मोचहि (सामा०)। [देशी]
 खड़ो, खौड़—(सं०) पानी बहने के लिए मंड काटकर बनाई गई नाली (मु०-१)। [देशी, मिला०—खंड]।
 खड़दा—(सं०)।(१) हँगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चुन करने के लिए बनाया गया गड्ढा (कहीं-कहीं)। दे०—घघरी। (२) गड्ढा। [< *खात, < *कथ]
 खड़ही—(सं०)।(३०-५० शाहा०)। दे०—खौड़ी।
 खड़—(सं०) खर, घाम। एक विनोय घास, जिससे छप्पर छाया जाता है (भाग०-१, चंपा०)।
 पर्या०—खर, खड़ [खड़ < खर, कट]।
 खड़ार, खड़ारा—(सं०) धान के खेत की पहली जुताई (मु०-१)। [देशी, मिला०—खड़ा]

खड़िआवल—(क्रि०) खेत को जोतकर बिना हँगा दिये छोड़ देना (चंपा०-१)। [< खड़ा, < खंड]
 खदौर—(सं०) वह जमीन, जहाँ छप्पर छाने के काम में जानेवाली घास पैदा होती है।
 पर्या०—खदौल, खरदुर (मं० ब०, चंपा०)।
 [खड़ + और < *खर + आवट, कट + आवट]
 खदौल—(सं०) दे०—खदौर। [खड़ + औल < खट, कट + आवट]
 खतहवा भिंगनी—(सं०) एक प्रकार की तरकारी। बड़ी आकृति की भिंगनी (पट०-१)। [खतहवा + भिंगनी (देशी)]
 खतियान—(सं०) वह सरकारी रजिस्टर, जिसमें जमीन का पूरा व्योरा लिखा रहता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, चंपा०, भाग०-१)। [संभ०—खत, खात < खत्रम् (संस्कृ०), खत्तम् (पा०, प्रा०), खाते (मरा०), खातु (गु०, नेपा०)]
 खतौनी—(सं०) वह वही, जिसमें मालगुजारी का आय-व्यय या हिसाब-किताब अलग-अलग लिखा जाता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मै०-२)। [देशी, संभ०—< खत (फा०)]
 खत्रा—(सं०) (१) दे०—खई। (२) (गं०-ब०)। दे०—खाद। [देशी, मिता०—खात]
 खदगौर—(सं०) (शाहा०)। दे०—खदौड़ खेत।
 [खद + गौर, खद < खाद < खाद्य, गौर < गोवर (?) < गोमल (?) ; मिला०—गो + मल]
 खदहा—(सं०)।(१) हँगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चुन करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा। (ब० मु०)। दे०—घघरी। (२) गड्ढा। [खद < हा (प्र०) < खात]
 खदियाओल—(क्रि०) सिंचाई किये बिना ही ऊँच बोन पर उसके बीच पर सड़ा पत्ती, घास आदि की खाद देना (ब०-पू० मै०)। पर्या०—गोआ पटारल (मुहा०)। (उ०-पू० मै०)। [खदिया + आओल (क्रि० प्र०) < *खाद्य]
 खदया—(सं०) खाद रखने की छोटी गड्ढी (मु०-१)। [खद + ऐया (प्र०) < खाद < *खाद्य]
 खदौड़—(सं०) (गं० ब०)। दे०—खादर। [खद + औड़ (प्र०) < *खाद्य]
 खदौड़ खेत (सं०) वह खेत, जिसमें बहुत ज्यादा

खाद पड़ी हो। पर्या०—गोबराएल, भरल (ब०-पू० मं०), खदौर (मं० ब०), खदगौर, खरित (शाहा०), पटाएल (मं० उ०)। [खदौड़+खेत < खद+औड़ < खाद्यावट; खेत < क्षेत्र]

खदौर—(सं०) (मं० ब०)। दे०—खदौड़ खेत। [खद+और < खाद्य+अवट]

खद्वी—(सं०) खाद। दे०—खद्वर।

खधरल—(क्रि०)—(१) पानी की धारा या उसकी लहरों के घबके से किनारे की मिट्टी का कटना (शाहा०-१)। (२) धाव के पास के मांस का गिरना (चंपा०-१)। (३) किसी मादा भवेली (गाय-भंस) की जननेन्द्रिय से सफेद रंग की लस दार चीज का निकलना (चंपा०-१)। (वि०) पानी की धारा या लहरों द्वारा काटी हुई जमीन (चंपा०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)।

[खधर+ल (प्र०) < खाद्य+ल < खात]

खधुक—(सं०) कर्ज लेनेवाला (शाहा०-१)।

[देशी.मिला०—खाद्य या खाद]

खधुली—(सं०)—चंपा। दे०—खोड़ली।

खधेल—(सं०) पशुओं के खाने के बाद बची हुई व्यर्थ की (अखाद्य) घास, भूसा आदि (शाहा०)। पर्या०—सीटी, उपछन (मग०-५, चंपा०, पट०-३)। दे०—जधर। [खध+एल (प्र०—कुत्सार्थक) < खाद्य]

खधोरल—(क्रि०)। दे०—खधरल।

खन—(सं०) नये कोल्ह को बनाने के लिए बड़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० मं०)।

[देशी]

खनजीर—(सं०) ईंट या पत्थर का बना कुएं का गोल धरा। [देशी]

खनल—(क्रि०) खनना, कोटना। [खन (संस्क०, प्रा०), खण (प्रा०), खनना (हि०), खनुन (कर्म०), खणणी (कुमा०), खनु (ने०), खनिश (अस०), खण्णु (गु०), खण्णो (मरा०), खनिनु (सिंह०)]

खनसारी—(सं०) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (उ०-पू० मं०)। दे०—बिसारी। [देशी]

खनावल—(क्रि०) खनल क्रि० का प्र०। खनवाना, खोदवाना।

खनित—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएं की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ की लकड़ी (ब०-पू०)। दे०—तरहा। [खनित = खंती < खन]

खनिता—(सं०) वह जमीन, जो सड़क के किनारे सड़क को भरने के लिए तोदी जाती है (शाहा०-१) [खनित]

खपचल—(क्रि०) किसी नुकली वस्तु से दूसरी वस्तु पर आघात करना, खपचाना। [(वि०) खपचो हुई वस्तु। [खपित्र, खपित < खप]

खपचार जाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जिसे दो आदमी दोनों तरफ से पकड़कर अपनी-अपनी ओर खींचे रहते हैं। इसमें नीचे लोहे की गुड़िया लगी रहती है (सा०-१)। [खपचार+जाल < खपचार (देशी)]

खपड़ा, खपरा—(सं०) (१) कुआँ के बनाने या दोवाल के बाँधने में प्रयुक्त भट्टी में पका मिट्टी का गोल पट्टा। पर्या०—नाद (उ०-पू०), मोखड़ा (ब०-पू० शाहा०), गिरदा (पट०), गेंडुआ (पट०, द० मं०), पाट (ब०-भाग०) (२) छप्पर छाने के लिए मिट्टी का बना और आग में पकाया हुआ लंबा, गोल अथवा चौड़ा एक प्रसिद्ध साधन। घर छाने का खपड़ा खपड़ा, खपरा दो प्रकार का होता है—नरिया, जो नाली जैसा होता है और ऊपर से रखा जाता है, दूसरा थपुआ, जो चौड़ा होता है और जिसके किनारे खड़े होते हैं। यह नीचे बिछाया जाता है। आजकल नये ढंग का खपड़ा होता है, जिसे 'टाइल' कहते हैं। [< खपर < कर्पर (संस्क०), खप्पर (प्रा०), खपड़ा (हि०, ने०), खपड़ (कुमा०)=खोपड़ी। खपरी, खपड़ (गु०), खपड़ी (अस०), खपड़ा (बं, प्रो०), खपला (मरा०)=टुकड़ा खपार (मरा०)]

खपड़ोइया—(सं०)—(१) बावल में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (चंपा०)।

पर्या०—गढ़रा (गया, सा०, मं०, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। (२) बेल, नारियल आदि का ऊपरला मोटा छिलका। (३) कछुए के शरीर के ऊपर का भाग। [मिन्ना०—गुर्पर]

खपरा—(सं०) दे०—खपड़ा। [खपड़, कर्पर]

खपरा छाअल—(मुहा०) खपड़े से घर का छाना।

[खपरा+छाअल; खर्पर+छादन]

खपरा फेरल—(मुहा०) खपड़ा फेरना या खपड़े की छावनी की मरम्मत करना।

खपड़ा बदलल—(मुहा०) दे०—खपरा फेरल।

खपावल—(क्रि०) खपाना, समाप्त करना, आँख बचाकर किसी का माल उड़ाना। [< खप]

खपियार—(सं०) पानी में फँककर मछली मारने का एक प्रकार का जाल। [खपित्र (?)]

खभड़ल—(वि०) खोदने या खिसकने के कारण बना गड़वा। पर्या०—खभरल।

खभरल—(वि०) दे० खभड़ल।

खभार—(सं०)—(१) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदा गया कुएं का बड़ा गोल ढाँचा (गया)। दे०—दवड़। (२) गड़वा। (३) सूजनों के रहने की जगह। पर्या०—खोभार (चंपा०)। [मिला०—स्कम्भ, कपाट (संस्क०), खपाच (हि०)]

खभारल—(क्रि०)—(१) जमीन को हलके-हलके कोड़कर मिट्टी को ऊपर-नीचे करना (शाहा०-१)। (२) नदी की लहरों से जमीन का धीरे-धीरे कटना। [खभरना (हि०)]

खमहुरआ—(सं०) एक लता, जिसके कंद और फल दोनों की तरकारी बनती है (मं०-१)। दे०—खमहुरआ। [देशी, मिला०—क्षमास्तु (?)]

खमहल—(क्रि०)—(१) पशुओं का दुबल होना (पट०-४)। (२) दे०—खामल-३।

खमहुरआ—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पू०, मं०-२)। दे०—लतार। [(देशी), मिला०—क्षमास्तु (?), वाराही कंद (संस्क०), वाराही कंद, गेंठी (हि०), चामार आलू, चामालू, चुवड़ि आलू (बं०), डुकर कंद, वाराही कंद (मरा०), सुअरिआ, सालिवण्या वेल्य (गु०)]

खमहा—(सं०)—(उ०-पू०, द० मं०, पट०, चंपा०, ब०-पू०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१, घाज०)। दे०—खंभा और घुहरी [< *स्कम्भ]

खमहार—(सं०)—(ब०-पू० मं०)। दे०—गाँज। [खमहा + र (प्र०) < *स्कम्भ]

खमहार, खंभार—(सं०)—(१) फसल तैयार करने की जगह, खलिहान (मं०-१, ब०-१)। दे०—खरिहान। (२) (ब०-पू० मं०)। दे०—गाँज। [खमहा+र (प्र०) < *स्कम्भ]

खमिहआ—(सं०)—(चंपा०, घाज०)। दे०—खंभा।

खयरा—(सं०) वह बेल, जिसका रंग खैर की तरह थोड़ा लाल हो। (पट०-१)। पर्या०—खैरा।

[खमर + आ (प्र०), खैर < *खदिरक (संस्क०), खदिर (प्रा०), खदिर (कर्म०), खैरो (ने०), खैरा (हि०, पं०), खैरो (गु०), खैरा (मरा०)]

खरहरा—(सं०)—(१) खलिहान के अन्न को बूहारने की झाड़ू (ब० भाग०)। दे०—खरहर। (२) बथान आदि बूहारने के लिए रहते आदि की बनी झाड़ू। [खर+हरा < खर, खड=घास, तृण, अथवा < खल=खलिहान, हरा < रह]

खर—(सं०)—(१) खड़; एक प्रकार की विशेष घास, जो घर छाने के काम में आती है (चंपा०-१)। पर्या०—खड़, खरह (चंपा०)। (२) एक प्रकार की घास। [(देशी)]

मिला०—कट, कुट = घास, तृण; खड़, खट (संस्क०), खडो (प्रा०), खर (हि०, पं०), खर (ने०), खड (गु०, मरा०), खोर (कर्म०), खड़ा (ओ०), खड्ड (सि०)=खल्ली (नेपा०)]

खरई—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास। (२) रबी या चैती फसल का, विशेषकर खरहर का, अनाज निकाठने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, मग०-५)। दे०—खरेठा। (३) पान की लता के ऊपर की घनी झाड़ी। पर्या०—खरचा (ब०-पू० शाहा०), कचुआ (ब० मं०)। [देशी] मिला०—कट, कुट, खड, खट]

खरकल—(क्रि०)—(१) बाढ़ के पानी का हट

जाना, खत्म होना (मू०-१) । (२) छिन्न-भिन्न होना (मू०-१), खिसकना (चं०) । (३) चुपके भाग खड़ा होना (मू०-१) । [खरक+ल (प्र०) < $\sqrt{\text{खरक}}$ < $\sqrt{\text{खर}}$ । भिला०— $\sqrt{\text{खरक}} (ने०) =$ इकट्ठा होना । खड़कतुं (१०) = व्यवस्था करना, राजना ।

खरकावल—(क्रि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक;
खरकाना ।

खरकोटी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०प० बिहा०) ।
[खरक+ओटी < खरिका+ओटी, संम०—
< *खडक+अवट]

खरचराई—(सं०)-(मं० उ०, गया) । दे०—खर-
चरी । [खर + चर + आई (प्र०) । खर
(देशों) अथवा < कट + चराई < √ चर]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०) । पर्याय—खरच-गई (गं० उ०, गया), बरदिया (शाहा०), कास चराई (मै०, पट०, पू०), कास चराई (मै०, पट०, पू०), देना (मै०, पट०, पू०), भैंसोंघा (मै०, पट०, पू०), बरदाना (मै०, पट०, पू०), दैना (ढ०-पू०) । यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसोंघा' कहा जाता है ।
[खर + चर + ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्र०)–(१) पात्र आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोचना । (२) व्यय करना ।

खुरचा—(सं०) — (१) (ब०-५० शाह०) । दे०—
खरई । [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती
भादि का वय्य । [खर्च (फा०)] (३) सीपी या
लोहे का बना खुरचने का छोटा साधन (ब०
भाग०) । [< खर्चल (बिहा०)]

खरचारु—(सं०) —(द० भाग०) । दे०—खेर-
चाँड़ी । [खर+चारु, खर<खंड, चारु<चाँड़ी
(बिहा०)]

खरचालीं—(सं०) (पट०, गया) । दे०—खेर-
चांडी । [खर + चालीं । मिला०—खरचालू]

खरथुआ—(सं०)—(पठ०, गया, मग०-५) ।
दे०—खडका । [सर + थुआ । > सर, ५८

ना (देशी)]

खरबटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा, इ०-पू० मं०)। दे०—बोझ बटाई। [खर+बट+आइ (प्र०), खर<कट, <खड, <खट+बटाइ<बटाई<बंटन]

खरबिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चपा०-१) । [खर + बिरवा ।
खर < कट, खट, खड, बिरवा < बीज < वीर्य]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में सखार मिठास होती है। पर्याय—जालमी (प० नं०, पद, प०), फूट (ब०-पू०)। [(देशी), खर + बूजा, बूजा < बीज (?)] खर्वज (संस्क०—मा० प्र० नि०), खरदुजा, खरमुज (बं०), खर्वज, खरबूज (मरा०), तेलिया, शकरटेटी, तलिया भीमड़ा (गु०), खरबूज (तै०), सड़जसौते, षड्भुजा (क०), खर्वज (फा०) खरपजह (म०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बड़ई, नाई और घोड़ी को किसान कर्मा और से मिलनेवाला एक पाँजा धान या कोई दूसरी फसल (उ०-प० शाहा०) । पर्या०—करा, पुरी, पालपसेरी (प० मं०) । [खर + वन; खर < कृट, अथवा < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < कृत । वन < वन् (याचने) (?) , अथवा खर + वन; खर (= ढंढल-सहित फसल) का मिलनेवाला बन (भजवूरी)]

खरवाँस—(सं०) चैत और पौष का महीना, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें सादी-व्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते । (शाहा०-१, चंपा०) । [खर+वाँस < *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (बड-भाण०) । दे०—खारो । [खर+वा (प्र०, अर्थथक) < क्षार]

खरवाह—(सं०) समय के पहले सूखी जमीन में पानी की बोआई। दे०—खरहर बावग। [खर+वाह। < खर, < कट् वा < खड़ा (हि०), वाह (प्र०) जयवा < 'वह (?)']

खरवाहा—(सं०) - (१) सिंचाई करनेवाला पुरुष
(२०-५० सै०) । दे०—पनछन्ना । (२)
सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर
बिखेरनेवाला मनुष्य (सा०) । दे०—पनभोरा ।
[खर + वाहा । खर < खंड अथवा कर्ष । वाहा
(प्र०) वा < √वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के
पहले की जानेवाली घान की बोआई (बया) ।
दे०—खरहर बावण । [खर + वे । खर < *कट,
< *कर्ष अथवा खड़ा (हि०) । वे < वाप
(= वपन) (?) < √वप] ।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोवाई (गया) । दे०—खरहर बावग । [खर+वेह, मिला०—खरवे] खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा अवसार इंटल और पत्ता (इ०-प० मं०) । दे०—झाला ।

[देशी, वा खर + सान । खर < कट (= घास)
+ सान < समान (सन-बिहा० = सामान,
यथा-ऐसन, बैसन, तैसन आदि) । मिला०-खर-
सन (संता०) = बिचा तैयार किया हुआ तम्बाकू

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के
पहले की जानेवाली घान की बोआई। पर्या०—
धुरिया बावग (गं०उ०), ठर्रा (शाहा,
पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीचा
(पट०), घुघुत्सा (ब० मुं०), खरहरिया बावग
(मै०-२, पट०-४, मग०-५)। [खर+हर+
बावग। खर<कट, कर्ष अथवा खड़ा (सूखी
भूमि के लिए प्रयुक्त)+हर<√ह अथवा खर
(√खड़ा)+हर<हल। बावग<वाप
(+क)<√वप]

खरहरत—(क्रि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना ।
(वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि ।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने व्यवसाय।
 बयान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (जंपा०)
 दे०—सिंहस्थ । [खर+हरा। खर<कठ बयान
 खल (= खलिहान) हरा <√हृ वा भङ्ग
 <भाङल (बिहा०) <उद्+<हृ। खरा
 (मरा०) <नर+यष्टि (संस्क०)—(म० ज्यु०)।

खर-रिया बावग—(सं०)—(मं०-२, पट०-४
म. ५) । दे०—खरहरा बावग ।

खरहरा—(सं०)—(६० भाग०) । दे०—खरहरा ।
खरहा—(सं०) । दे०—खड्हा ।

खरही—(सं०)—(१) पान की लता के बावारा
 स्तम्भ, जो प्रत्येक कोरी के बीच में छै-छै पड़ते
 हैं। [(देशी)—सं० <खर वा खंड]
 (२) बड़ा खड़ (बं००-१)। [खर+ही (प्र०)
 <खर, मिला०-कट। खरही (हि०)=बास
 वा अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०) —(गं० द०) । दे०—सङ्कीर्ण ।
[खर+हुल (प्र०) अथवा < भू]

खरिऔता—(सं०) खरिका (देंतलोवनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताक्षा (उ०-पू० सं०) । पर्या०—मुक्ता (पट०-४), खरकोटी, मुहकी (गया, द०-प० बिहा०) । [खरिका+औता । खरिका<खर (हिं०)+इका (अल्पा० प्र०), औता<अवट (संस्क०)=स्रव, छिद्र]

स्वरित—(सं०)—(शाहा०) । खदोड़ खेत ।
[देशी]

खरिदगी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत को
 शई करमुक्त भूमि । पर्या०—इनाम, इनामात,
 खैरात (शाहा०), खुसवकत (द० भाग०) =
 प्रसन्नता या सोहार्द के कारण मिली हुई
 अधिकृत करमुक्त भूमि । (२) खरीद कर
 जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मौलसी
 हुकवाला (शाहा०) । (वस्तुतः शब्दार्थ—
 खरीद को हुई है) दे०—गैरमौलसी ।
 [खरिद + गी(प्र०) < खरीद (फा०): मिला०—
 क्रीत, क्रीति < √क्री]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का बन-
स्वामी । पर्या०—बैदार । [खरिद + दार
(प्र०) < खरीद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौती के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, भाज०)
पर्या० — खरिहानी
(पट०, दर०-१)। खरि
+ हान < *खलाधान,
< *खलाधान, < *

खले + धानी—(नेपा०)] खलिहान
खलिहान (हि०), खलियान्, खलिहान्, खले



जाना, खत्म होना (सं०-१) । (२) छिन्न-भिन्न होना (सं०-१), खिसकना (चंपा०) । (३) चुपके भाग खड़ा होना (सं०-१) । [खरक+ल (प्र०) < *खरक < √खर] । मिला०—खरकनु (ने०) = इकट्ठा होना । खड़कनु (गु०) = व्यवस्था करना, गंजना]

खरकावल—(कि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक; खरकाना ।

खरकोटी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहा०) । [खरक+ओटी < खरिका+ओटी, संभ०—< *खड़क+अवट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया) । दे०—खरचरी । [खर+चर+आई (प्र०) । खर (देशी) अथवा < कट+चरई < √चर]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०) । पर्या०—खरचराई (गं० उ०, गया), बरदिया (शाहा०), कास चराई (सं०, पट०, पू०), कास चराई (सं०, पट०, पू०), देना (सं०, पट०, पू०), भैंसोंघा (सं०, पट०, पू०), बरदाना (सं०, पट०, पू०), दैना (द०-पू०) । यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसोंघा' कहा जाता है । [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(कि०)-(१) पात्र आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोचना । (२) व्यय करना ।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०) । दे०—खरई । [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय । [खर्च (फा०)] (३) सीपी या लोहे का बना खरचने का छोटा साधन (द० भाग०) । [< खरचल (बिहा०)]

खरचारु—(सं०)-(द० भाग०) । दे०—खरचाड़ी । [खर+चारु, खर < खंड, चारु < चौड़ी (बिहा०)]

खरचाली—(सं०)-(पट०, गया) । दे०—खरचाड़ी । [खर+चाली । मिला०—खरचारु]

खरथुआ—(सं०)-(पट०, गया, मग०-५) । दे०—खडुका । [खर+थुआ । < खर, थुआ (देशी)]

खरबटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा०, द०-पू० सं०) । दे०—बोझ बटाई । [खर+बट+आई (प्र०), खर < कट, < खंड, < खट+बटाइ < बटाई < बंटन]

खरबिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा०-१) । [खर+बिरवा । खर < कट, खट, खंड, बिरवा < बीज < वीर्य]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में सखार मिठास होती है । पर्या०—जालमी (प० सं०, पट०, पू०), फूट (द०-पू०) । [देशी, खर+बूजा, बूजा < बीज (?) । खरबूज (संस्कृ०—मा० प्र० नि०), खरबुजा, खरमुज (बं०), खरुंज, खरबूज (मरा०), तेलिया, शकरटेटी, तेलिया भीमड़ा (गु०), खरबूज (ते०), सड़जसौते, षड्भुजा (क०), खरुंज (फा०) खरपुजह (अ०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और घोड़ी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक पाँजा धान या कोई दूसरी फसल (उ०-प० शाहा०) । पर्या०—केरा, पुरी, पालपसेरी (प० सं०) । [खर+वन; खर < *कट, अथवा < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृत् । वन < √वन् (याचने) (?) , अथवा खर+वन; खर (= इँठल-सहित फसल) का मिलनेवाला वन (मजदूरी)]

खरवाँस—(सं०) चैत और पौष का महीना, जो हिन्दू-रिति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-व्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते । (शाहा०-१, चंपा०) । [खर+वाँस < *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (द०-भाग०) । दे०—खारी । [खर+वा (प्र०, अत्यर्थक) < चार]

खरवाह—(सं०) समय के पहले सूखी जमीन में धान की बोआई । दे०—खरहर बावग । [खर+वाह । < खर, < कट वा < खड़ा (हि०), वाह (प्र०) अथवा < √वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) बिचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० सं०) । दे०—पनछन्ना । (२) सींचने के समय खेत में पानी को हथर-उत्तर बिलोनेवाला मनुष्य (सा०) । दे०—पनमोरा । [खर+वाहा । खर < खंड अथवा कर्ष । वाहा (प्र०) वा < √वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया) । दे०—खरहर बावग । [खर+वे । खर < *कट, < *कर्ष अथवा खड़ा (हि०) । वे < वाप (= वपन) (?) < √वप] ।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया) । दे०—खरहर बावग । [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा असार डंठल और पत्ता (द०-पू० सं०) । दे०—जाला । [देशी, वा खर+सान । खर < कट (= घात)]

+सान < समान (सन-बिहा०=सामान, यथा-ऐसन, बंसन, तंसन आदि) । मिला०—खरसन (संता०)= बिचा तैयार किया हुआ तम्बाकू

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई । पर्या०—धुरिया बावग (गं० उ०), ठरी (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीघा (पट०), धुरधुसा (द० सं०), खरहरिया बावग (सं०-२, पट०-४, मग०-५) । [खर+हर+बावग । खर < कट, कर्ष अथवा खड़ा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर < √ह अथवा खर (< खड़ा) +हर < हल । बावग < वाप (+क) < √वप]

खरहरल—(कि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना । (बि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि ।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बूझाने अथवा बथान बूझाने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चंपा०) । दे०—सिरहय । [खर+हरा । खर < कट अथवा खल (= खलिहान) हरा < √ह वा भड़ा < भड़ा (बिहा०) < उद+ < ह । खराट (मरा०) < खर+यष्टि (संस्कृ०)—(म० ब्यु०)]

खर-रिया बावग—(सं०)—(सं०-२, पट०-४, म०-५) । दे०—खरहरा बावग ।

खरहरा—(सं०)—(द० भाग०) । दे०—खरहरा । खरहा—(सं०) । दे०—खड़हा ।

खरही—(सं०)—(१) पान की लता के आधार पर स्तम्भ, जो प्रत्येक कोरो के बीच में छँ-छँ पड़ते हैं । [देशी]—संभ० < खर वा खंड] (२) बड़ा खड़ (चंपा०-१) । [खर+ही (प्र०) < खर, मिला०—कट] खरही (हि०)= बास वा अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०)—(गं० द०) । दे०—खड़ौर । [खर+हुल (प्र०) अथवा < भू]

खरिक्कीता—(सं०) खरिका (दंतखोवनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताखा (उ०-पू० सं०) । पर्या०—मुष्का (पट०-४), खरकोटी, भुड़की (गया, द०-प० बिहा०) । [खरिका+औता । खरिका < खर (हि०)+इका (अल्पा० प्र०), औता < अवट (संस्कृ०)= खात, छिद्र]

खरित—(सं०)—(शाहा०) । खदोड़ खेत । [देशी]

खरिदगी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि । पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), खुसकत (द० भाग०)= प्रसन्नता या सोहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि । (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मोहसी हकवाला (शाहा०) । (बस्तुतः शब्दार्थ—खरीद की हुई है) दे०—गैरमोहसी । [खरिद+गी (प्र०) < खरीद (फा०) । मिला०—क्रीत, क्रीति < √क्री]

खरिदार—(कि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का बन-स्वामी । पर्या०—बैदार । [खरिद+दार (प्र०) < खरीद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौरी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, ब्राज०) पर्या०—खरिहानी (पट०, दर०-१) । [खरि+हान < *खलधान, < *खलधान, < *खलधान, < *खले+धानी—(नेपा०)] खरिहान खलिहान (हि०), खलियान, खलिहान, खलो



(ने०), खलिवारा (पं०, सि०, ल०) < *खल-वाट । खल (बं०), खला (अस०, प्रो०), खरा (सि०), खलू (गु०), खले (मरा०), कल (सिंह०)]

खरिहानि—(सं०) दे०—खरिहान ।

खरिहानी—(सं०)-(१) (पट०-४, पट०, चंपा०-१, मग०-१) । दे०—खरिहान । पर्या०—खरिहानि । (बर०-१) [खरि+हानी, खरी+हानि +ई (प्र०) < *खलघान, *खलघान्य, *खलाघान; < *खले+धानी—(नेपा०)]

२—चौकीदार को किसान की ओर से मिलने-वाला पारिश्रमिक, जो खलिहान में ही दिया जाता है (उ० प०, मं०-२, मग०-५) । दे०—चौकीदारी । ३—बड़ई को किसी हथियार की मरम्मत आदि कार्य करने के बदले मिलने-वाली मजदूरी, जो प्रायः खलिहान में ही मिलती है (चंपा०, मं०, मं०-२, पट०-४, मग०-५) । दे०—धाली । ४—चमार को जूता बनाने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, गया) । दे०—भावर ।

खरी—(सं०) तेल निकाल लेने के बाद तेलहन की सीठी । दे०—खर्री ।

खरीफ—(सं०) दे०—रब्बी । [खरीफ (प्र०)]

खरुआएल—(सं०)-(१) बैशन आदि तरकारी के पौधों की वह अवस्था, जब फलना बंद हो जाता है तथा पेड़ सूखने लगते हैं (चंपा०-१) । (कि०) :—किसी पौधे का सूखना (चंपा०-१, मग०-५) । [खरु+आएल (प्र०) < *खर अथवा खरू (=खेत)]

खरुका—(सं०) (१)—अफीम में लगनेवाला एक रोग (ब०-प० शाहा०) । (२) फसल में लगने-वाला एक रोग । पर्या०—जाला (मं०, पट०, पू०), पक्खब (प० मं०, गया), गुरका (प०, ग० मं०) । [(देवी), मिला०—खरू, खरूक (संस्कृ०) = उजला]

खरुहन—(सं०) एक से अधिक बार रोपा जाने-वाला बीया (मं० उ०, मं० २) । दे०—खार । [खरु+हन, खरु < उखारु < उखारल (बिहा०) उखाड़ना (हि०) < *उत्खात (संस्कृ०) < √उद्+√खन्; हन < #धान्य]

खरुहान—(सं०)-(उ०-पू० मं०) । दे०—खार । [खरु+हान । मिला०—खरहन]

खरुहो—(सं०)-(१) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (ब० भाग०) । दे०—मु'ड । (२) छोटे-छोटे बच्चे । [मिला०—खुद्रक, खुल्लक, खुड्डक (प्रा०), मिला०—खरही (हि०) = वास, अन्न आदि का ढेर ।]

खरैठा—(सं०) वह स्थान, जहाँ मूँज नामक वास पंदा होती है (ब० मु'ड) । दे०—मुजवानी ।

[खर+ऐठा (प्र०) अथवा < √स्था]

खरैल—(सं०) एक आदमी द्वारा प्रयुक्त होने-वाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें छह लकड़ियाँ लगी रहती हैं । [देशी, संभ०—खर+ऐल < षट्+ऐल (देवी प्र०) (?)]

खरैर—(सं०) खड़ की बनी शोषड़ी । [खड़+ऐर < कट्; < खट+गृह]

खर्री—(सं०)-(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (प० मं०) । (२) घोड़े को मारने (खरहरने) के लिए लोहे या रस्सी की बनी कूची । (३) खान पंदा करनेवाला रोग, खुजली । (४) खारा पानी । [खर-खर शब्द करनेवाला—अनु०]

खर्री—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका उपयोग पशुओं के चारे या खाद में होता है (सा०, चंपा०) । पर्या०—खल्ली । [कल्क]

खर्री—(सं०) एक प्रकार की बरसाती तरकारी, भिगनी (प०) ।

खलकोइया—(सं०)-(१) मंडू आ अथवा किसी दूसरे अनाज के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (पट०, गया, पट०-४, मग०-५) । दे०—डोटी । (२) मकई के ऊपर का पत्ता । (३) चमड़ा । (४) छिलका । [खलको +इया (प्र०) अथवा खल+कोइया । खल < खाल < √खल् (=संचलने) वा खल्ल (संस्कृ०), खाल (प्रा०), छिलका, खाल (हि०), खलखलाओ (संता०) = चमड़ा उधारना (खाल उतारना), परती जोतना । कातड़ी (मरा०), चामड़ी, चामडू (गु०), खलड़ि = < *खल्ल—(नेपा०); कोइया < कोशिक]

खलखलाएल—(कि०)-(१) मछली का पानी में इस तरह घूमना कि पानी ऊपर तक उछल पड़े (भोज०) । (२) पानी का खीलना । [अनु०]

खलचोइया—(सं०) मूट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (चंपा०) । दे०—खोइया । [खल+चोइया = चोइटा (बिहा०), चोई (हि०) < चोच (संस्कृ०) = छिलका । खल = खाल, क्षालित । मिला०—खलकोइया]

खलड़ी—(सं०) चमड़ा । त्वचा । दे०—चाम । [खल+ड़ी < *खल्ल, < खाल]

खलवा—(सं०) गहरी जमीन, जिसमें पानी नहीं हो । दे०—खाल । [खल+वा (प्र०) < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) > खल्य । मिला०—खल्ल=नीची भूमि (= 'खल्लो वस्त्रप्रभेदे स्वाद् गत्ते चर्मणि चातके'—मेदि०)]

खलसी—(सं०) एक प्रकार की मछली । [देशी] खलार—(सं०)-(१) वह गहरी जमीन, जिसमें पानी न हो (उ०-पू० चंपा०, प्राज्ञ०) । दे०—खाल । (२) नीची जमीन । (३) खाल, चमड़ा । [खल+आर (=हरा < घरा), < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) < खल्य । खल्ल—धरा । खातधरा वा खलधरा]

खलिहानी—(सं०) किसान द्वारा अधिकार जता-कर लिया गया अत्ता, जो विशेषतः खलिहान की रक्षा आदि के नाम पर लिया जाता है (पट०) । पर्या०—भाँवर (शाहा०), मँगनी, माँगन (पू० मं०, पट०-४) । [खलि+हान+ई (प्र०) < खलोधानी] टि०—खलिहान में तैयार अन्न के बंटवारे की पद्धति में फसल की कटनी जमींदार और किसान दोनों की देख-रेख में होती है और वह फसल एक संयुक्त खलिहान में एकत्र की जाती है । उसकी देख-रेख दोनों दलों की ओर से सावधानी से होती है । जबतक गाँव की अधिकृत सब फसल खलिहान में आ नहीं जाती है, दोनी नहीं होती । जबतक दोनी, तोलाई और बंटवारा नहीं हो जाता, तबतक उस अन्न में से कोई कुछ भी नहीं उठा सकता है । किसान कटनी के बाद खेत में से गिरे हुए अनाज की बाल को लोड़ (चुन) कर ले सकता है । हाँ, फसल का एक विशेष परिमाण भी उसे मिलता है, जिसे वह मजदूरी में काटनेवालों को देता है । संयुक्त फसल में से ही गाँव के बड़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, मुंशी आदि कारीगर या पीनीवाले अपना-अपना भाग ले जाते हैं; क्योंकि वे वर्ष-भर किसान और जमींदार का काम करते रहते हैं । बंटवारे के लिए तैयार अनाज की राशि से इधर-उधर खसरा आदि के साथ उड़ा हुआ अन्न किसान का ही होता है । 'विसुनपिरित' भी सम्मिलित राशि से निकलता है । इन सब के बाद बची हुई राशि में जमींदार अपना भाग लेता है । धूलि आदि के साथ मिला हुआ अन्न किसान का होता है । इस प्रकार के बंटवारे में पुआल, भूसा आदि किसान का ही होता है । यह पद्धति जमींदारी-प्रथा के समय की है ।

खल्ली—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका प्रयोग पशुओं के खाने या खाद में होता है । दे०—खर्री । (२) जमीन या बोर्ड पर लिखने का उजली मिट्टी का एक साधन, खड़ी, चक । [खटी, खली, कल्क (संस्कृ०), खली (प्रा०), खली (हि०), खलि (ने०, बं०, ओ०), खल (पं०, ल०), खल (मरा०)]

खलहर—(सं०)-(उ० प०) । दे०—खाल । खल+हर (< घरा) < खल्ल + धरा, खात धरा वा खल+धरा । खल्लइ (ने०) खल्लइ]

खलुरा—(सं०) :—खौर

खसकल—(कि०) गिरना, स्थान से दटना । [मिला०—खसल] (१०) गिरा हुआ । [खसई (प्रा०), खदिबा (अस०), खसा (बं०), खसिबा (ओ०), खसना (, खसु (ने०), खसबुं (गु०), खसशों ()—उत्तर के अनुसार ये सभी रूप खसुन (कश्मि०) = उठना—की एकरूपता में हैं । यद्यपि अर्थभेद है । ये *खस (म० भा०) के प्रतिरूप हैं । मिला०—√कश, √कस (= जाना, घूमना), √खश < चोट करना]

खसरा—(सं०) पटवारी की खेत-बही, जिसमें

खेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है।
[खसरा (ग्र०)]

खसरा दानाबंदी—(सं०) वह पत्रक, जिसमें फसल के आनुमानिक मूल्य का हिसाब और निम्नलिखित चीजों का उल्लेख रहता है—सारीस, असासी का नाम, बरासी (जमीन का परिमाण), जमीन की लंबाई-चौड़ाई, फसल का नाम, आनुमानिक वार्षिक उपज का परिमाण।

[खसरा (ग्र०)—दानाबंदी—(का०) < दानः + बंदी। मिला०—घानाः (संस्क०) = भूजे हुए जो, दाने। बंद = बन्ध (संस्क०)]

खसरा बटाई—(सं०) (१) पटवारी का वह कागज, जिसमें खेत के नंबर, रकबा आदि लिखे रहते हैं। (२) हिसाब का कच्चा चिट्ठा। [खसरा (ग्र०) + बटाई (विहा०, हि०)—< √वपट]

खसल—(वि०)—(१) गिरा हुआ, घाव, जो आदि का पोषा। दे०—गिरल। (कि०) (२) गिरना, अपने स्थान से हटना। दे०—खसकल। [खस + ल (कि० प्र०)। मिला०—खसकल (हि०) √खप् (= चोट लाना), √कश्, √कस (< बाना) = खसखो = फिसलना < √ खप् (ब०-पु०); खसखू (गु०), खसकुन (ने०)]

खहरल—(कि०) पता, बीज या किसी चीज का खिसक-खिसककर गिरना (चंपा०-१)। [खहर + ल < खसरल, खसकल (विहा०), खसकल (हि०) < √खप्, √कश्]

खौखड़—(सं०)—(१) कुर्जा बनाने के लिए लोटा गया गड़दा (चंपा०-१)। पर्या०—खसरा, खौखड़ (शाहा०-१, बाब०) (२) बाबल पकाने का बड़ा बर्तन (चंपा०-१)। [(देशी), [मिला०—खौख (हि०) < खम्, खंवर (संस्क०), खौखर (हि०) < खंवर (संस्क०) (= सविच्छन्न)]
खौखर—(सं०)—(१) कुएं के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गड़ढ़े के रूप में बना हुआ स्थान (उ०-पु०-२)। पर्या०—घोघर (चंपा०, उ०-पु०-१) पाल (पं०), चौर (पट०, गया)। (२) (उ०)। दे०—दवड़। [देशी, मिला०—खौखड़]
खौच—(सं०) भूसा रखने के लिए गाँव

या रहेठे की बनाई गई एक प्रकार की टोकरी (शाहा०-१)

[देशी० मिला०—√खच् = बांधना; खौच (ने०)]



खौच

खौचा—(सं०)—(१) चीनी साफ करने के काम में जानेवाली टोकरी। (२) बन्न रखने या ठोने के काम जानेवाली बड़ी टोकरी। पर्या०—खाची, डलवा (गया), डेली (पु०)। [खौचा < खौचना (हि०) < √खच् (= बांधना, जोड़ना, जड़ना, यथा—मणिसाधित, खौचा (हि०), खौच (ने०) = टोकरी]

खौची—(सं०) छोटा खाँचा। दे०—खाँचा।

[खौचा + ई (अल्पा० प्र०)]

खौचीदेल—(कि०) खेतों में टोकरी से खाद (कूड़ा-ककंट) देना—(वर०-१)। [खौची + देल]

खौजी—(सं०) फल रखने का एक प्रकार का बाल (उ०-पु०-१)। [मिला०—खौजा]

खौड़—(सं०) सूखी हुई दानेदार सब्ज। पर्या०—भुरी, भूरा, बूरा। [< खंड] (२) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचो-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-पु०)। दे०—बाँध। [< खंड < √खडि (= टुकड़ा करना, मलगाना)]

खौड़ी—(सं०) हल में लगे जुए के दोनों किनारों पर कटा हुआ अंश, जिसमें बैल के गले के नीचे की ओर लगी रस्ती बाँधी जाती है (पट०)। पर्या०—खादी, (ब०-पु०-१), खेंदी (पं०), खड्डी (ब०-पु० शाहा०), कनौसी (गया), खात (ब० भाग०), सिमल, नकटी (ब०-पु०)। [खंड > कर्ष > कड्ड < खड्ड, खड्ड]
खौड़ो—(सं०)—(ब०-भाग०)। दे०—खाड़ तथा बाँध। [< खंड < √खडि (= टुकड़ा करना, मलगाना)]



खाड़ी

खौनल—(वि०) लात से कुचला हुआ, कुचका हुआ (चंपा०-१)। (कि०)—लात से कुचलना, कुचलना। [खौन + ल (वि० प्र०) < खुन्हल (ब० भा०) < √खुदिर (= संवेष्टेण = पोसना)]

खौवाँ—(सं०)—दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (ब०-पु० शाहा०) पर्या०—मेंड़ (शाहा० शेष भाग), पीड़ (गया), अलग (पं०), आहर (ब०-पु०), बाँध, बान्ह (अन्यत्र)। [(देशी), अथवा—खौ + वौ < खेयवन्ध (?) वा खात + वन्ध]

खौवाँ, खावा—(सं०) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध (पट०, पट०-४, मग०-५) दे०—मीड़। [< खात + वन्ध]

खाई—(सं०)—दे०—खाई। [< खेय]

खाजा—(सं०)—(१) ताड़ के फल के भीतर का वह हिस्सा, जो कटहल के कोए के आकार का होता है तथा खाया जाता है (चंपा०-१)। (२)—एक प्रकार की मिठाई, जो लम्बी और मोर परतदार होती है। [खाद्य, खाद्यक (संस्क०), खज्ज, खज्जक (प्रा०), खज्जय (प्रा०), खाजा (हि०), खाज्जा (पं०), खाजा (ने०) = हल्का भोजन, जलपान। खाजे (कुमा०) = भात। खाजु, खाज (सि०), खाजे (मरा०) = किराना]

खाड़ी—(सं०) (१) (ने०)। दे०—खेड़ा। (२) दे०—खाड़ी। [< खात, कृष्ट]

खात—(सं०)—(ब० भाग०)। दे०—खाड़ी। [< खात]

खाता—(सं०)—(१)—(चंपा०)। दे०—खेड़ा। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊँच का रस बहता है (सा०)। दे०—बाली। (३) (चंपा०)। दे०—खाद। (५) (ब०-पु०)। दे०—खाद। [खात]। (५) पटवारीयों की खेत-संबंधी बही। (६) खेतों का चकला। [मिला०—खत (का०), कत (का०)]
खातिर—(सं०) जमींदार की ओर से पट्टेदार को श्रृण के चुकते में की गई छुट (पट०, गया)। दे०—दहिहवकी। [खातिर (ब०)]
खाद—(सं०)—(१) बन्न रखने के लिए जमीन खोदकर बनाया हुआ गड़दा। पर्या०—खत्ता वा

खाता ((पं०-१०), चौर (ब०-पु०-१), माट (गया), खाघ या खाघा (ब० भाग०)। [< खात] (२) भूमि की उर्वरता के लिए खेतों में डाली जानेवाली गोबर, कूड़ा-करकट अथवा बैज्ञानिक मिश्रण से बनी चीज (विहा०, बाब०)। (यो०)—खाद के गड़हा = खाद बनाने का गड़दा। [< खाद्य] (३) ऊँह रोपने के पहले बीज रखने का गड़दा (सा०)। पर्या०—खाता (चंपा०), गाढ़ा (शाहा०), गँड़सा (गया), बलसार (पट०), टोनखाद, टोनखाबा (उ०-पु०-१)। [< खात] (४) किसी बन्न में निम्न प्रकार की चीजों की मिलावट (चंपा०-१)। किसी चीज में बाहर से मिलाई गई या मिली हुई विजातीय चीज (चंपा०-१)। [खाद (हि, विहा०) = गोबर आदि की खाद। अपवित्र या निम्न स्तर की वस्तु। खाद्य अथवा अ+खाद्य] खाद के गड़हा—(सं०) गोबर, कूड़ा-करकट आदि की खाद बनाने का गड़दा। दे०—घूर। [खाद के+गड़हा (यो०)]

खादर—(सं०)—(१) गोबर, मूत्र, कूड़ा-करकट आदि की बनी खाद (पं० उ०, सा०-१) पर्या०—खदौड़, खदी (पं० उ०), गोंदौरा (पं०), गोष्ठा (पु०), करखी (पु०), घूर (ब०-पु०), गनौरा (पु०, सा०, पट०-४, मग०-५), गंदौरा (पु०, सा०), कूड़ा (पु०, सा०), कूड़ा-कुरकुट (पु०, सा०), बहारन (पु०, सा०), गोनरौर, गोनौड़, (ब०-पु०-१) (इसका अर्थ, कूड़ा-ककंट या बूहारकर इकट्ठी की गई गंभीगी भी है।) [< खाद्य, संभ०—खात्रम (संस्क०) = गढ़ा खातर (गु०)] (२) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (उ०-पु०)। पर्या०—गोष्ठा (उ०-पु०, ने०), अलाह (पट०, गया), डाही (पट०, गया), हूरा (ब०-पु०), छाही (ब० भाग०)। [खाद + र (स्वा० प्र०) < खाद्य]

खादर के गड़हा (सं०) दे०—खाद के गड़हा। खाघ—(सं०) बन्न रखने के लिए जमीन खोदकर बनाया हुआ गड़दा (ब० भाग०)। दे०—खाद। [< खात]

खाधा—(सं०) (ब० भाग०)—दे०—खाद, खाव । [< खात]

खान—(सं०) (१) नये कोल्हू को बनाने के लिए बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-प० मं०) । पर्या०—खन कमाई (उ०-प० मं०) (२) ऊख के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को प्रति कोल्हू मिलनेवाला (दो रुपये का) पारिश्रमिक या पुरस्कार (सा०) । दे०—पचरावन । [खान < खादन] (३) ऊख पेड़ने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (गं० ब०-प०) । पर्या०—घर (चंपा), कुंड (झुं), कूंड (पू०), हंडा (शाहा०), हंडोला (शाहा०), हंडा (ब० मुं०), हन्वा या हंडा (गं० ब०) । (४) कोयला, लोहा आदि का उद्गम-स्थान । [खात, खानित (संस्कृ०), अथवा खाना (फा०) = घर, < खनि (संस्कृ०) = खान]

खानदान—(सं०) (उ०-प० मं०) । दे०—खोरिख । [खानदान (फा०)]

खान्ही—(सं०) ताड़, केले आदि फलों का हल्वा (मुं०-१) । [< स्कन्ध = समूह, राशि]

खाप—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकर, नगद रूप में चुकाया जाता हो (पू० मं०) । दे०—नगदी । [(देशी०), मिला०—छाप < चप् । खापलू, (संभ० < खात-नेपा०)]

खाभर—(सं०) एक तरह की जिरात (सा०-१) । [देशी, मिला०—खावड़ < खर्वट]

खाभल—(कि०)—(१) खेत की पपरी तोड़ने के लिए खुरपी या कुदाल चलाना (चंपा०-१) । (२) खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि का निकालना (सा०, चंपा०) । दे०—गर खुरपी सोहल] । (३) गाय, बैल आदि का एक जगह एकत्र होकर चरने को जाना (मुं०-१) । [खास+ल (प्र०), मिला-चुभ]

खार—(सं०) (१) बाढ़ या वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (ब० पू०) । दे०—दाहर । (२) वह ऊँची जमीन, जो बाढ़ आदि के कारण गहरी हो जाती है और जिसमें

पानी जम जाता है (मग०-५) । (३) खारा पानी, मिट्टी आदि । [< *क्षार < *क्षर]

खारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें गंधक, चूना आदि का अधिक अंश हो (मग०-५, पट०-४) । पर्या०—खरवा (ब० भाग०) । [खार+ई (प्र०) < *क्षारिक < क्षार]

खारू—(सं०) (१)—बार-बार रोपा जानेवाला बीया (गं० उ०) । पर्या०—खरुहन । (२) बोरो या अन्य धान के बीज का पोषा, जो एक बार उखाड़कर रोपने के बाद पुनः उखाड़कर रोपा जाता है (उ०-पू० मं०) । पर्या०—खरुहान (चंपा०, मं०-२), खरुहन (चंपा०) । [खार < उखार < उखार+उ (प्र०) < उखारल (बिहा०), उखाड़ना (हि०) < *उत्खात]

खाल—(सं०) (१) बिना पानीवाली गहरी जमीन । पर्या०—खलवा, खलार (उ०-प०), खलहर (उ०-प०) । (२) चमड़ा । दे०—चाम । [< खात, खल्ल = नीची जमीन । चमड़ा < *खल्ल >]

खाली काँटा—(सं०) वह काँटा या तौलने की मशीन, जिससे ऊख की खाली गाड़ियाँ तोली जाती हैं (बिहा०, री०) । टि०—मिल में गाड़ी पर लाया गया ऊख पहले गाड़ी के साथ तौल लिया जाता है और उस वजन को एक पुर्जे पर लिख लिया जाता है । ऊख उतारने के बाद खाली गाड़ी पुनः तोली जाती है । इस प्रकार हिसाब करके ऊख का ठीक परिमाण मालूम किया जाता है । खाली गाड़ी को तौलने का काँटा 'खाली काँटा' और ऊख से लदी गाड़ी को तौलने का काँटा 'भरती काँटा' कहलाता है । [खाली+काँटा खाली < खल्ल, खालित, खालिआ (प्र०) + कंटक]

खावाँ—(सं०) दे०—खई । [खा+वाँ < *खात + वंघ]

खावा, खाँवाँ—(सं०) (प०) । दे०—खाँवाँ, खावा तथा भीड़ । [खा+वा < *खात+वंघ]

खास महाल—(सं०) वह जमीन्दारी, जिसका प्रबंध सरकार खुद करती है (सा०-१, चंपा०, मग०-५, मं०-२) । [खास+महाल (ज०)]

खाहिन—(सं०) मोटे दानों का एक प्रकार का धान (ब०-प० शाहा०) । [देशी]

खिचड़ी—(सं०) (१) दाल-चावल मिलाकर बनाया गया भोजन । पर्या०—पुंगल (पट०-४) (२) मकर-संक्रान्ति का पर्व, जिसमें नये चावल की खिचड़ी खाई जाती है (भोज०) । दे०—संक्रान्ति ।

खिचड़ी—(सं०) दे०—खिचड़ी । कहा०—'कोठिला नैंठि बोले जई, खिचड़ी खाके क्यों नहीं बोई' (—घाघ) = छोटी कोठी पर चढ़कर जई कहती है कि उसे खिचड़ी खाकर, अर्थात् मकर-संक्रान्ति के बाद क्यों नहीं बोया ?

खिच्चा—(सं०) (१) फसल (मकई आदि) की न पकी हुई (डुधिया) बाल (मं०, माग०-१) । दे०—डुध्या । (बि०) (२) वह फल, जो अभी पुष्ट तथा पोस्ता न हो, कोमल हो (चंपा०, मं०-२, मग०-५) । [< *कच्यक < *कच (विकसनं)]

खिजल—(कि०) धान का झड़ना (बर०-१) पर्या०—झिजल । [< *खि (मथे), अथवा < सीद् < *षदलू (विशरणपत्यवसावनेवु)]

खिजाया—(सं०) पहली बार कटा गया चावल, जिसमें धान और चावल मिले रहते हैं (उ० पू० मं०) । दे०—मुहचूर । पर्या०—अकड़ा (मग०-५), अखरा (मं०-२), बोकड़ा (चंपा०) । [देशी), मिला०—*खि (मथे) अथवा *खिचद् (= छोड़ना, मुक्त करना)]

खिनहुरी—(सं०) पुराना और बिलकुल घिसा हुआ हल । (सा०-१, चंपा०-१) । दे०—खिनोरी [खिन+हुरी < *क्षीय+हल (?)]

खिनोरी—(सं०) पुराना तथा घिसा हुआ हल । पर्या०—ठैठी (ब०-पू०, उ०-प० मं०, चंपा०), ठैठा (उ०-पू०, ब० मं०, चंपा०), खुटहरा (शाहा०), खिनहुरी (सा०-१, चंपा०-१), खुटहरा (शाहा०) । [खिन+ओरी < खिनहरी < *क्षीय+हल (?)] खिनोरी

खिनोरी के जोत—(सं०) पुराने और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (चंपा०, सा०) ।

पर्या०—ठैठा के जोत (मं०, चंपा०), खुटहरा (शाहा०) । [खिनोरी के+जोत (यो०) < खिनोरी < *क्षीयहल । जोत < *युक्त < *युज् । मिला०—*युत, *युत (भासने)] खिरदंत—(सं०) छोटकर (बावग) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (ब० मुं०) । [खिर+दंत < क्षिरदंत (?)]

खिरनी—(सं०) एक फल-विशेष । यह पीले रंग का होता है और इसका फल छोटा तथा खट-रस होता है (शाहा०-१, चंपा०, मं०-२) । [< *क्षीरिणी]

खिराज—(सं०) जमीन की मालगुजारी (सा०-१, चंपा०, मं०-२) । [खिराज (मं०)]

खिलकट—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (मं०) । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (ब०-पू०) । दे०—खिलमार । [खिल+कट < खिहा० < कटना (हि०) < *कृत]

खिलकट्टी—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (ब०-पू०) । दे०—खिलमार-२ । [खिल+कट्टी । मिला०—खिलकट]

खिलमार—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०—खील-२ । (२) शाहा०) । दे०—आबाद । (३) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन । पर्या०—नबाद खेत (गं० उ०), नौखिल (मया), खिलकट्टी, खिलकट (ब० पू०) । [खिल+मार < खिल+मार < मातं < मृत् (मिट्टी)]

खिलही—(सं०) जमीन्दार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी पर या बिना मालगुजारी के परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, प० मं०) । पर्या०—आसा चास (ब०-पू० मं०) खीलमारी (शाहा०) । [खिल+ही (प्र०) < *खिल]

खिल्लत—(सं०) सरकार की ओर से युद्ध आदि में की गई सेवा के बदले कम मालगुजारी



पर दी गई भूमि । दे०—जमीर । [खिल्लत (श०)]

खींची—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (ब० भाग०) । दे०—बेंगाठ । [अनु०, मिला०— $\sqrt{\text{खच}}$, $\sqrt{\text{खज}}$ (=मन्थे)]

खीरा—(सं०) लता में होनेवाला हरे रंग का एक बरसाला फल, जिसे कच्चा ही खाया जाता है । पर्या०—बालम खीरा=(१) चार फलवाला एक प्रकार का खीरा (चंपा०) । (२) एक प्रकार का छोटा और कोमल खीरा (शाहा०) । [खीरा < *खीरक (?) । खीरो (ने०) < खीरकः—(नेपा०); खिरा (बं०), खीरा (हि०, पं०), खिरा (मरा०)]

खीरी—(सं०) एक प्रकार का फल (बर०-१, चंपा, मग०-५, पट०-४) । दे०—खिरनी । [< खीरी < खीरन (?)]

खीला—(सं०)—(१) परती जमीन (चंपा०-१) । (२) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । पर्या०—कुराव (ब०-५०), खिल-कट, खिलकट्टी, खिलमार (मं०, जं०-२) । (३) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (उ०-५०) । पर्या०—पह (मं०, शाहा०, ब०-५०), कनिल (ब० भाग०), पौह (पट०, ब०-५०) । (४) प्रसूता गाय, भंस आदि मवेशियों का पहले-पहल निकाला गया पीले रंग का दूध (चंपा०) । (५) घाव के अंदर का मांस-कील [< *खिल]

खील कोइल—(मुहा०) धान की बोआई के उपयुक्त बनाने के लिए गैर-आवाद या बंजर जमीन को कोड़ना । पर्या०—खील तोड़ल । [खील + कोइल < खिल + कोइल, कोइना (हि०), मिला०— $\sqrt{\text{कुडि}}$ (=बंकरव) अथवा $\sqrt{\text{कु}} (=बिभवे)]$ ।

खील तोड़ल—(मुहा०) दे०—खील कोइल । खील + तोड़ल < खिल + तोड़ल < $\sqrt{\text{तुट्}}$ वा $\sqrt{\text{तृट्}}$ (छेदने), तोड़ना (हि०)]

खील बेटाओल—(मुहा०)—(पट०) दे०—अबाद । [खील + बेटाओल < खिल + बेटाओल, बेटाओल (हि०) < बेटन]

खीलमारी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिलही ।

[खील + मार + ई (प्र०) < खील मार < खिल + मार]

खुटहरा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिनोरी के जोत । [खुट + हर + आ । खुट < खूट्र (संस्कृ०), खूट्र, खुट्र (प्र०) > कोटा, खोटा (हि०) + हरी < हल]

खुटा—(सं०)—(पट०, गया, पट०-५, मग०-५) दे०—खुटा, जंवा । [खूट्र, खोड (संस्कृ०) खोड (प्र०), खूटा (हि०)]

खुटिया—(सं०)—(१) (उ०-५० मं०, चंपा०, भाग० १, मं०-२, मग०-५) । दे०—खूटी । [खुट + इया (प्र०) < खूट्र, खूट्रिका वा खोड (=खूटा, जिसमें हाथी बांधा जाता है ।)] (२) (ब० भाग०) । दे०—दोंजी । (३) (गया, ब० भाग०) दे०—जड़ । [खुट + इया (अल्पा० प्र०) < खूट्र, खूट्रिका, खोड]

खुटहरा—(सं०)—(शाहा०-१) । दे०—खुटहरा । खुडल—(कि०) लीपी-पोती जगह पर पशुओं का पहुँचकर खून्हना । [खुड + ना (प्र०) < *खुर, $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुआ, खोआ—(सं०) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली पहली दोनी (ब० भाग०, मं०-२) दे०—घोर । पर्या०—खेप (चंपा०) । [खुआ, खोआ < खोद < $\sqrt{\text{खुदिर}}$ (=संवेष्टन), खूदना (हि०), खूनल (वि०) अथवा $\sqrt{\text{खुर}}$ (ण) + < *खुर]

खुलसा—(सं०) एक पशुलाघ घास । [देशी] खुखुड़ल—(वि०) पानी आदि के कारण लकड़ी आदि का कमजोर, मुलायम और हलका हो जाना (शाहा०-१) । [देशी]

खुखुड़ी (सं०)—(१) मकई के भूटटे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट (ब०-५० शाहा०, शाज०) । दे०—खेंडा । पर्या०—हकी (सं०-५०), खुखुड़ी (शाज०) । (२) एक प्रकार का वस्त्र, जो छोटी तलवार की तरह होता है । [देशी, मिला०—खंकर या कंकाल]

खुटहरा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिनोरी । पर्या०—खूटेहरा (शाहा०-१) । (२) पशुओं का खोरहा रोग (मग०-५) । [खुट + हर + आ < खूट्र + हल]

खुटिया—(सं०) दे०—खूटिया ।

खुटियारी—(सं०) ऊँख की खुट्टीवाला खेत (पट०-१) । [खुटिया + री (प्र०) < खोटे]

खुट्टा—(सं०)—(१) ढँकी का वह स्तंभ, जिसपर वह टिकी रहती है (ब० भाग०, ब०-५०) । दे०—जंवा । (२) मवेशियों के बाँधने का लकड़ी या बाँस का स्तम्भ, जो जमीन में गड़ा रहता है । (३) (पू० मं०, मं० ब०) । दे०—खूटा । [< खूट्र (१) < खोड (=हाथी आदि के बाँधने का खूटा), खूट (प्र०) । मिला०— $\sqrt{\text{कुट्}}$ (प्रतिघाते) —(म०-५०), खूटा (हि०)]

खुट्टी—(सं०)—(१) वह ऊँख, जो पहले कटे हुए ऊँख की जड़ से पैदा हुआ हो (पट०-१, चंपा०) । (२) कटी हुई फसल की जड़ । (३) कपड़ा आदि लटकाने के लिए दीवार में गाड़ी हुई कील । [खोटे, दे०—खुट्टा]

खुट्टी छोड़ल—(मुहा०) दूसरे साल के लिए कटी हुई ऊँख की जड़ को छोड़ देना, ताकि फिर से उसमें पोषा उगे (पट०-१, चंपा०) । [खुट्टी + छोड़ल]

खुडहेल—(कि०) जमीन की ऊपरी सतह पर से मिट्टी या घास आदि का हटाना (चंपा०-१) । [खुड + हेर + ल (प्र०) < खूट्र वा खुर + हेर < हल]

खुदनी—(सं०) फावड़ा, चौड़े फलक की कुवाल (गया) । दे०—कोरा । [खुदनी < खोदल (विहा०), खोदना (हि०), मिला०— $\sqrt{\text{कुड्}}$ अथवा $\sqrt{\text{खुद}}$ (=हिलना, डोलना, चलना (नैघ०—प्रयो०—मो-वि० डि०)]

खुदर—(सं०)—(पं०, पं० मं०) । दे०—गुदरी [< खूट्र]

खुदराहा मालिक—(सं०) जमींदारी में कम (खुदरा) दाय रखनेवाला स्वामी (मग०-५) । दे०—खुरदिहा मालिक ।

खुदरिआ मालिक—(सं०)—(चंपा०) । दे०—खुरदिहा मालिक ।

खुदी—(सं०) चावल का टूटा हुआ छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१) । दे०—खुदी । [< *खूट्र, (संस्कृ०), < खुद (प्र०)]

खुदर—(सं०) ऊँख की सिद्धी, जो जलावन या खाद के काम आती है (शा०-१, मं०-२) ।

[< खूट्र]

खुदी—(सं०) चावल, दाल आदि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े । पर्या०—खंडौरा (ब०-५० शाहा०), मेरखुन (ब० मं०, चंपा०) । [खुद + ई (प्र०) < *खूट्र]

खुन्हल—(कि०) लीपी-पोती या बनी-बनाई जमीन या किसी दूसरी वस्तु पर मनुष्य अथवा पशु द्वारा पंरों से कुचलना, जिससे उसपर पंर के चिह्न हो जाते हैं । [< *खोदन < $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुम—(सं०) अन्न रखने के काम

में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (मं० ब०) । [< कुम्म (संस्कृ०), मिला०—कुम्प, कुम्म = गोल बरतन (लो० बर००)]



खुम

खुर—(सं०) सींगवाले चौपायों के पंर की कड़ी टाप, जो कटी हुई होती है (चंपा०-१, विहा०, शाज०) [< खुर वा खूर । खुरः (संस्कृ०), खुरो, खुर (पा०), कसुर (पं०) = खुर, खुर (स्त्री०), एखी (रोम०), खुर (बरनी), खुरि (पस्तो), खुर (=पंर) (पं० पहा०), खुर (कुमा०), खुरा (अस०), खुर (सि०), खुर (गु०), खुर (मरा०), खुर (ने०)]

खुरकी—(सं०) अफीम या किसी अन्य फसल के साथ होनेवाली एक घास (उ०) । पर्या०—मछैती (उ०), रुआरी (सा०)—(मिला०—रुआरी) । [देशी, मिला०—खूरक = एक प्रकार का पोषा, खूटा (हि०)]

खुरखुन—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (गया, ब० मं०) । दे०—बेंगाठ । [खुर + खुन < खुन, (खुर) + खुन, खूनल (विहा०), खूदना (हि०) < $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुरचन—(सं०)—(१) बरतन के खुरचने से निकली हुई शेष अफीम । (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु । पर्या०—खखोरन (गया, ब०-५० शाहा०, ब० मं०) । खखोरी (चंपा०, मं०-२) । [< खरण < $\sqrt{\text{खुर}}$]



खुदनी

खुरचनी—(सं०) (१) दूध या मक्कन गर्म करने के पात्र की तलहटी में लगा हुआ अर्धद्वय पदार्थ-विशेष (पट०, भाज०)। दे०—डाढ़ी। (२) खुरचने का औजार। [खुरचन+ई (प्र०) <खुरचल (बिहा०), खुरचना (हि०) <खुरण]

खुरदाई—(सं०) फल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली दूसरी दोनी (ब०-पू० मं०)। दे०—डंटी दाँवल। [खुर+दाँई <खुर (भूर) वा चूद्र+दाम, दमन <√दम्]

खुरदिया मालिक—(सं०) (ग० ब०, मग०-५)। दे०—खुरदिया मालिक। [खुरदिया+मालिक <खुरा+मालिक। खुरा <चूद्र (संस्क०), खुरा <खर्द (का०)+मालिक (का०)]

खुरदिहा मालिक—(सं०) जमींदारी में थोड़ा दाय रखनेवाला स्वामी (गं० ब०, मग०-५)। पर्या०—खुरदिया, मालिक जुजबी हिरसेदार (पट०)। खुरदिहा मालिक (मग०-५)। खुरदिया मालिक (चंपा०, सा०)। [खुरदिहा+मालिक, मिजा०—खुरदिया मालिक]

खुरदौती—(सं०) (गया)। दे०—खुरदाई तथा डंटी दाँवल। [खुर+दौती <खुर, (भूर) वा चूद्र+दौती <दान्ति <√दम्]

खुरदौनी—(सं०) (१) (चंपा०, पट०)। दे०—खुरदाई तथा डंटी दाँवल। (२) खलिहान बनाने के समय मिट्टी को बँटाने के लिए उस जमीन पर बँलों को चलाना। [खुर+दौनी <खुर—भूर, वा चूद्र+दौनी <दमन <√दम्]

खुरनी—(सं०) (गया)। दे०—खुरनी तथा फौरा। [खुरनी <खुरण वा चोदन <√चूद]

खुरपा—(सं०) घाम-गर्ज हटाने, गड़ने या फसल लगें हुए खेत की मिट्टी खुरोचने के काम में आनेवाली लोहे की बनी हुई खुरपी (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४, मं०-२, भाज०)। [खुर+पा (संस्क०), खुरप (प्रा०), खुरपा, खुरपा (संता०), खुरपे (मरा०) खुरपी (बं०)]

खुरपी—(सं०) (हर०-१)। दे०—खुरपा। [खुरपा+ई (अल्पा० प्र०) <खुरप्र]

खुरपियान—(सं०) ऊपर-ऊपर से छिलकर घास आदि निकालने की प्रक्रिया (उ० प०) दे०—टिपनी। [खुरपा+इयाना (प्र०) <खुरप्र]

खुरपियाना—(सं०) खुरपी से कोइना (छिछली-ऊपर-ऊपर की कोइई) (उ० प०) पर्या०—कमैनी, कैरौनी (चंपा०, मं०), कोइनी (गं० ब०, छेत्रनी (ब० प० शाहा०), कैलौनी, कमौनी (ब० भाग०, मं०-२, मग०-५, पट०-४) खुरपियावल—(फि०) खुरपी से छिछली कोइई करना। खुरपी से खेत की घास-पात निकालना। (बि०) खुरपी से घास-पात आदि निकालकर साफ की गई भूमि। [खुरपि+आवल (प्र०) <खुरपी <खुरप्र]

खुरपी—(सं०) (उ० बिहा०, भाज०)। दे०—खुरपा।

खुरपेड़िया—(सं०) वह रास्ता, जो खेतों की मँड़ से होकर जाय (चंपा०-१, मं०-२)। पर्या०—खुड़ारी (प० चंपा०), खुरयाड़ी (सा०-१)। [खुर+पेड़िया <खुर वा चूद्र+पधा (?)]

खुरसा—(सं०) एक प्रकार की साग। कुलफे की साग। पर्या०—गोलावा (पट०, गया, सा०)। [खुरफा (का०)]

खुरमा—(सं०) (१)—खुहारा। खजूर का भेद। यह रेगिस्तान में होता है (पट०-१, मग०-५)। (२) जाट का बना एक प्रकार का मीठा साज। [खुरमः (का०)]

खुरयाड़ी—(सं०) (सा०-१)। दे०—खुर-पेड़िया। [खुर+याड़ी, वा खुर+या+आड़ी वा खुरया+ड़ी (प्र०)। खुर+आर वा आरी (बिहा०)]

खुरसनिआ—(सं०) एक प्रकार का छोटा-सा मिर्चा, जो अत्यन्त तीता (कड़वा) होता है (चंपा०-१, मं०-२, मग०-५)। [खुरसनि+इआ (प्र०) <खुरसान]

खुरहेठो—(सं०) घाम आदि के चलने से जमीन में उगनेवाला खुर का चिह्न (शाहा०-१)। [खुर+हेठो (प्र०, या देशी) <खुरे]

खुर्या—(सं०) (सा०, चंपा०)। दे०—खुरपी। [खुर्या <खुरप्र]

खुरपी—(सं०) (१)—कड़ाह की पेंदी में चीनी बँठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार। पर्या०—खुरपा (सा०, चंपा०), कठखुरपी (उ०-पू० मं०), पेड़नी (पट०), डपटन (ब० भाग०)। (२) दे०—खुरपा [खुरपी+ई (अल्पा० प्र०) <खुरप्र]

खुरा खरीद—(सं०) खेती की वह प्रणाली, जिसमें नील की खेती करने के लिए निहहे किसानों को ब्रियम मूल्य तथा उचित मूल्य पर नील का बीज देते थे, जिसका मूल्य बाद में हिसाब के अनुसार चुकता होता था। पर्या०—खुरसकी (चंपा०), नविरतखानी (उ०-पू० मं०)। [खुरा+खरीद (का०)]

खुरसकी—(सं०) (चंपा०)। दे०—खुरा खरीद। [खुरस+की <खुरा (का०)]

खुरसकी ठीका—(सं०) किसी विशेष निश्चित कर पर कुछ वर्षों के लिए ली गई जमींदारी। [खुरसकी <खुरा वा खुरसकी (का०) मिला०—शुष्क (संस्क०)+ठीका (हि०)]

खुरसखुरस—(सं०) ऊख की मिल का एक यंत्र, जिससे छनकर रस अगले यंत्र में चला जाता है और सिट्टी पुनः रीकर के पास लोट आती है (री०, हरि०)

खुरसवरी—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटी पीली फली, जो स्वाद में लट-मिट्टी होती है। दे०—मकोय [खुरस+वरी <कुशवरी (?), मिला० गूज-वेरी (मं०)]

खूँटा—(सं०) (१) बाँस की कोठी या वह स्थान, जहाँ बाँस होता है (शाहा० चंपा०, सा०)। (२) कपड़े का एक छोर (शाहा०-१, चंपा, सा० मं०)। [मिला०—कूट]

खूँटा—(सं०) (१) (मं०, प०) दे०—खूँटा और जंघा। (२) मवेशियों के बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना स्तंभ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (बिहा०, भाज०) (३)—वह स्तम्भ जिसके सहारे ढँकी लड़ी रहती है। पर्या०—खूँटा (पू० मं०, गं० ब०, खंभा (पू० मं०, गं० ब०), जंघा (प० मं०, सा०, चंपा०),

खाम्हा (प० मं०, सा०, चंपा०)। (४)—ऊख के कोलू का सीधा लड़ा खंभा (पट०, गया)। दे०—हरसा। (५)—साठा के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसपर मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है। पर्या०—खूँटी, गँड़मेखा—पट०, गया)। गुल्लो (पट०), किल्ला (पट०, ब०-पू०)। [खूँटा, मिला०—खूँटा, खूँटा (प्रा०), मिला०—खूँटा (प्रतिघाते)—(मं० भ्यू०)]

खूँटा मानल—(बि०) वह मवेशी, जो विक्री के बाद दूसरे स्वामी के यहाँ जाने पर खाना छोड़ देता है। (शाहा०-१, मग०-५, पट०-४, चंपा०, सा०)। [खूँटा+मान+ल (बि० प्र०)]

खूँटी—(सं०) (१)—नील, ऊख आदि की दूसरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी की जड़ से पुनः उगती है। पर्या०—दौंजी (ब०-पू० मं०)। (२) ऊख काट लेने के बाद उसके मूल से निकला हुआ छोटा पौधा (भ्रंशुर), जो बाद में ऊब बन जाता है (गं० उ०, बिहा०)। पर्या०—खूँटिया (ब०-पू० मं०), पनपा (बिहा०), खूँटी ऊख री०)। (३) दे०—खूँटा। (४) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (गया, ब० भाग०)। दे०—जड़। पर्या०—खूँटिया। (५) छोटा खूँटा या कीला [खूँटा+ई (अल्पा० प्र०) <खोड, खूँटा। <खुण्ट (प्रा०)—नेपा० मिला०—कुठ (प्रतिघाते) (मं० भ्यू०)]

खूँटी ऊख—(सं०) दे०—खूँटी (री०)। [खूँटी+ऊख]

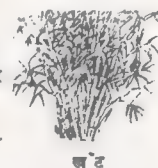
खूँचा, खोआ—(सं०) खलिहान में दान के लिए छोटी हुई तैयार फसल (ब० भाग०)। दे०—पंर। [खूँचा <खूँचक]

खूँका—(सं०)—नागरियल या ताड़ की ज़ाँटी के भीतर का बहुत ही मूल्यमय गूदा (शाहा०-१) [देशी]

खूँरा—(सं०) (१) वह घाघार, जिस पर अन्नाघार (कोठी) अवस्थित रहता है (पट०)। दे०—गोडा। (२) (ब० प० शाहा०) दे०—कखार। [खूँरा <खूँचक]



खुरपा



खूँटा



खेड़ी-(सं०)-(१)(गया)। दे०-खेड़ा। (२) सीढ़ी (पट०)। (३) कोदो-जाति का एक प्रकार का अन्न। [< खात, कर्ष, गर्त, श्रेणी]

खेबट-(सं०)-(१) जमीन के मालिक का अधिकार-संबंधी कागज, जो जमीन की पैमाइश के बाद तैयार होता है (सा०-१ चंपा०, मग०-५) [खे+वट<खेत+बौट] (२) नाव को चलानेवाला मल्लाह। [< *क्रेवट]

खेवा-(सं०) नाव से पार करने के लिए दिया जानेवाला शूलक।

खेखरी के मान-(मुहा०) ऊसर जमीन (शाहा०-१)। [खेखरी के+मान]

खेखसा-(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार या सुखी तरकारी बनती है (गया)। दे०-चठेल। [देशी, मिला०-क्रीकस=कड़ा, कील, पतलियों की हड्डी; संभ०-चठेल के काटों-जैसी खिलों के कारण ही खेखला (कीकस्य) नाम पड़ा हो]

खेड़हा-(सं०)-(बर०-१)। दे०-खेड़ा। [< *कर्ष]

खेड़ही-(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [देशी]

खेड़ा-(सं०)-(चंपा०-१)। दे०-खेड़ा। [< *कर्ष]

खेड़ी-(सं०) मूँग (बर०-१)। [देशी]

खेड़ा-(सं०)-(१) हरिस

के ऊपर पालो बांधने

की जगह पर, उसके

निचले भाग का कटा

हुआ अंश। पर्या०-

खेड़ी (गया), खेदी

(शाहा०), खेहा (पट०) खाता (चंपा०), खादी

(मं०), खड़हा (ब०-पू० मं०), खोड़ा (ब०-पू०

बिहा०), काढ़ (ब०-पू० बिहा०), खेड़ा (चंपा०

१), खादी (मं० २)। [< खात, < *कर्ष]

(२) स्वेन वर्ण के शूक (सूँग) से युक्त एक

प्रकार का घान (मं० उ०, चंपा०-१)। पर्या०-

खेड़ा (चंपा०-१), खेड़हा (बर०-१)। [देशी]

खेदी-(सं०)-(१)-(शाहा०)। दे०-खेड़ा।

(२) बाँस, लकड़ी, पत्थर या ईंट आदि से

बनाई गई ऊपर चढ़ने की सीढ़ी। [< खात, < कर्ष, < श्रेणी]

खेत-(सं०)-(१) वह जमीन, जो पहले परती हो, किंतु बाद में तीन वर्ष पहले से आबाद हो रही हो। पर्या०-पही (चंपा०), पड़ (उ०-पू० मं०)। (२) खेती के योग्य जमीन का घिरा या सीमित टुकड़ा (बिहा०, आग०)। पर्या०-टोपरी, पारी (मं०-ब०), टोपरा (प०), डाबर (चंपा, गया), बारी, बहियार (ब० भाग०)। [< *खेत्र]

खेत गोबराबल-(मुहा०) खाद के निमित्त खेत में पशुओं को बँटाना (ब० मं०)

खेतपथार-(सं०) मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति। दे०-खेती बारी। [खेत+पथार<*खेत्र+प्रस्तार (=समभूमि), पथार (प्र०), पथार (प्रस०)=वृद्धिदि रहित नीची जमीन]

खेतबधार-(सं०)-मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति। [खेत+बधार<खेत+पथार<*खेत्र+प्रस्तार, दे०-खेत पथार]

खेतभोज-(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के प्रथम दिन किसान द्वारा दिया जानेवाला भोज (पू० मं०)। दे०-पहिलरोप। [खेत+भोज<*खेत्र+भोज]

खेतभोजनी-(सं०)-पू० मं०)। दे०-खेतभोज तथा पहिलरोप। [खेत+भोजन+ई<*खेत्र+भोजन]

खेतमास-(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। पर्या०-खेतमासु। [खेत+मास<*खेत्रमाष (?)]

खेतमासु-(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। दे०-खेतमास। [खेत+मासु, मिला०-खेतमास]

खेतहा कौड़हा-(सं०) जेत जे होनेवाला कौड़हा (पट०-१)। [खेतहा+कौड़हा<खेत्रीय+कुमारण्ड]

खेती-(सं०) खेत का काम, खेत-संबंधी कार्य। [खेत+ई (प्र०)<खेत्रीय]

खेतीबारी-(सं०) मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति (प० मं०)। पर्या०-खेतबधार (शाहा०, पट०), खेतपथार (चंपा०, ब० मं० भाग०-१)

[खेती+बारी<*खेत्र+वाट, वाटिका]

बनाई गई ऊपर चढ़ने की सीढ़ी। [< खात, < कर्ष, < श्रेणी]

खेत-(सं०)-(१) वह जमीन, जो पहले परती हो, किंतु बाद में तीन वर्ष पहले से आबाद हो रही हो। पर्या०-पही (चंपा०), पड़ (उ०-पू० मं०)। (२) खेती के योग्य जमीन का घिरा या सीमित टुकड़ा (बिहा०, आग०)। पर्या०-टोपरी, पारी (मं०-ब०), टोपरा (प०), डाबर (चंपा, गया), बारी, बहियार (ब० भाग०)। [< *खेत्र]

खेत गोबराबल-(मुहा०) खाद के निमित्त खेत में पशुओं को बँटाना (ब० मं०)

खेतपथार-(सं०) मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति। दे०-खेती बारी। [खेत+पथार<*खेत्र+प्रस्तार (=समभूमि), पथार (प्र०), पथार (प्रस०)=वृद्धिदि रहित नीची जमीन]

खेतबधार-(सं०)-मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति। [खेत+बधार<खेत+पथार<*खेत्र+प्रस्तार, दे०-खेत पथार]

खेतभोज-(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के प्रथम दिन किसान द्वारा दिया जानेवाला भोज (पू० मं०)। दे०-पहिलरोप। [खेत+भोज<*खेत्र+भोज]

खेतभोजनी-(सं०)-पू० मं०)। दे०-खेतभोज तथा पहिलरोप। [खेत+भोजन+ई<*खेत्र+भोजन]

खेतमास-(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। पर्या०-खेतमासु। [खेत+मास<*खेत्रमाष (?)]

खेतमासु-(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। दे०-खेतमास। [खेत+मासु, मिला०-खेतमास]

खेतहा कौड़हा-(सं०) जेत जे होनेवाला कौड़हा (पट०-१)। [खेतहा+कौड़हा<खेत्रीय+कुमारण्ड]

खेती-(सं०) खेत का काम, खेत-संबंधी कार्य। [खेत+ई (प्र०)<खेत्रीय]

खेतीबारी-(सं०) मूँस्वामी की भू-सम्पत्ति (प० मं०)। पर्या०-खेतबधार (शाहा०, पट०), खेतपथार (चंपा०, ब० मं० भाग०-१)

[खेती+बारी<*खेत्र+वाट, वाटिका]

खेती-भवानी-(सं०) फसल या तरकारी काटने के समय कोहरियों द्वारा पूजित एक देवी।

[खेती+भवानी<*खेत्र+भवानी]

खेना-(सं०) दे०-खेना। [खेना<अखेना<*अक्षणि] दे०-अखेना]

खेप-(सं०)-(१) बोलों के डोलने या किमी और काम का क्रम या पारी। (२)-(चंपा०)। दे०-खेप। [< *खेप<*खिप]

खेपान-(सं०) ऊँस के रस का उतना परिमाण, जितना एक बार में उबाला जा सके (ब०-पू० मं०)। दे०-ताव। [खेपान<खेप (बिहा०) (=वार, क्रम)<*खेप<*खिप्]

खेरीही-(सं०) एक कवच, जिसके बावल की खीर अच्छी बनती है। यह कोदो की जाति का है (मं०-१)। पर्या०-खेड़ी (कहीं-कहीं)। [देशी, मिला०-कोरदूष]

खेही-(सं०)-(चंपा०-१)। दे०-खेड़ा। [देशी]

खेवट-(सं०)-(१) किसी जमींदार के किसी गाँव के हिस्से की तहसील (सा०-१)। (२) वह कागज, जिसमें मालिक, मूकरीदार या विरितदार के हक का इंदराज रहता है, (सा०-१)। [खे+वट<खेत+वट<वौट]

खेसरा-(सं०) वह कागज, जिस पर खेत का नंबर और क्षेत्रफल लिखा रहता है। (सा०-१, चंपा०, मग०-५, पट०-४, मं०-२)। [खेसरः (ब०), खसरा (हि०), खेसो (ने०)]

खेसारि-(सं०)-(बर०-१)। दे०-खेसारी।

खेसारी-(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, किंतु तीन ओर से थोड़ा चिपटा, ऊपर से मट-मंला और भीतर पीला होता है। (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४, मं०-२, भाग०-२)। पर्या०-

खतरी (शाहा०), खेसारि (बर०-१)। लोको-मुकतारी, बेल खेसारी, बाभन आम, कायब काम। -मूलमानों को ताड़ी, बेलों को खेसारी, बाभनों को आम तथा कायब को काम प्रिय होता है। [खेसारी<खंजकारि, कुशर (हि० ब० सा०), संभ०-खे+सारी<खेत+सारी<*खेत्रशालि अथवा करोल्क (क+खेवक)<क (=बाध या जल)+ख

(हिंसायाम्) वा श्रुथा (पाके), अथवा *कशु (सन्धे) वा त्रिपुट होने के कारण, कृषानु (=माष=तीन)+पुट (?) , खेसारी (हि०), खेसारी (ब०), खेसारी (मं०), खेसारि (ने०)]

खेस्टा-(सं०) विना रजिस्ट्री की गई जमीन-संबंधी कागज। (चंपा०-१, मग०-५, मं०-२, पट०-४) [देशी, मिला०-खेसो (ने०)]

खेहा-(सं०)-(पट०) दे०-खेड़ा। [< खात, < कर्ष]

खेचा-(सं०) बड़ा टोकड़ा। [खेच+आ<खचित<*खच]

खेची-(सं०)-(१) कोल्ह में ऊँस के टुकड़े डालने-वाली टोकरी (शाहा०, पू० मं०)। दे०-छेटी। (२) टोकरी। [खेच+ई (प्र०)<खचित<*खच वा *खच (समबाय)]

खैर-(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध कंटोला वृक्ष। यह खंभा आदि के काम में आता है। पर्या०-

खैरा (चंपा०)। (२) पान के माष साया जाननेवाला कच्चा। [खैरि (संस्क०) खैरि (पा०), खैरि (प्र०), खैर (हि०), खैर (कश्मीर), खैर (अस०), खैर (ब०), खैर (मं०), खैर (मि०), खैर (ने०), खैर (गु०), खैर (मग०), खैरि (मि०)]

खैरा-(सं०)-(१) धान में जगनेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण बाल पीले रंग की हो जाती है तथा उसमें दाना नहीं होता (प०)। पर्या०-

खैरी (उ०-पू० मं०)। [देशी, संभ०-करई वर्ण के कारण] < खैर < खैरि] (२) एक प्रकार का कंटोला वृक्ष। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खंभा आदि के काम में जाती है (चंपा०-१)। [दे०-खैर-१] [खैर+आ (प्र०)<*खैरि, <*खैरि]

खैरी-(सं०)-(उ०-पू० मं०)। दे०-खैरा। [देशी, मिला०-खैरा]

खोईचा-(सं०)-(पू०-मं०)। भट्टे के ऊपर की परतदार पत्तियाँ। दे०-खोईया। [क्रोशिक <क्रोश, <कुंछ वा *कुंच, *खोद (=फँकना, निकालना)]

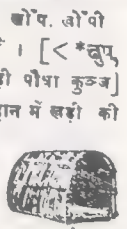
खोखरी-(सं०) मकई की बाल नें से दानों को निकालने के बाद बची हुई डाँट (ब०-प० शाहा०)

खोखरी-(सं०) मकई की बाल नें से दानों को निकालने के बाद बची हुई डाँट (ब०-प० शाहा०)



खेड़ा

दे०—लेट्टी। पर्बा—बलुरी (मग०-५) लेंदा (चंपा०), [देशी, मिला०—खोखड़ी, कंकाल] खोच—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट में सुविधा के लिए लगाया गया लकड़ी का पाचड़ (पू०)। दे०—रोड़ा। (२) लकड़ी से या किसी और पदार्थ से खोंच कर लगा आघात। [देशी, मिला०—खच > खचित] खोचरी—(सं०) अन्न रखने के लिए लड़ की बनी हुई कोठी (द० भाग०)। पर्या०—खोचली (मग०-५), बाँध ब० भू०)। [देशी, मिला०—खच वा खचू (समवाय)] खोचली—(सं०) (मग०-५)। दे०—खोचरी। खोंटल—(कि०) (१) किसी पीधे की फुनगी को ऊपर से तोड़ लेना (सू०-१, मग०-५, म०-२, चंपा०)। (बि०) (२)—खोंटी हुई वस्तु (चंपा०-१)। [< खुड, (= तोटना), खुंड (= तोड़ना), वा, खोट (भेषे)] खोढ़ा—(सं०) (१)—ब०-पू० बिहा०)। दे०—खड़ा। (२) पहाड़ा [< खात, < कर्ष, < कर्ष] खोंता—(सं०) (१) एक प्रकार का फल (द०-२)। (२)—पक्षियों का घंसेला। [देशी] खोंप, खोंपी—(सं०) (१) भूसा रखने के लिए लड़ आदि का बनाया हुआ घर। गं० उ०, म० २)। (२) बसारी के ऊपर का गोलाकार छप्पर (शाहा०-१, चंपा०, सा०)। पर्या०—खोंप के मथनी—वर्षा आदि से बचाव के लिए खोंप के ऊपर लगाया हुआ छप्पर। (३) स्त्रियों के केशों का एक शृंगार-विन्यास जिसमें वेणी गुंथकर छत्राकार बनाई जाती है और उसमें नील, फूल आदि जड़े जाते हैं। [< *क्षुप, < *क्षुपक वा < *क्षुप = साड़ी पीधा कुञ्ज] खोंपड़ा—(सं०) खेत या खलिहान में लड़ी की गई खोपड़ी (ब०-पू०, मग०-५)। दे०—मडई। [खोंपड़ा (प्र०) < *क्षुप, < *क्षुप (संस्क०), खोपड़ा (हि०), खोपड़ा



खोपरा

(मरा०), खोपड़ी, खोपड़ा (गु०), खोपी (ने०), खोपड़ (संता०) (= धनी सादियों का जंगल)। खोपड़ा (हि०) = खोपड़ी, कपाल < खर्पर, कपाल] खोपड़ी—(सं०) (म०-२, मग०-५, धन्वज)। दे०—खोपड़ा तथा मडई। [खोंप+ड़ी (प्र०) मिला०—खोंपड़ा] खोंपी, खोंप—(सं०) (गं० उ०)। दे०—खोंप। [खोंप+ई (प्र०), मिला०—खोंप] खोआ, खुआ—(सं०) (१) (द० भाग०)। दे०—खुआ तथा पौर। (२) बाँवने के लिए खलिहान में छोटी हुई तैयार फसल (द० भाग०)। दे०—पौर। (३) दूध का बना होना। [< *खोय < *खुद (पेषण)] खोइया (सं०) (१) रस निकाल जाने के बाद का ऊख का डठल (चंपा०, म०-२, अज०)। पर्या०—खोइया (पट०, गया, पू०, पट०-४, मग०-५), खाइहा (द० भाग०), चेफुआ (शाहा०, चंपा०), बगास चंपा० सा०-१)। (२) घफंम आदि के बीजकोष के ऊपर का छिन्का (गं० उ०)। पर्या०—खोहिया (गया), खोलड़ी (ब०-पू० शाहा०), बोकला (शाहा०, शंष भाग, ब०-पू० बिहा०), बकुला पट०)। (३) भेंट का लड़कू रामदाना (सू०-१)। (४) ऊख चूसने के बाद उसका चूसा हुआ शंष भाग, जो फेंक दिया जाता है (गं० उ०)। पर्या०—खोहिया, चेपुआ (गं० उ०), चोपा (द० भाग०)। सिट्ठी = चूसकर मूल से निकाला हुआ ऊख का शंष भाग। (५) किसी फल आदि का छिलका (चंपा०-१)। [< *कोशिक < *कोश, < *कुचित < *कुंच वा खोटित < *खोटित < *खोट वा < *कोशिक < *कोश] खोइहा—(सं०) (द० भाग०)। दे०—खोइया। मिला०—खोइया] खोइया—(सं०) (१) भट्ट के ऊपर की पत्तियाँ (प०)। (२) किसी वस्तु के ऊपर का रसहीन छिलका। पर्या०—खलखोइया, खोला (सामा०), खलखोइया (चंपा०), बनके, कोसा (द०-३०-म०) खोइया (पू० म०) पतीरा (द० म०), पांचो (द० भाग०)। खलखोइया (मग०-५, चंपा०)। [< *खोटित

< *खुद; < *कुचित < *कुंच < *खोटित < *खोट वा < *कोशिक < *कोश] खोखसा—(सं०) एक प्रकार का फल (द०-१)। [मिला०—खोखसा] खोखड़ा—(सं०) पाला या मारा जादि से प्रस्त जवार, मकई, बाजड़े आदि की कमल (शाहा०)। दे०—खलियाएल। [देशी, मिला०—खखजू (मन्ये) खखजू (गति बंकल्ये)] खोदली—(सं०) (१) कोठी या बीवार के भीतर कुछ रखने के लिए बनाया गया छोटा-सा खोलला भग, ताखा (चंपा०-१)। (२) काम के बगीचे में काम रखने के लिए जमीन खोदकर और उसके ऊपर कुछ रखकर तथा उसे मिट्टी से ढककर बनाया गया गड्ढा। इसमें बगल की ओर मुँह रहता है। (चंपा०-१)। पर्या०—खधुली (चंपा०) खोधिना (म०-२)। [खोदल + ई (प्र०) < खोद, खोदल, < कोटर (?)]] खोधिना—(सं०) दे०—खोदली-२ (म०-२)। खोभइया—(सं०) रतालू (शाहा०-१)। दे०—समहइया। [देशी] खोभी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (ब०-पू०-म०, गया, चंपा०)। [देशी, मिला०—खुमा (= अलसी, सन या नील), खुमा, खुमा = एक प्रकार का अन्न]] खोर—(सं०) (१) इकट्ठा किये हुए अनाज की राशि (उ०-पू० म०)। दे०—रास। [खोय = लड़कू (म० बि० बि०)] (२) पानी का घेरा। बाँध का घेरा। बाँध हुआ पानी (सू०-१) देशी, मिला०—खोड (देखी) = सीमा निर्धारक काष्ठ। खोड (संस्क०) = खूट]। (३) (ब०-पू० म०)। दे०—खोरा। [मिला०—खोरा] (४) वहाँ मचन का मिट्टी का बड़ा बरतन (म०-२) खोरा—(सं०) (१) ऊख के उबाले हुए रस को रखने का बरतन (ब०-पू०)। दे०—बट्टी। (२) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूना है पराँठ—खोर (द०-पू० म०), नाव (शाहा०), कुंडा (शाहा०, प० म०, पट०),



खोरा

खुआ। (३) अन्न रखने के काम में जानेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (पट०, गया, ब० म०)। (४) गूदे रखने का मिट्टी का बरतन, तोला, बड़ा बरतन (सू०-१)। [मिला०—कुत्तु (चमड़े का बना तेल का पात्र), खोडी (देखी) = काष्ठ की पेटी (पा० स० म०)। खोण < खोणी। कूट वा कुंड = एक प्रकार का बरतन। खोल या खोलक (= पात्र)] खोरासानी जवाइन (सं०) अजवायन की तरह का एक मसाला। [खोरासानी + जवाइन] खोल—(सं०) (१) पानी पटाने के काम में जानेवाले डेकुल के लम्बे की शाखाओं में किया हुआ छिद्र, जिसमें घुरी लटकती रहती है। (२) नाव में से पानी उपछने का एक बरतन (म०-२)। (३) किसी वस्तु का ऊपरी आवरण। (४) जोड़ने का मोटा कपड़ा। (५) दे०—अनपट। [खुड, *खुल; < खोल, < खोलक] खोलड़ी—(सं०) (२) बीजकोष के ऊपर का छिलका, (ब०-पू० शाहा०)। दे०—खोइया। (२) मँडूए के दातों को निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की मूसी (द०-पू० शाहा०)। दे०—बाँटी। [खोल + डी < *खोल (संस्क०)] खोलसा—(सं०) (म० द०-पू०)। दे०—अनपट, खोब। [खोल + सा < *खोल] खोला—(सं०) (पू०)। दे०—अनपट। [मिला०—खोल] खोह—(सं०) बाँवने के लिए खलिहान में छोटी हुई तैयार फसल (चंपा, ब०-पू० म०)। दे०—पौर। [< *खोदय] खोहिया—(सं०) (१) (गया)। दे०—खोइया। (२) (पट०, गया, पू०)। दे०—खोइया। (३) (गं० ब०)। दे०—खोइया। [< खोटित वा खोटय < *खुद] खोरा—(सं०) (१) पशुओं के पौर का एक रोष। इस रोग में खुर में घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जाया करते हैं। इस रोग के होने पर पशुओं को जल में बाँधा जाता है। जल से कीड़ों की मृत्यु हो जाती है। पर्या०—खउरा, खउरा। (२) कुत्तों का एक रोग। इसमें उनके सारे शरीर में घाव हो जाता है (चंपा०)। [खोर + आ, खोर < खुर]

ग

गंगट—(सं०)—(६०, भाग०-१) दे०—अंकड़।
[गंग+ट (प्र०) अथवा < गंगा+तट;
गंगा+आवर्त्त (संस्क०), गंगावट्ट (प्रा०)
मिला०—गङ्गाट; गङ्गाटेय= संस्क० एक
प्रकार की मछली।
गंगटा—(सं०)—(६०-पृ०, भाग०-१, मग०-५,
पट०-४)। दे०—अंकड़। [गंग+टा<गंगा
+तट, गंगा+आवर्त्त (?), मिला०—गङ्गाट,
गङ्गाटेय]
गंगटाहा—(सं०)—(पट०, ६० सं०, भाग०-१,
मग०-५), दे०—गंगडियाहा। [गंग+टा+हा
(प्र०) < गंगातट, गंगावर्त्त (?); मिला०—
गङ्गाट, गङ्गाटेय]
गंगटियाहा—(सं०) कंकड़ मिली हुई मिट्टी
(पट०, गया, ६० भाग० भाग०-१, मग०-५)
पर्या०—गंगटाहा (पट०, ६० सं०), कंकरोटिया
(६० भाग०, भाग०-१), अंकड़हा (चंपा०,
मै०-२)। [गंग+टा+इया+हा (प्र०)
< गंगातटोय, गंगावर्त्तीय (?), मिला०—
गङ्गाट, गङ्गाटेय]
गंगटी—(सं०)-(१)—(६० पृ०, भाग०-१)।
दे०—अंकड़। (२) नदी के किनारे मिलने-
वाला छोटा गोल मटमैला कंकड़, जिसे
पकाकर चूना बनया जाता है (मग०-५)।
[गंग+टा+ई (अव्य० प्र०) < गंगा+तट,
गंगावर्त्त (?) मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय]।
गंगटी कंवाल—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—गगरी
कंवाल।
गंगवडार—(सं०) वह जमीन, जो किसी नदी
को घाग के हटने से निकलती है (भाग०-१,
चंपा, मग०-५) पर्या०—गंगबहार। [गंगा+
वडार < गंगा (संस्क०)+वार (फा०; हि०
श० सा०)। गंगा+वार (संस्क०) (?)।
वार=अवकाश, विस्तृत भूमि; यथा “वार
आ पृथिव्याः”—अथ०—(मो० वि० वि०)।
गंगबहार—(सं०)। दे०—गंगवडार।
गंगवट—(सं०) गंगा को मिट्टी। यह पीले रंग
की होती है (चंपा०-१, मै०-२)। [गंग+वट

< गंगातट < गंगामृत वा गंगावर्त्त (संस्क०),
< गंगवट्ट (प्रा०)। मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय
(संस्क०)=एक मछली]

गंगसिकस्त—(सं०) वह जमीन, जिसे नदी का जल
काट ले गया हो। दे०—गंगबडार। [गंग+
सिकस्त<गंगा (संस्क०)+शिकस्त (फा०)
मिला०—सिक्थ, शिक्थ=मधु निचोड़ लने
के बाद छत्ते में बचा हुआ भाग, मोम।
सिक्त=सिंचित, सैक्त= (संस्क०) सिकतामय,
जल से निकली हुई भूमि। “तोयोत्थितं तत्पुलिनं
सैक्तं सिकतामयम्” (अम०)]

गंजाई—(सं०) धान या रबी की फसल या कूड़े-
करकट को एक स्थान पर एकत्रित करने की
प्रक्रिया (बिह०)। [गंज+आई (प्र०) < गंज]

गंजाड़—(सं०) वह जमीन, जो एक बरसात से
लेकर दूसरी बरसात तक बिना आबाद किये
जोती जाती है और अगली बरसात के समय
उसमें धान का बीज गिराया जाता है। दे०—
होतरा चौमास [देशी, मिला०—गंज
(संस्क०)=अपमान, आंड़ार। गंजा (संस्क०)
खान, मदिगगृह, मकान बनाने का स्थान।
गंज (फा०)=ढाल, राशि। गंजेर=
(संता०)=घना जंगल]

गंजाड़ल—(फि०) खेत में थोड़ा पानी रहने पर
उमकी हल्की जोताई कर देना। [गंज+
आड़ल (प्र०) < गंज < गंजल (बिह०)
गंजना (हि०)]।

गंजावल—(फि०) गंजल जिन का प्रे०। गंज
लगवाना। इकट्ठा करवाना (बि०) गंज
लगवाया हुआ। [गंज+आवल < गञ्ज (१)
गंजमेखा—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अन्त
में लगी कील, जिसमें मिट्टी, पत्थर आदि का
भार बांधा जाता है (पट०, गया)। दे०—
खूटा। [गंज+मेखा < गंज+मेख, मेखण
(=कील) < मिक्ष]

गंडरकट्टा—(बि०) हत्या से पानी बिखेरकर
खेत को सींचनेवाला पुद्ब (६०-सं०)। दे०—
दुपवाहा। [गंडर+कट्टा, गंडर < गंडारी
< गर्त्त वा केदार, कट्टा < काटल (बिह०)
काटना (हि०) < कृत्]।

गंडसार—(सं०) ऊल रोपने के पहले बीज के
रखने का गड्ढा (गया, भाग०-१) दे० खाद।
[गंड+सार गंड < गंडेरी (ऊल का छोटा
टुकड़ा) < गंड वा खंड; सार < शाल < शाला
अथवा गंड < गर्त्त (संस्क०) गड (प्रा०)
+ सार < शाला]

गंडसी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना
हथियार, जिसमें छोटी, किन्तु कुछ भारी बेंट
लगी रहती है (उ०-प० मै०)। दे०—गंडासी।
[गंड+सी < गंड वा खंड+असि]

गंडहर—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०,
गया, ६० सं०)। पर्या०—गडार (६०-पृ०),
गडहरुआ, गडरी (उ०), गडियार (प०),
गंडेर (गया), गंडुर (पट०)। [देशी,
मिला०—गवेधु, गवेधुक (संस्क०)=तृणधान्य,
गंडरा (हि०) < गंडाली]

गंडा—(सं०)—(१) चार गोहठे या अन्य किसी
चार वस्तुओं का समूह। (२) काले सूतों की
एक प्रकार की माला (शाहा०) [गंडक]

गंडाढार—(सं०) ऊल की पहली सिचाई (गया,
६०-प० शाहा०)। पर्या०—छेका (शाहा०,
मै०, भा०), पनगंडा (पट०), अंधरी पटावन,
अन्हरी पटावन (६० भाग०), पहिल पटावन
(अन्यत्र)। [गंडा+ढार, गंडा < कांड, ढार
< ढारल (बिह०), ढारना (हि०) < ध्वल
(गती) (?)]

गंडारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की
सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के
छोटे-छोटे टुकड़े (पट०, ६०-पृ०, भाग०-१,
मग०-५)। दे०—कियारी। (२) (गया,
६० सं०)। दे०—आर। (३) पटाने के लिए
खेत में बनी छोटी नाली (६० सं०)। [गर्त्त
(संस्क०), गड (प्रा०), गंड, खंड वा केदार]
गंडास—(सं०)—(मै०-२, चंपा०, भाग०-१,
आज०)। दे०—गंडासी।

गंडासा—(सं०)—(१)—(६० सं०) दे०—
गंडासी। (२) फरस के आकार का एक अस्त्र।
गंडासी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना
हथियार, जिसमें छोटी,
किन्तु भारी बेंट लगी रहती है (शाहा०, चंपा०)।
पर्या०—गडारी (भाग०-१)



गंडासी

गंडसी (उ०-प० मै०), गंडासा (६०
मै०), गंडास मै०-२, चंपा०, भाग०-१)।
[गंड+असी < गंड वा खंड+असि]।

गंडुआ—(सं०) कुआँ बनाने या बगल की दीवार
बांधने में प्रयुक्त मिट्टी में पका मिट्टी का गोल
पट्टा या इंटे (पट०, ६०-सं०)। दे०—खपड़ा।
[गंड+उआ < गंड वा खंड]

गंडेर—(सं०)—(गया)। दे०—गंडहर।

गंडौरा—(सं०) खाद, कुहारन (पृ० सा०)।
दे०—खादर। [गंड+औरा < गंदा, खाद]

गंधकटकी—(सं०) मिल की बह भट्टी, जिसमें
गंधक जलती है। इसके धूँ से चीनी-मिलों में
चीनी साफ की जाती है। (हरि०, १०,
बिह०)। पर्या०—गंधकभट्टी। [गंधक
(हि०, संस्क०) + टंकी < टैंक (मं०)]

गंधकभट्टी—(सं०) दे०—गंधकटकी (री०)।

गंधकी—(सं०) एक छोटी हरी मखली, जो धान
के पौधे को हानि पहुँचाती है। (मै०-२,
अन्यत्र भी) [गंध+की < *गंध। *गंधकीट]
गंधघा—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा,
जो फूल लगने के पहले ही खार आदि फसल
पर प्रहार करता है (पट०)। दे०—गांधी।
[< *गन्धक]

गंधी—(सं०) दे०—गांधी।

गंभीरी—(सं०) एक प्रकार का काला धान, जो
बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है,
इसका चावल लाल होता है (पृ०, मै०-२)। इस
धान के बाने बाहर नहीं निकलते, बल्कि पौधे
में पत्तों के भीतर ही पक जाते हैं। दे०—
साठी। [गंभ+री < *गंभे]

गंभखा—(सं०) ऊल की जड़ से निकलनेवाली
शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है
(शाहा०)। दे०—खंज। पर्या०—दोंजो
(मै०-२, चंपा०)। [देशी, गोसाय (?)]

गड—(सं०) (चंपा०) दे०—गाय, गोख।

गडसाला—(सं०) दे०—गोसाला।

गगरी—(सं०) लोहे, पीतल या ताँबे का बना
पट्टा-जैसा पानी रखने का पात्र। दे०—
गगरी, गगर।

गगरी—(सं०), (१) वह बरतन, जिसमें जल के रस

को उबालने के पहले एकत्र कर रखा जाता है।
दे०—नाद। (२) पानी लाने या रखने के लिए

मिट्टी, पीतल, ताँबे आदि
का ब ना चड़ा (बिहा०,
बाब०)। पर्या०—

गगरा, गागर, चड़ा
सेटा। [(अनु०) गगर,
गगरी (संस्क०), गगर,
गगरी (पा०), गगरी (प्रा०), गगरी (कश्मी०), गगर,
गगरी (हि०), गगरी (ने०, कुमा०), गगरी (अस०)
गगरी (बं०), गगरी (गो०), गगर (पं०),
गगरी (ल०), गगर (गु०)। ठर्नर के अनुसार
गगर (पं०), गगरी (ल०) के रूप गगरी
(म० दे०) से सम्बन्धित हैं, न कि (संस्कृत)
से। मिला०—घर्घरक (संस्क०) = एक नदी।
घाघरी (सि०) = जलपात्र। ये रूप अनु० हैं—
ने० पा०]

गगरी केवाल—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई
मिट्टी। दे०—चनकी। पर्या०—गंगटी
केवाल (भाग०-१)। [गगरी+केवाल,
मिला०—(गंगटी केवाल)]

गचकी—(सं०) सड़क या रास्ते पर टूटने के
कारण बने हुए छोटे-छोटे गड़े (साहा०-१)
[देशी, (अनु०)]

गचाक—(सं०) दे०—गचकी।

गछपक—(सं०) पेड़ पर का पका आम
(बं०-१)। पर्या०—गछपक (बं०),
गछपका (भाग०-१)। [गछ+पक < *गछ
+पक्व]

गछाड़—(सं०) वृक्ष की छाया। इस छाया में
फल लब्धि नहीं होती (पट०-१, पट०-४,
बं०-५, भाग०-१)। [गछ+आड़]

गछुली—(सं०) फल आदि का नया बगीचा।
(सं० उ०, भाग०-५, पट०-४, बं०-२) पर्या०—
नौराही (बं०), नरोई (बं०), लवगछुली या नवगछुली (बं०, बं०-२),
नवपेड़ा, लौगाछी या नौगाछी (बं०-५),
केड़वाही (साहा०), नरोई (पट०, बं०-५),
नौकेड़ा बागीचा (गया), लवगछुली (भाग०)।
[गछ+उली (अल्पा० प्र०) < गछ < *गच्छ]



मगरी

गछेड़ मारक—(बुहा०) खेत की फसल पर वृक्ष
की छाया पड़ना (पट०-१, बं०-५, पट०-४,
भाग०-१)। [गछेड़+मारक,
गछेड़ < गछाड़+आड़ < गछ+आड़ <
गछ+आड़। मार+ल < √मृ+णिच्।
(=मारि (प्र०))]

गजड़वा घान—(सं०) गाजर के रंग का एक
मोटा घाव (पट०-१, भाग०-५, पट०-४)।

[गजड़+वा (प्र०)+घान < गाजर+घान]

गजड़ा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार
का कंद, जो खाने में मीठा होता है। यह जल
या लाल-बैंगनी रंग का होता है। यह कच्चा
और पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता
है। इससे तरकारी, हलुआ, मुरब्बे आदि
बनाये जाते हैं (पट०-१, भाग०-१)। दे०—
गजरा। [गजड़ा < गाजर < गाजर, गजरे,
गुजर (संस्क०), गुजर (प्रा०), गाजर, गजरा
(हि०), गाजर (ने०), गाजर (अस०), गाजर
(पं०), गजर (सि०), गाजर (बं०),
गजर, सेटीमूल, बाटुला मूला (मरा०),
गाजर (गु०), चिड़िकेय मुसंगी, गर्जी,
बहुमूलकी (क०), गुञ्जन (ते०), गजर (का०)
गजर (ब०)]

गजनना—(सं०) वह बँल, जिसकी अङ्गि छोटी-
छोटी हों (पट०-१)। [गज+नयना (सादृ०)
< *गजनयनक]

गजपती—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार
का घान (बं० मु०, भाग०-१) [देशी,
मिला०—गजपत्र < गज+पत्र]

गजपत्ता—(सं०) घान का एक प्रकार (गया,
भाग०-५)। [देशी, गज+पत्ता मिला०—
गजपत्र < गज+पत्र]

गजर—(सं०) घान के खेतों में, घान के बोने
के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और
बीज को नीचे धवाने के लिए की जानेवाली
हलकी-सी पुनः जुताई (उ०-५०, बं०)।
पर्या०—गजाड़, गजार (बर०-१, बं०-२),
ढकान (भाग०-१)। [देशी (अनु०),
मिला०—गंज = वह स्थान, जहाँ वस्तुएं सुरक्षित
रखी जाती हैं]

गजरमसर—(सं०) मटर,चना, जो बीर गेहूँ
अथवा किन्हीं दो या तीन धानों का मिश्रण
(साहा०, बं०, भा०)। दे०—तरेरा।

[गजर+मसर (अनु०), गजर+मजर (हि०)]

गजरा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार
का कंद, जो खाने में मीठा होता है और
कच्चा एवं पकाकर दोनों प्रकार से खाया
जाता है। (बं०, साहा० तथा अन्यत्र),
पर्या०—गाजर (बं० व० साहा०)। [गाजर
< गजरे, < गुञ्जन, मिला०—गजड़ा]

गजरौट—(सं०) पशुओं को खाने के लिए
दिया जानेवाला गाजर का डंठल, पत्ता आदि
(गया, भाग०-१)। दे०—गजरौटी। [गजर
+औट < गजरे]

गजरौटी—(सं०) दे०—गजरौट। [गजर
+औटी < गजरे]

गजाबजा—(सं०) दे०—गजरमसर। [गजा
+बजा (अनु०) मिला०—गद्य-पद्य (मिश्रित),
गज-पज (प्रा०)]

गजार—(सं०) खेत में पानी रहने पर जोतकर
घास-फूस सड़ाने की प्रक्रिया। दे०—गजर।
[देशी, मिला० गंज]

गजार करल—(बुहा०) गजार करना। दे०—
गजार [गजार+कर+ल (प्र०)]

गजारी—(सं०), (१) वह ऊँचा, जो मीठा नहीं
लगता। दे०—पंढार। (२) छोटा जालू [गजारि
(संस्क०) = एक प्रकार का जाल या गाजर]

गजुर—(सं०) (१) भिगोये हुए अन्न में से
निकला हुआ अंकुर। (२) भूमि पर उगा हुआ
बीज का पहला अंकुर (बं० भाग०)। दे०—
हिन्दी, पर्या०—गजुरा, गजूर (भाग०-१)।
गजुरल—(हि०) अन्न में से अंकुर का निकलना।
(बि०) अंकुरित। दे०—गजुर। [गजुर+ल
(प्र०) < गजुर]

गजुरा—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।
गजूर—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।

गमंडी—(सं०) एक जंगली झाड़, जो बाग आदि
की मेंडों पर उगती है और जिसकी पत्तियाँ लाल-
बैंगनी रंग की होती हैं। छोटी बर्फी। पर्या०—
बर्फी (भाग०-१, बं०-२, बं०, भाग०-५)।

[देशी, मिला०—गंजा (हि०) < गञ्ज (संस्क०)
= दूध, पानी आदि का बुलबुला]। टि०—
गमंडी या बर्फी के दूध या रस को निकाल
कर उसे कुंडलाकार तुन में लेकर फूंककर उसे
बच्चे उड़ाते हैं और वह बुलबुला बनकर
उड़ता है। इसका दातीन भी होता है।]

गट्टा—(सं०) लकड़ी का बोसा (भाग०-१)।
[< *ग्रन्थिक]

गठकोबी—(सं०) एक तरकारी विशेष। गाँठदार
गोभी (पट०-१) पर्या०—कठकोबी (भाग०-५),
गेठकोबी (भाग०-१)। [गठ+कोबी < गाँठ
+गोभी]

गड़गड़—(सं०) मेघ की गड़गड़ ध्वनि। [अनु०
मिला०, गजरे (अव्यक्ते शब्दे)]

गड़गड़ावल—(हि०) गड़गड़ की ध्वनि का होना।
मेघ का उमड़ना।

गड़नी—(सं०), (१) नदी, नहर आदि में पानी
को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के
बीचों-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया
बाँध (उ०-५०)। दे०—बाँध। [देशी, मिला०
—गाड़ना वा गोड़ना, गेड़ना; मिला०—गुरी
उत्थाने = ऊपर उठाना]। (२) एक पशु-खाद्य
घास (उ०-५०) [देशी, मिला०—गाँड़ (हि०),
गंडाली (संस्क०)]

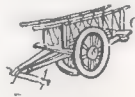
गड़हर—(सं०) एक प्रकार की घास, जो खान
की फसल को हानि पहुँचाती है। (उ०-५० साहा,
बं०-२)। पर्या०—गड़ार (पु०-बं०), गाँड़र
(प० बं०, पट०), जमार गड़ार (बं०-मु०)।
[देशी, मिला०—गवेधुका, गंडाली]।

गड़हा—(सं०) गड़हा, गहरा खेत आदि। पर्या०—
गड़हा, गहरा, गहरा, गहरा (भाग०-१),
खदहा, खदहा, डबरा। [गड़हा < *गर्त;
< *कर्ष]

गड़ही—(सं०) छोटा गड़हा।

गड़रा—(सं०), (१) खाल में लगनेवाला एक
प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (गया, सा०, बं०)
दे०—खपड़ोइया। पर्या०—जलुआ (भाग०-१)।
(२) लकड़ी में लगनेवाला एक उजला कीड़ा,
जो एक या सवा इंच का लंबा-मोटा होता है
तथा इसका मुँह लाल-पीले रंग का होता है

(भाग-१) [देशी, मिला-गंडोलक=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०) (३) एक प्रकार की घास [मिला-गवेधुक, गंडोल]
गड़हड़ी—(सं०) दुष्ट या गमोड़े जानवर का भागना रोकने के लिए उसके गले में बांधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा। (ब० भा०, भाग-१) पर्या०—ठकड़ा, ठोकरा (चंपा०)। [गड़+ठड़ो<गलहडि=लकड़ी की शृंखला—(मो० वि० डि०)]
गड़हरुआ—(सं०) (उ०)। दे०—गड़हर। [मिला-गवेधुक, गंडोल]
गड़हैया—(सं०) छोटा गड़हा (भाग-१) पर्या०—खधिया (मं०-२)। [गड़हा+एया (प्रत्पा० प्र०)<गर्त, कर्त]
गड़ार—(सं०)-(१) ऊख की जड़ में लगनेवाला एक कीड़ा (प०, चंपा०, मं०-२) पर्या०—दियारा (भाग-१), दियार (चंपा०)। [मिला-गंडोल+(क)] (२) एक प्रकार की घास, जो घान की फसल को हानि पहुंचाती है (पू०-मं०, भाग-१)। दे०—गड़हर। (३) एक पशु-खाद्य घास (ब०-पू०)। दे०—गड़हर। [मिला-गवेधुक, गंडोलि, गंडुत (संस्कृ०)]
गड़ारी—(सं०), (१) खेत में बनाई गई छोटी-छोटी बगारी (भाग-१)। (२) खंभे की दोकानियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली बिरनी (उ०-प०, ब० मं०)। दे०—घड़ारी। [गड़+आड़ी<*गंड (=चिह्न, खंड)+आलि या अशि, गर्त+अशि]
गड़ि—(सं०) बेलगाड़ी (चंपा०, मं०-२)। दे०—गाड़ी।
गड़िमान—(सं०) गाड़ी हाकिमनेवाला। दे०—गाड़ीवान। [गड़ि+मान]
गड़ियार—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पट०) दे०—गड़हर। [मिला-गवेधुक, गंडोलि, गंडुत (संस्कृ०)]
गड़ी—(सं०) बेलगाड़ी (भाग-१, अन्यत्र)। दे०—गाड़ी। [गन्त्री (संस्कृ०), गड़ु (प्रा०), गड़ु (प०), गाड़ी (मरा०, गु०)]



गड़ी

गड़ी—(सं०) नारियल का गुद्दा [गरी]।
गड़ीवान—(सं०) गाड़ीवान [गड़ी+वान<*गन्त्रीमत]
गड़ेरी—(सं०)—(१) एक पशु-खाद्य खास (उ०)। दे०—गड़हर। (२) मंड पालनेवाली एक जाति। [मिला-गवेधुक, गंडोलि, गंडुत (संस्कृ०), गड़ुलिका (=भेड़)]
गड़ौछी—(सं०) शाकजातीय एक पशु-खाद्य घास (चंपा०, पट०)। दे०—वेच। [देशी, मिला-गमुत=एक प्रकार की घास (मो० वि० डि०)]
गड़ौआ—(सं०)—(पट०, मग०-५, पट०-४)। दे०—गोटिला। [गड़+औआ (वि०-प्र०) गड़<गड (आच्छादन, घेरा)। गड+कूप]
गढ़री—(सं०)—(उ० मं०)। दे०—गोड़हड़ा। [मिला-गवेधुक, गंडोलि, गंडुत (संस्कृ०)]
गतान—(सं०)—(१) किसी चीज के बोझ को बांधने के लिए घासों के समूह को लपेटकर या बांस की करची को फाड़कर तथा एंठकर बनाई गई रस्सी (चंपा०-१)। पर्या०—गात (शाहा०)। [गत+आन, ग+तान<गन्त्री+तन्तु, गात्रतन्तु, गन्त्रीदाम, गात्रदाम। गड (=बंधन)+तंतु वा दाम]
गतार—(सं०) जुए के नीचे का पल्ला या फलक (चंपा०, गया, मग०-५)। दे०—तरसईल। [ग+तार, गत+आर, <गर्ततल, गात्रतल ?]
मिला-गताल (बिहा०) = निबला, नीवा, गर्त]।
गतौरा—(सं०) ऊख के बोझ को बांधनेवाली रस्सी (ब० प० शाहा०)। दे०—जांती। गत+औरा, मिला-गतान]
गत्ती—(सं०)—(ब० भाग०)। दे०—गोखोरी। [गर्त]
गदपड़ौआ—(सं०)—(पट०, गया) दे०—गदपुरना। [गद+पड़ौआ <गदहपूआ (हि०), मिला-गदपुरना]
गदपिड़ोड़ा—(सं०)—(ब० मं०, म.ग०-१) दे०—गदपुरना—[गद+पिड़ोड़ा, मिला-गदपुरना]
गदपुरना—(सं०) फसल, शाक आदि के खेत

में पैदा होनेवाली पशु-खाद्य घास, जो जमीन पर फैली रहती है। (शाहा०, चंपा०) पर्या०—गधपुरना (प० मं०, चंपा०) गदपड़ोआ (पट०, गया), गदपिड़ोड़ा (ब० मं०), पुरनवा (ब० भाग०, भाग०-१)। [गद+पुरना। गद<गदह (=रोगनासक)। पुरना पुनर्नवा। गांढ वन्ने पुण्या (ब०), घेदुखी, पुण्या (मरा०), साटोडी (गु०), दुवेल्डकिलु (क०), कमेदि (ते०), मूकरसैकीरै (त०, अस्पत [का०], पुनर्नवा [नं०])]
गदरा—(सं०) [(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (ग० उ०, मं०-२, मग०-५)। पर्या०—बच्चा (ग० उ०), बादा, गद्दा, गादर (ब० मं०, चंपा०), अँकुरी (ब० भाग०, चंपा०, भाग०-१), कचरी (सामा० पू०)। (२) जाम का रस (चंपा०-१)। [देशी, मिला-गध्या, गधे<गुधु (=चाहना); स्वाद्य, स्वद्य<स्वद (स्वयं=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना)। दे०—गद्दा]
गदराइल—(फि०) (१) फल और जल के गुच्छे का पकना। इस समय उपयुक्त वस्तुएँ पुष्ट हो जाती हैं (चंपा०-१, मं०-२, मग०-५)। (२) मटर-बूट आदि के पौधों में दानों का पुष्ट होना। आम आदि फल का पुष्ट होना। (३) मोटाना (चंपा०-१)। "गदराने तन गोरटी।"—बिहारी। (वि०) गदराई हुई वस्तु [गदरा+आइल (प्र०)<स्वद्य, स्वाद्य (?)]
गदराएल—(फि०) (१) छोमी में अन्न का होना। (२) चने आदि के पौधों में लगी केंदियों या छीमियों के जल का पुष्ट होना (मं०-१, चंपा० मग०-५)। (वि०) गदराई हुई वस्तु। दे०—गदराइल। उदा०—गदराएल ना, गामा बेल बा। [गदरा+आएल (प्र०)<स्वाद्य, स्वद्य<स्वद]
गदरी—(सं०) फसल का अधपका अन्न (चंपा०-१, मं०-२)।
गदहलोत—(वि०) (१) वह मिट्टी, जहाँ गदहें लोटते हैं (शाहा०-१, मं०-२)। (सं०)—गदहें का लोटना। [गदह+लोत]

गदहिया—(सं०)(१) एक कीड़ा विशेष (शाहा०-१)। (२)—एक जाति-विशेष (शाहा०-१)। गोआ (मं०-२)। (३)—(पू० मं०, सा०) दे०—पर्या०—गदहो [गदह+इया (प्र०) गदहा<गर्दम, गर्दमो, "गर्दमी क्षुद्ररोगजन्तु-विशेषयोः"—(मेदि०)]
गदहिया घान—(सं०) एक प्रकार का घान, जो मोटा और मटमैले रंग का होता है (पट०-१)। [गदह+इया (प्र०)+घान<गदहा+घान]
गदही—(सं०) (१) उगते हुए दलहन के पौधों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (उ०)। पर्या०—गदहिया (पू० सा०, मं०)। (२) गदहें का स्त्रीलिंग। [*गर्दमी (संस्कृ०)=एक प्रकार का कीड़ा, जो गोबर में पैदा होता है—सुश्रु०, —मो० वि० डि० "रासमे गर्दमी क्षुद्ररोग-जन्तुविशेषयोः"—(मेदि०)]
गदीना—(सं०), (१) लहसुन के स्वाद का एक साग। (२) एक छोटा-सा सुगंधित पौधा; इससे दाल छौंकी जाती है (पट०-१)। [देशी]
गद्दर—(सं०) एक प्रकार का भदई घान, जो उज्जला, लाल तथा कुछ मोटा होता है। इसका बावल लाल या सफेद होता है। यह माह-बाखिरन महीने में तैयार हो जाता है (सा०-१, चंपा०-१, मं०-२)। पर्या०—गदरि (मरा०-१) [देशी, मिला-गुस्त (संस्कृ०), गद्दर (मं०) =दलदल भूमि, पंक्ति भूमि]
गद्दा—(सं०) (१)—(ब०-प० शाहा०)। दे०—घड़ारी। (२) बेल, घोड़े और हाथी आदि की पीठ पर रखा जानेवाला मोटा गद्दा। (३)—बई या नारियल के रेशे आदि को भरकर बनाया गया मोटा बिस्तर। [<*गर्त=ऊँचा स्थान, युद्ध-रथ में बैठने का स्थान, गद्दी, गादी (हि०, ने०), गादी (ब०), गादि (ओ०), गद्दी, गड़ु (ब०), गड़ु (ल०)=एक पौजा घास, गडो (सि०), गादी (मरा०, गु०)
गद्दा, गादा—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (ब० मं०, मग०-५, मं०-२, चंपा०)। दे०—गदरा। [<*स्वद्य<स्वद—"स्वयं=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना,

खाना । मिला०—खदिका (संस्क०) = भूषा या तला हुआ अन्न]
गद्धा—(सं०), (१) धान के पीधों को रोपने के बाद खेत में ज्यादा पानी जमा हो जाना (मुं०-१) । (२) ज्यादा खाने की प्रतिक्रिया (मुं०-१ भाग०-१) । गद्धा लागल (मुहा०) पानी ज्यादा दिन तक जमा रह जाने के कारण धान के पीधों में सर्दी लगना (मुं०-१) । [< *गद्य=रोग होने योग्य < *गर्त वा गर्तोदिक]
गधपुरना—(सं०)—(प० सं०, चंपा०) । दे०—गधपुरना । [गध + पुरना < गदह + पुनर्नवा]
गधिआएल—(वि०)—गद्धा लगा धान का पीघा । (कि०) (१) धान के पीधों में ज्यादा पानी होने पर गद्धा रोग पकड़ना । (२) ज्यादा खाकर अलसता (मुं०-१ भाग०-१) [गधा + इआएल (प्र०) < गद्य < गद (=रोग)]
गनीरा—(सं०) (१) खाद के लिए कूड़ा-कंकट जमा करने का स्थान (मुं०-१, भाग०-१) । (२) कूड़े-कंकट की ढेरी (सं०-२, चंपा०, मग०-५) । (३) (पू० सा०) । दे०—खादर । [गन+औरा; गन < गन्दा/गन्ध (=कुर्गंध); औरा < अवरट < वाट]
गन्धायल—(कि०) (१)—खेत में बी गई खाद का सड़ना (चंपा०-१, भाग०-१) । (२) किसी वस्तु के सड़ने पर उससे दुर्गन्ध निकलना । [< *गन्धन < गन्ध]
गपतू—(सं०) ज्वार, मकई और ऊख के पत्तों पर श्वेतचिह्न-जैसा लगनेवाला एक रोग, जिससे फसल का ऊपर का हिस्सा नष्ट हो जाता है (पट०, उ०) । दे०—ओरंग । [देशी, ग+पतू < अग्र+पत्र, < गर्भ+पत्र (१)]
गपसू—(सं०)—(सा०) दे०—ओरंग । [मिला०—गपतू]
गब—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज (चंपा०, सं०-२) । (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है । दे०—गबा । पर्या०—पहरोपा (पट०-४, मग०-५); गब लगावल (मुहा०) गब लगाना । [देशी, मिला०—गर्भ]

गंबड़ा—(सं०) अनेक प्रकार के धान का मिश्रण । [मिला०—कर्तुर]
गब लगावल—(मुहा०) गब लगाना । दे०—गब ।
गन्धा—(सं०) फसल अथवा किसी पीधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (भाग०-१) पर्या०—गभा, गाभा, गोफा, वीर (चंपा०) ।
गभतू—(सं०)—(शाहा०) । दे०—ओरंग । [देशी, पत्र मिला०—गर्भ, दे० गपतू]
गभा—(सं०) फसल या किसी पीधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (चंपा०) या दे०—गम्भा । [< *गर्भक]
गभाइल—(वि०) वह पीघा, जिसकी बाल पूर्ण रूप से नहीं फूटी हो, अभी गर्भ में ही हो । [गभ + आइल (प्र०) < गर्भ < (संस्क०) < गर्भ (प्रा०)]
गभा भइल—(मुहा०) चंपा० । देव—गभा भंल ।
गभाभैल—(मुहा०) फसल में बाल का होना (ब० प० सं०) । पर्या०—रेंडा भैल (ब० प० सं० चंपा०), गम्हड़ी भैल (शेव सं०), दुधिआएल (शाहा०), गदराएल (पट०, मग०) दुधैल (ब० पू०), गदराएल (सं०) । [गभा + भैल, भइल, गभा < गर्भ; भैल, भइल < √भू]
गभिनायल—(कि०) गाय आदि मवेशी का गाभित होना, गर्भ धारण करना । (वि०) गाभित हुई गाय आदि । [< गभिन + आयल (प्र०) < गभिन < गभिणी (प्रा०) < *गभिणी]
गभौरी—(सं०)—(१)—धान का पूरा डंठल (पुआल), जो दाँवा नहीं जाता है, बल्कि उसे साइकर अनाज निकाल लिया जाता है और वह आटी के रूप में बंधा रहता है । (ब० भाग०, भाग०-१) । दे०—नैवारी । (२)—धान के सूखे पीधों की अँटिया या पुरजा । [देशी, संभ० < *गटवर, < *गर्भ]
गम्भा—(सं०) ताड़, केले आदि की नई कोपल (मुं०-१, भाग०-१) । [< *गर्भक]
गमड़ि—(सं०) एक प्रकार का भईया धान । दे०—गम्हरी । [< *गम्हूर; < *गर्भ]
गमला (सं०) फूल रोपने का मिट्टी का बरतन । [गामला (बं०), गमला (हिं०, पं०) । व्युत्पत्ति अनिश्चित; उधार लिया शब्द—(नेपा०) ।

मिला०—गल्वास्त (संस्क०) = स्फटिक का बना एक लघुपात्र, जिससे तरल पदार्थ पीया जाता था—(भो० वि० डि०); गम+ला < गुल्म + ल (प्र०); गुल्मक = साड़ीदार, साड़ीवाला, गम+गमा (पृथ्वी, मिट्टी)+आलु (=कठोरी?)]
गमहारि—(सं०) एक प्रकार का पीघा । पर्या०—गम्हार (चंपा०) । [मिला०—गम्हारी]
गम्हड़ल—(कि०) धान आदि के पीधों का फूटने लगना [< *गर्भ < √गृभ् = √ग्रह (उपाधाने = ग्रहण करना); < गहवर]
गम्हड़ा भैल—(मुहा०) फसल में बाल फूटने लगना (ब० प० के अतिरिक्त सं०) । दे०—गभा भंल । [गम्हड़ा + भैल; गम्हड़ा < गर्भ; भैल < √भू]
गम्हड़ी—(सं०) फूटनेवाले धान आदि के पीधे । [गम्हड़ + ई < *गर्भ, < *गभिन्]
गम्हरी, गंभरी—(सं०) (१) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से साठ दिनों में पक जाता है (पू० सं०-२) । दे०—साठी । (२) अधिक पानी होने पर फसल में लगा एक रोग [< *गर्भ, < *गहवर]
गंईड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी-नहर आदि के जलप्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बांधा गया बांध (ब०-मुं०) । दे०—बांध । [मिला०—गंईड़ा]
गर—(सं०)—(१) काम में बँट जानेवाला बँल (शाहा०, मग०) । दे०—परवा । [देशी, मिला०—गड़ < गड़ना < गर्त] (२) खुरपी से खेत में उगी हुई घास को अलग करना । (३) निकोनी करके खेत से निकाली हुई घास-फूस । गरदेल, (भाग०-१, ब०-मुं०) पर निकालल (मुहा०) = गरदेल [उद्+प्रि < √गृ = निकालना, वमन करना]
गरइ—(सं०)—एक प्रकार की मछली (सर्वत्र) । [< *गरघनी, गडक (संस्क०), गरई (हिं०), गरई माछ (बं०)]
गरकी—(सं०)—(१) बाढ़ या अधिक पानी हो जाने के कारण की गई भूमि-कर की मृत्ति । दे०—माफ । (२) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण

के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति होने पर उसके पूरक (भत्ता) के रूप में किसान या बटाईदार को दिया जानेवाला अनाज का अतिरिक्त अंश । (सं० ब०, चंपा०) । दे०—छूट । [गरक + ई (प्र०) < गर्क (प्र०) = मरन, डूबा हुआ, मिला०—गर वा गीर्ण (संस्क०) < √गृ]
गरकी परती—(सं०) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति के लिए पूरक (भत्ता) के रूप में किसान या बटाईदार को को दिया जानेवाला अतिरिक्त अंश (ब०-मुं०) । दे०—छूट । [गरकी + परती; मिला०—गरकी]
गरगही—(सं०) वह रस्ती, जिसे पशुओं की गरदन में लपेटा जाता है । [गर + गही, गर < गल, गही/ग्रह < √ग्रह]
गरदनी—(सं०) बँलों की गरदन के चारों ओर बांधी जानेवाली गोल रस्ती । (चंपा०, सं०, भाग०-१) । दे०—गरदाँव । [गर + दन + ई < गरदन (हिं०) < गल (संस्क०)]
गरदाँव—(सं०) बँलों की गरदन के चारों ओर बांधी जानेवाली गोल रस्ती (प०, ब० मुं०, भाग०-१) । पर्या०—गरदनी (चंपा०, पं० सं०) गरौघा (पट०), गरदाम (चंपा०-१) । [गर + दौँव < गर + दाम < *गल + दाम]
गरदान—(सं०) (चंपा०) । दे०—गरदाँव ।
गरदानी—(सं०) (१)—कोस्तू के बँल की गरदन के चारों ओर की रस्ती, जो पगहा और कड़ी से संबंधित रहती है (चंपा०) । दे०—गरदावनी । (२) बँल की गरदन के चारों ओर बांधी जानेवाली रस्ती । [गर + दानी < गल + दामन वा < गरदन (हिं०)]
गरदाम—(सं०) गरदावनी । मवेशियों के गले में बांधी जानेवाली रस्ती । दे०—गरदाँव । [गर + दाम < गरदाम < *गलदाम]



गरदनी

गरदामी—(सं०)-(उ० पू० मं०)। दे०—गरदा-
बनी। [गर+दामी < *गल+दाम]
गरदाबनी—(सं०) कोल्हू के बेल की गरदन के
चारों ओर बंधी हुई रस्ती, जो पगहा और कड़ी
से संबंधित रहती है। पर्या०—गरदामी (उ०
पू० मं०) गरदानी (चंपा०)। [गर+दावनी
< गलदाम, गलदामन]
गरदेल—(मुहा०) खेत में उगी हुई घास को
खुरपी से निकालकर अलग करना। दे०—गर।
गरनिकालल—(मुहा०) (बर०-१)। दे०—गरदेल
[गर+निकालल]
गरहर—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवर को
भागने से रोकने के लिए उसके गले में बांधा
गया लकड़ी का एक टुकड़ा या पट्टा (ब० भाग०,
भाग १)। दे०—ठेकर। [गर+हर। गर <
गल। हर (प्र०) वा < १६]
गरहरुआ—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा-१)
[मिला०—गवेधुक, गवेधुआ (हि०), (बिहा०)]
गरहा—(सं०) दे०—गड़हा।
गरही—(सं०) छोटा गड़हा।
गरही खरचा—(सं०)-(ब० मं०)। दे०—गाईं
खरच [गरही+खरचा (वेशी < गड़ही < गड़्हा
< *गर्त; खरचा < खर्च (का०)]
गरौड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक
ऊपर उठाने के लिए नदी, नहर आदि के जल-
प्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक
बांधा गया बांध (उ० पू०, पट०, गया)।
दे०—बांध। गर+औड़ी < गंड (= चिह्न,
चिह्नित)+औड़ी < आड़, आर]
गरियर—(वि०) काम में बैठ जानेवाला बेल
(ब० पू० शाहा०) दे०—परुआ। (गर+इयर
< गर < गड़ना; मिला०—गर, गरियार (आज०))
गरियार—(सं०) वह बेल, जिसका रंग
मटमला हो।
गरौधन—(सं०) धोड़े या किसी दूसरे मवेशी के
के गले में बांधी जानेवाली रस्ती। पर्या०
गरदाँव, गरऔंधा (शाहा०) गरदम (उ० पू०
मं०)। [गर+औधन < गल+दामन]
गरौंधा—(सं०) बेलों की गरदन के चारों ओर

बांधी जानेवाली गोल रस्ती (पट०)। दे०—
गरदाँव। [गर+औंधा < *गलदाम, दामन]
गलइया मसीन—(सं०) वह मशीन, जिसमें
खराब तथा गंदी चीनी को गलाकर पुनः स्वच्छ
चीनी बनाने का काम होता है (री०)।
[गलवया (बिहा०)+मसीन < मैशीन (अं०)
गलल—(वि०) वर्षा के कारण आहत या गला हुआ
बूट अथवा कोई दूसरा बनाज (सा०) दे०—
मराइल। (क्रि०) (१) पानी में किसी वस्तु का
सड़ना। (२) लोहे आदि पदार्थ का पिघलना।
[गल+ल (प्र०) < गलण, गलन < १५;
< *गलति—मिला० गलयति (संस्कृ०)
गलति (पा०), गलई (आ०), गलन (कम्म०)
गल्लु (ने०), गल्लायो (कुमा०), गल्लिया (अस०)
गल्ला (बं०), गल्लिया (प्रो०) = किसी छेद से
निकालना। गल्लना (हि०), गल्लया (पं०),
गल्लपु (मि०) गल्लु (गु०) मिला०—गल्लय
(ल०), गल्लायी (मरा०) < *गल्लयति
(संस्कृ०)। यह रूप गलति (संस्कृ०) से
मिल है। गलति (पा०) गड़िया (अस०) = पानी
की तरह बिरना, गरा (बं०) = चूना, गड़णु
(सि०), जल्लु (गु०), गल्लयो (मरा०),
गल्लु (सिंह०) (नेपा०)
गलावल—(क्रि०) गलल क्रि० का प्रे०। खेत की
मिट्टी को जोत-फोड़कर पानी में गलाना। लोहे
आदि धातुओं का पिघलाना। [गल+आवल
(प्र०) < गल < गलल < गल्लि < १५ गल+
पिच् गलयति (संस्कृ०), गल्ले गल्लवेइ
(आ०) गलाना (हि०) गल्लउनु, गल्लु (ने०),
गल्लान (बं०), गल्लायु (ल०), गल्लायु
(सि०), गल्लु (गु०), गल्लायो (मरा०)]
गल्ला—(सं०)-(१) खलिहान
में इकट्ठा किया हुआ,
फसल के बोझों का, ढेर
(उ० पू० बिहा०, मं०
२)। दे०—गाँज। (२)
धनसंपत्ति, अनाज।
[गल्ला (अ०)]
गवई—(वि०) गाँव का। [गव+ई (प्र०)
< गव < *ग्राम]



गल्ला

गवत—(सं०)-(१) मवेशियों का खान-पदार्थ, घास,
पुआल आदि (चंपा०-१, शाहा०)। (२) बयान
में एक साथ बांधकर पशुओं के खाने के लिए दिया
जानेवाला चारा (गं० उ०)। पर्या०—लेहना
(शाहा०, चंपा०), गौत (गया), गौतहा (पट०)।
[गव+त < *गवाद < *गवाय, गौत, गवत,
चारा (हि०), चारो (ने०), गौअत्त (दे० आ०),
गवत (मरा०), दे०—चारा, चरी (बिहा०)]
गवतचोर—(सं०) बोझ खानेवाला पशु (ब०
पू० मं०, चंपा०-१)। दे०—निबोराह।
[गवत+चोर < गव+त+चोर < *गवाद+
चोर]
गवा—(सं०)-(१) धान की रोपनी शुरू करने
के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया
जानेवाला भोज। पर्या०—गावा, गब (चंपा०),
पहिरोपा (पट०-४)। (२) धान के बीज का
उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता
है। [देशी]
गवाल्ले—(मुहा०) पहले दिन धान का रोपना
(चंपा०)।
गवै यों खरच—(सं०) जमींदारों के विषय में
होनेवाला एक प्रकार का खर्च (मं०)। दे०—गाईं
खरच। [गवै यों+खरच (वेशी) < गवै यों <
ग्राम+खरच < खर्च (का०)]
गसवन कंजा—(सं०) बिना अधिकारी हुए
भी जमीन पर किया गया अधिकार (सा०-१,
चंपा०)। [गसवन+कंजा]
गहरा—(सं०)-(१) उपजाऊ और साकतवर
मिट्टी। दे०—बरियार। (२) गड़हा, गहरा।
[गम्भीर]
गह्रीड़—(वि०) गहरा (बर०-१)। [गम्भीर]
गहूँ—(सं०)-(चंपा०)। दे०—गहुम।
गहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो द्रवत-
रक्त वर्ण का होता है तथा जिसका आटा खाया
जाता है (पू० बिहा०)। पर्या०—गहुँ,
गेहूँ (चंपा०)। दे०—गेहूँ। [गोधूम
(संस्कृ०) > गोहुमो (आ०) > गेहूँ (हि०)।
गम (बं०), गहूँ (मरा०); धऊँ, धेऊँ
(गु०); गोवी, गोधि, गोदी (कन्न०); गोदुम,
गोधुम, गोधुमत्तु (ते०); गोहुम, गुहुम (संता०);

गहुँ (ने०); गोयम (सिंह०); गंदुम (का०);
हिन्ता, हिताह (अर०)]
गहुमन—(सं०)-(१) पीले (गेहूँ) वर्ण का
पशु। दे०—पीमार। (२) एक प्रसिद्ध सप।
[गहुमन+न < गहुम < गोधूम+वर्ण]
गहुमा—(सं०)-(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार
का लाल-मोटा-चिपटा धान (उ० पू० मं०,
सा०-१, बर०-१)। (२) एक प्रकार का
भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और
बृन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूँजा
खाया जाता है। इसका पोषा लंबा होता है
और उसपर अधखिला कमल-जैसा अन्न का
गुच्छ लगता है (ब० भाग०)। दे०—जनेव।
(३) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे
दाने तथा मटमले रंग का होता है (ब०
भाग०)। दे०—बजड़ा। [गहुम+आ (प्र०)
< *गोधूमक]
गाँज—(१) खलिहान में इकट्ठा किये हुये फसल
के बोझों का ढेर
(राशि)। पर्या०—
टाल (गं० उ०,
शाहा०, बिहा०),
गल्ला (उ० पू०
बिहा०), डेरी (गया), कांड, कांडा (चंपा०,
पू०), खम्हार (ब० पू० मं०)। (२) खलिहान
में अथवा कहीं अन्यत्र भी रखी हुई नेबारी
या पुआल की राशि। (३) चारे के लिए
काटे गये जनेरे के डंठल की राशि (पं०)।
पर्या०—टाल (पू०), खम्हार, कांड (ब०
पू० मं०)। (४) खेताली की फसल की राशि
(पट०-१)। [मिला०—गञ्ज (मो० वि० डि०)]
गाँजल (क्रि०)—गाँजना, इकट्ठा करना। [गाँज
+ल < *गञ्ज (संस्कृ०) (?), गंजन (आ०),
गंजिउ (अप०), गाँजना (हि०), गाँजिउ (गु०)
गाँजले (मरा०)]
गाँजा—(सं०)-(१) एक प्रकार की मादक वस्तु,
जो चिलम में चढ़ाकर तथा बुलपा कर पी जाती
है। यह वस्तु नेपाल या राजशाही में अधिक
पंदा की जाती है। इसी की जाति की भाँग
भी है, जो जंगल में स्वयं होती है। (२) गाँजे



गाँज

का पीघा । [देशी, मिला०—गल्ल (संस्कृ०) = एक प्रकार का पीघा । गल्ला (स्त्री०) = शाड़ी, मबिरालय । गंज (प्रा०), गंजा (हि०, ने०, अस्०, ने०), गंजा (भो०), गंजो (सि०) गंजो (गु०), गंजा (मरा०)]
 गाँसी—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१) । [मिला०—गल्ल (संस्कृ०) = एक प्रकार का पीघा]
 गाँठ—(सं०)—(१) ऊख, लकड़ी आदि का बोझा । (२) शरीर के दो पोरों की पृथक्-पृथक् करनेवाली ग्रंथि (सा०-१) । (३) किसी वस्तु को बाँधकर बनाया गया बड़ा बंडल । (४) कपड़े और रस्सी आदि में लगाई गई ग्रंथि । (५) ऊख, बाँस आदि के पोरों की ग्रंथि (सं०-२, पट०-४, चंपा०, भाग०-१, अग०-५) । गाँठदेवल, गाँठ पारल (मुहा०) = गाँठ बाँधना । किसी बात या घटना को याद रखना । [ग्रंथि, ग्रंथ (संस्कृ०) < गंठ (प्रा०), गाँठ (हि०), गाँठि, गाँठो (ने०)]
 गाँठदेवल (मुहा०)—गाँठ देना । किसी वस्तु या घटना को याद रखना ।
 गाँठपारल—(मुहा०) दे०—गाँठ, गाँठ देवल ।
 गाँड़र—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास, जो घान की फसल को हानि पहुँचाती है (प० ने०, पट०, अग०-५) । दे०—गड़हर । (२) एक पशु-खाद्य घास । दे०—गड़हर । [देशी, मिला०—गंथेयुक (संस्कृ०)]
 गाँधी—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो बाल में फूल होने के पहले ही ज्वार आदि अनाज पर प्रहार करता है । पर्या०—गँधी, गँधवा (प०, अग०-५), माँछी (उ०), गन्धवा- (चंपा०), किरौना (द०-प० शाहा०), भेमरा (द० मुं०) । [< *गंधिक, < *गंधिन् (संस्कृ०), गाँधील (मरा०)]
 गाँव—(सं०) ग्राम, वस्ती ।
 [< *ग्राम (संस्कृ०), ग्राम (पा०, प्रा०), गाव (रोमा०), गोम (बरबी), गाँव (हि०), गाउँ (ने०), गाउँ (कुमा०), ग्राम (कश्मी०), गाउँ (मस०), गाँ, गाँव, गाव (बं०, बो०), ग्रम, (सिंह०), ग्राम (काफि०)]

गाँव के ठाकुर—(सं०) गाँव का स्वामी, जमींदार (द०-प० शाहा०) । दे०—जिम्मेदार । [गाँव के + ठाकुर (सं०)]
 गाँव के खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च । दे०—गाई-खरच । [गाँव + के + खरच (सं०)]
 गाँवघर—(सं०) पास-पड़ोस । [गाँव + घर < ग्राम + गृह]
 गाँसी—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए कटमार के बदले हल की नोक और फाल के बीच में ठोकी गई पचड़ी । [देशी, मिला०—गाँसना (हि०) = पेबंद लगाना । गाँसु, गसिनु (ने०) = पेबंद लगाना, जोड़ना । गाँस (ने०) = पेबंद, जोड़]
 गाई—(सं०) गाँव ।
 गाई खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च । पर्या०—गाँव के खरच, गाँव याँ खरच (सं०), सालीना खरच (द०-प०-सं०), देही खरचा (गया, पू०-सं०), एखराजात (पट०), बन्दूखरच (द० भाग०) । [गाई + खरच, गाई < गाँव < ग्राम; खरच < खर्च (फा०)]
 गागर—(सं०) दे०—गगरी ।
 गागर नीमो—(सं०) दे०—घचरा लेंबो, गगल ।
 गागल—(सं०)—एक प्रकार का बड़ा मीठ, जिसका छिलका मोटा होता है (दर०-१, चंपा०-१, सं०-२) । पर्या०—गागल नीमो (चंपा०, शाहा०) । [देशी]
 गागल नीमो (सं०)—(चंपा०, शाहा०) । दे०—गागल ।
 गाछ—(सं०)—(१) मृगया किसी दलहन का डंठल, जिसे दोनी करके भूसा बनाया जाता है (द०-प० सं०) । दे०—हंगरा । २—घरहर या दूसरे दलहनों का अंकुश या डंठल (उ०-पू०) । दे०—डिबो । (३) आम, कटहल आदि फलों का वृक्ष । [< *गच्छ (संस्कृ०), गच्छ (पा०), गाछ (हि०), गच्छी (शिना०-बरबी), गाछ (बं०), गस (सिंह०), गाछ (ने०)]
 गाछी—(सं०)—(१) वह स्थान, जहाँ आम, अमरुद, कटहल आदि के पेड़ लगाये गये हों । दे०—

बगीचा । (२) (सं०) । दे०—आम के बगीचा । (३) बीज की तयारी (बिड़ार) से रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पीघा । दे०—बीया । (४) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (उ०-पू० सं०, सं०-२) । दे०—डिबो । [गाछ + ई (प्रत्या० प्र०) < *गच्छ]
 गाजड़—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का मोठा कंद, जो कच्चा और पकाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है (द०-प० शाहा०, सं०, अग०-५) । दे०—गजड़ा । [< *गजैर]
 गाजर—(सं०)—(१) एक प्रकार की कपास, जो घर के पास बारी में उपजती है, न कि खेत में (उ०-पू० सं०, शाहा०) । (२) दे०—गजड़ा, गाजड़, गजरा । [मिला०—गजैर]
 गाड़ल—(सि०) गाड़ना । [गाड़ + ल (प्र०) < गाड़ < *गर्त (संस्कृ०), गड्ड, गड (प्रा०) = छेद, गड़हा । गाड़ना (हि०), गाड़नु (दे०), गाड़ा (बं०), गाड़ (भो०) = गड़हा, गड़डणा (पं०) = बोना, गड़डण (ल०), गाड़उ (गु०), गाड़णे (मरा०)]
 गाड़ा—(सं०)—(१) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गड़हा (शाहा०) । दे०—छाद । (२) पशुओं का एक रोग । इस रोग के कारण पशुओं के सीमों की जड़ में कोपड़ निकलने लगती है (सा०-१, सं०-२) । पर्या०—परत, कोपड़ । [गाड़ा, गड़हा < गर्त वा कर्ष] (३) बैलगाड़ी (प०, चंपा०-१) । [गाड़ + आ < गाड़ु < *गान्त्र, गन्त्री]
 गाड़ी—(सं०) गाड़ी, बैलगाड़ी । पर्या०—गाड़ी, गाढ़ा = बड़ी गाड़ी, गरी । [गाड़ी < *गान्त्र, गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (देशी प्रा०) गोड़ी (कश्मी०), गाड़ी (हि०, बं०, भो०), गड्डी, गड्डी (पं०), गड्डी (ल०), गाड़ो (सि०), गाड़ी (मरा०, गु०) । टनर के अनुसार 'गाड़ी का सम्बन्ध < *गर्त (अँबा स्थान) से नहीं है, बल्कि < *गड्डी (= गाड़ना) से है ।'—(नेपा०) । किंतु गाड़ी की व्युत्पत्ति < गन्त्र, गन्त्री या गन्त्रिका या से भी संभव है । दे०—गन्त्री = गाड़ी—हर्ष, अमर०]

गाढ़—(सं०) घनी बोआई । दे०—घन । (सि०) गाड़ी वस्तु । [गाढ़]
 गाढ़ा—(सं०)—(१) दे०—घन । (२) घना, गाढ़ा । [गाढ़]
 गात—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (शाहा०) । दे०—गतान । [दे०—गतान]
 गाता—(सं०)—(१) (द० मुं०) । दे०—गंता । (२) ताड़ के लंबे बत्ते या किसी दूसरी लंबी भारी वस्तु को दूसरी जगह पर ले जाने के लिए उसमें बँधी रस्सी के साथ लगाया गया बाँस का टुकड़ा । [देशी, मिला०—खनित्रक* > खन्ता, खईंता > गैता > गाता]
 गाद—(सं०) नीची जमीन (द० मुं०) । [गर्त्त, खात]
 गाद, गादा—(सं०)—(१) मटर की अघपकी छीमी । (२) अघपके मटर की बनी दाल । (३) किसी तरल वस्तु की निचली सतह में बैठता हुआ मोटा अंश । [< *खाद्य (?)]
 गादर—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, चंपा०) । दे०—गदरा । [गाद + र < *खाद्य (३)]
 गाड़ा, गादा—(सं०)—(१) दे०—गदरा । (२) (क) मटर की अघपकी छीमी । (ख) अघपके मटर की बनी दाल (शाहा०) । (३) पट्टे और सन के ऊपर का हरा पत्ता । [< *खाद्य]
 गादा, गाद—(सं०) दे०—गाद, गादा ।
 गादुर—(सं०) चना और मटर में लगनेवाला एक कीड़ा (द०-प० शाहा०) । [देशी]
 गाभा—(सं०) (चंपा०, सं०-२) । दे०—गम्भा ।
 गाभिन—(सि०) गर्भिणी गाय आदि । [गाभ + इन < *गर्भिणी < गर्भ, गर्भिणी (पा०), गर्भिणी (प्रा०), गाभिन (हि०), गाभिनि (ने०), गर्भिनि (कश्मी०), खवनी (रोमा०), गाभिण (कुमा०), गाभिनि (अस०), गाभिन (बं०), गर्भण (पं०), गर्भन (ल०), गर्भिणी (सि०), गाभन (मरा०, गु०)]
 गाय—(सं०) दूध देनेवाली, सींग, पूँछ और सास्ता (गलकंबल) से युक्त एक मादा मवेशी, गो ।

वैल का स्त्री० । पर्या०—गड, गोरू (चपा०), गंगा । [< *गो (संस्कृत), गव, गो (पा०, प्रा०), गाय, गौ, गड (हि०), गौ, गड (वं०), गौ (ल०), गड (सि०), गौ (मरा०, गु०)] महिष पतञ्जलि के अनुसार 'गौ' शब्द के बहुवचन-से अपभ्रंश रूप हैं यथा—गात्री, गोष्ठी, गोता, गोपेतलिका आदि]

गाय-गोरू—(सं०) भैंस को छोड़ अप सँगवाले पालतू पशु । दे०—गोरू । [गाय + गोरू (अनुवा०) < गो]

गार—(सं०) जमीन की वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी नीचे से ऊपर की ओर उठाया जाता है (ब०-प० मं०) । दे०—बोदर । [देशी]

गावा—(सं०)-(१) दे०—गवा ; (२) एक बार में रोपे जानेवाले धान के बीजों का समूह (चपा०-२) । [देशी, मिला०—ग्राम (= गवि, समूह), गर्भ]

गावा-पखार—(सं०) रोपनी समाप्त होने पर गृहस्थ के घर पर मजदूरियों द्वारा किया जाने-वाला एक उत्सव, जिसमें गृहस्थ के शरीर पर मजदूरों की चड़ उछालती हैं और द्वार पर पहेले से रखे हुए, उलटी टोकरी पर जलपूर्ण कलश की, गीत गाती हुई, प्रदक्षिणा करती हैं और अंत में घर की मालकिनों द्वारा दिये हुए सिन्दूर और लेख लगाने हैं एवं भाँगे हुए चने की जंकुरी का प्रसाद लेकर घर जाती हैं (चपा०, मं०-२) । [गावा + पखार । दे०—गावा; पखार < पखारल < *प्रचाल]

गाविस—(सं०) एक तरह की मिट्टी । कुम्हार इसे बरतन रंगने के काम में खाते हैं (चपा०-१, मं०-२) । [देशी, मिला०—कपिश]

गाही—(सं०) पाँच वस्तुओं की एक इकाई (चपा०, मग०-५, मं०-२, भाग०-१, पट०-४, भाग०) । [देशी, संम० < *गाथा वा *गाथिन्]

गिड़ायल—(कि०) ऊँच के पीने में प्रयुक्त का लगना (प० मं०) । दे०—पोर । [गिड़ायल < गिरहानल < *ग्रथि]

गिरह—(सं०) किसी वस्तु के लिए उसके बंधने में उसके पास जमीन, गडने आदि रखना (साहा०) । दे०—गिरवी, देहन । [गिरवी]

गिरथ—(सं०) दे०—गिरहय ।

गिरदा—(सं०)-(पट०) । दे०—खपड़ा ।

गिरदाँव—(सं०)-(मग०-५) । दे०—गरदावनी ।

गिरल—(कि०)-(१) हवा या किसी और कारण से फसल अथवा आम आदि फलों का जमीन पर गिरना । (२) किसी ऊँची जगह से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का गिरना । (बि०) हवा के कारण भूमि पर गिरी हुई फसल, फल आदि । पर्या०—खसल । [गिर + ल (प्र०) < गिर, गिरना (हि०) (संम०) < √गृ (= गिरति), टर्नेर महोदय के अनुसार (१) गिरु (ने०), गिरा (कुमा०), गिरना (हि०), गिड़ना, गिड़ाउना (वं०) और वर्ण-व्यत्यय के साथ डिम्मा (वं०), डिगना (हि०) < *गिडु, (२) गडति (संस्कृत), गलति (पा०) = गिरता है । गडिवा (प्रस०), गडप (सि०) और संम० गड़ना (हि०) भी (यदि < *गडु नहीं माना जाय) और गडवुं (गु०), गड़वो (मरा०) (१) गलति (संस्कृत) गिरता है, गलई (प्रा०) गलिवा (प्र०), गलना, (हि०), गलणा (वं०), गलवुं (गु०), गलवो (मरा०) ये रूप खेले (मारोप०) व धृति से मिलते-जुलते हैं)

गिरहन—(सं०) दे०—गिरहय ।

गिरह—(सं०)-(मग०-५) । दे०—गिरे ।

गिरहथ—(सं०) गृहस्थ, जमीन का मालिक (बर०-१, चपा०, मं०-२, मग०-५) । पर्या०—गिरथ, गिरहन, गिरहस्त, गिरहथिन (स्त्री०) । [गिरह + थ, गिर + हथ < गृहस्थ]

गिरहथिन—(सं०) गिरहय की स्त्री । दे०—गिरहय ।

गिरहस्त—(सं०)—दे०—गिरहय ।

गिरावल—(कि०) गिरल कि० का प्र० । गिराना । [गिर + आवल (प्र०) < गिरल, दे०—गिरल]

गिरे, गिरेह—(सं०)-(१) ऊँच की ग्रंथि या गाँठ । (२) बाँध आदि लंबे पोथों की गाँठ । दे०—थोर । [गिरे < गिरह < *ग्रथि]

गिरेह, गिरे—(सं०) । दे०—गिरे या थोर ।

गिलदाजी—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (ब०-पू०, मग०-५) । दे०—तरहा । [फा०]

गिलदाजी मिट्टी—(सं०) सिंचाई के समय खेत की भेड़ों पर दी गई मिट्टी ।

गींगट—(सं०)-(ब०-पू०) । दे०—कंकड़ । [दे०—कंकड़]

गुजरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (ब०-प० साहा०) । [देशी]

गुंड—(सं०) दलहन की कटी फसल का एक निश्चित परिमाण (बंडल), अंटिया—(पट०) । [मिला०—गुंड, गुंठ वा गुड = मोलक, पुलिदा]

गुंडा—(सं०)-(१) चावल छांटने पर उससे निकली महीन भूसी, जो गाय, बैल आदि का पुष्ट भोजन है (मुं०-१, अन्यत्र भी) । (२) चावल, आदि मकई के भूँजे को चूरकर बनाया गया चूण । 'गुंडा खाव, भूँडा होय' = गुंडा (भूसा आदि या कबख) खाव और मोटा-ताजा हो जाय । [कूट, गुंडक = धूलचूण (मो० बि० डि०)]

गुंडा—(सं०) दे०—गुंडा । पर्या०—कुंडा ।

गुंडी—(सं०)-(१) अनाज ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (चपा०, ब०-पू० बिहा०, मग०-५) । दे०—पंभी । (२) काते हुए सूत का एक परिमित लच्छा । [गुंडी < *गुंड, गुड]


गुंडी—(सं०) छांटने पर निकला हुआ अनाज (विशेषकर चावल) के ऊपर का महीन छिलका (ब० भाग०, चपा०) । दे०—भूसा, गुंडा । पर्या०—गुंडा (बर०-१) । [कूट वा गुण्डक = चूण, धूलि (मो० बि० डि०)]

गुआ—(सं०) गोबर की खाद । [गुआ < *गोमय]

गुआ पटायल—(मुहा०) खाद देना, खासकर गोबर की खाद देना (बर०-१) । [गुआ + पटायल, गुआ < गोआ < गोवर < *गोमल, *गोमय, पटायल (देशी)]

गुजराँति—(सं०)-(मं०-२) । दे०—गुजराती ।

गुजराती—(सं०) लंबे धन, विशाल देह और एंटे हुए गोल सींगों-वाली काले रंग की भैंस (बर०-१, चपा०-१) ।

पर्या०—गुजराति (मं०-२) । (बि०) गुजरात-


प्रदेश-संबंधी । [गुजरात + ई (प्र०), गुजरात < गुजर + आत वा गुजर + रात < गुजर + राप्प; आवसै वा < गुजरात]

गुजरात—(सं०) ऊँच के कोल्ह की पंवी में रस चूने के लिए काटी हुई नाली (ब०-प० साहा०) । दे०—तरदोह । [गुजर + उआ, (देशी)]

गुड़—(सं०)-(१) पुआल का बड़ा बोझा, जो लपेटकर बाँधा जाता है (चपा०-१, मं०-२, पू० मं०) । [गुड (संस्कृत) = बंडल, बोझ (मो० बि० डि०)] (२) गुड़ । दे०—गुर [गुड]

गुड़मी—(सं०) एक प्रकार का बरसाती फल, जो मकई आदि के खेत में होता है (बर०-१) । पर्या०—गुर्म्ही (मग०-५) । [देशी]

गुड़रा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [मिला० गुंडाला, गुडाला = एक प्रकार का पीघा (मो० बि० डि०)]

गुडोर—(सं०) गुड़ बनाने का घर (सा०-१) । पर्या०—गोलौर (साहा०), कोल्हआर, कोल्सार । [गुड़ + और < गुड़ + उल < *गुड + कुल वा गुड़ + गूह* > गुड़ + घर > गुड़ + अर > गुड़ + और > गुडोर]

गुद्दी—(सं०)-(१) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (ब० साहा०, गया) । दे०—मोजर । (२) पानी में होनेवाली एक घास (मं०-२) । [< √गुण्ड = घेरना, लपेटना]

गुदर—(सं०)—दे०—गुदरी ।

गुदरी—(सं०)-(१) संती से निकाल लेने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा बंडल (पू० मं०) । दे०—गूदर । (२) फटे-बिथड़े और कपड़ों को सीकर बनाया गया बिछानन । (३) फटे-बिथड़े । [देशी]

गुदस्तादार—(सं०) साहाबाद जिले में गंगा के दक्षिणी तट पर रहनेवाला काश्तकारों का एक वर्ग । पर्या०—गुदस्तादार । टि०—यह काश्तकारों का ही एक वर्ग है, इसमें राजपूत और ब्राह्मण हैं । इनके पूर्वजों ने देश को जीता था और ये लोग जमींदारों के अधीन रहकर



गुद्दी

उनके लिए लड़ने-झड़ने को सदा प्रस्तुत रहते थे, इसीलिए इनकी स्थिति ऊँची मानी गई है।

गुदस्ता भूमि सदा के लिए एक निश्चित कर पर बंदोबस्त कर दी गई है (यद्यपि कुछ जमींदार ऐसा नहीं मानते) और जमींदार की स्वीकृति के बिना ही बेची-खरीदी जा सकती है। यह एक प्रकार से सदा के लिए निजी संपत्ति होती है। यद्यपि इस भूमि के स्वामी इसे मुद्रिकल से बेचते हैं। ये कारस्तकार सुखी एवं सम्पन्न होते हैं और सेना में भी बहुतायत से भर्ती होते हैं। [गुदस्ता+दार (प्र०) < गुजरात (उर्दू) < गुजरात (फ्रा०) = दान की हुई या कर-मुक्त भूमि]

गुदस्तादार—(सं०) दे०—गुदस्तादार।

[गुदस्ता+दार < गुजरात (फ्रा०)]

गुदारा—(सं०)—(१) फसल काटने की मजदूरी (सा०, मग०-५)। दे०—दिनोरा। [देशी, (सं०) < गुजरात < गुजरात (फ्रा०)] टि०—कटी हुई फसल की २१ गाहरी पर १ गाहरी की निश्चित मजदूरी दी जाती है (मग०-५)। (२) काटनेवाले श्रमिक को प्रति बोझा एक आँटी दे देने पर बचा हुआ बोझ का अंश (शाहा०)। टि०—आँटी का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है। यथा—अगली लोकोक्ति से स्पष्ट है:—‘कोड़ि कटनिहार कैं, मुँगर सन आँटी।’—(आलसी) कटनिहार अपने लिए मुँगर (मुद्गर) —जैसी मोटी आँटी बाँधता है। [देशी]

गुदारा—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (मग०)। दे०—दिनोरा। [गुदारा < गुजरात < गुजरात (फ्रा०)]

गुनल—(फि०) गुनना, गणना करना, रस्सी का बँटना। (वि०) गुनी हुई, बँटी हुई। [गुन+ल < *गुण (=गुणयति)]

गुना—(सं०)(१) गुणा, गणित का एक भेद। (२) रस्सी के बाँटने में पड़नेवाली ऐंठन। [गुना < *गुण, *गुणक (सं०), गुण (पा०, प्रा०), गोन (बर०) गुणी (विना०), गोनू, कश्मी०), गुणा (प० पहा०), गुना (ने०), गुणा (अस०), गुणा (बं, भो०), गुनी, गन (हिं०), गुण (पं०), गुण (सि०), गुण (गु०, मरा०)]

गुमटी बाबू—(सं०) चीनी-मिल का एक कर्मचारी, जिसके हस्ताक्षर के बिना ऊँच की पुर्जों का खपता किसान को नहीं मिलता है (बिह०, री०, हरि०)। टि०—जब ऊँच तौलवाकर एक कर्मचारी ऊँच का परिमाण लिखकर पुर्जों ऊँच लानेवाले किसान या गाड़ीवान को दे देता है, तो वह किसान या गाड़ीवान उस पुर्जों को लेकर गुमटी बाबू के पास जाता है; वह उसपर अपना हस्ताक्षर कर देता है। यदि उसे संदेह हो जाय, तो वह पुनः उस गाड़ी की तौल कराता है और पहली पुर्जों से उसका मिलान करता है, जिससे कि तौल में कमी-वेशी न हो। [गुमटी+बाबू]

गुमल—(फि०)—(१)—डंठल के साथ फसल की बाल रख देने पर कुछ दिनों के बाद सुलकर दानों का स्वयं छूटना या उस बाल का मूलायम हो जाना (सा०-१, चंपा०-१, मै०-२, पू० मै०)। (२) पाल पर रखने के बाद आम आदि का और घुआ देने पर केले आदि का पकना। [गुम + ल; गुमका (देशी) = भूसी से दाना अलग करने का काम (हिं० शा० सा०)]

गुमसल (फि०)—(१) भीम हुए अन्न की समुचित हवा और धूप नहीं पाने पर, सड़ने के पूर्व की स्थिति (चंपा०-१ मग०-५, पट०-४, मै०-२, भाग०-२)। (२)—(वि०) गुमसी हुई (गुमल)। वस्तु। [गुमस+ल (प्र०) < *ग्रीष्म (?)]

गुमसावल—(फि०) गुमसल फि० का प्र०। गुमसाना।

गुमावल—(फि०) गुमल फि० का प्र०। गुमाना।

गुमास्ता—(सं०) किसी जमींदार या महाजन का कर्मचारी, जो घूम-घूमकर जमींदारी या महाजनी का तकाजा और काम देखा करता है (सा०-१)। [(फ्रा०), गुमास्ता (हिं०), गुमास्ता (ने०)]

गुम्मा—(सं०) दे०—गुमा और गुमा।

गुर, गूर—(सं०) ऊँच के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार ठोस पदार्थ। पर्या०—गुड़ा। [गुड] टि०—गुड़ कहीं राव और कहीं चबकी के रूप में होता है, खाने-पीने के

लिए इसकी छोटी-छोटी भेली भी बनाई जाती है। भेली को मगही में ‘अदरखी’ भी कहते हैं; क्योंकि इसमें स्वाद के लिए प्रायः अदरक मिलाई जाती है।

गुरचलना—(सं०) अन्न साफ करने की चलनी (उ०-पू० मै०)। दे०—चलना। गुर+चलना।

गुरदन—(सं०) ऊँच के उवाले हुए रस को ठंडा करने के लिए लकड़ी या लोहे की बनी चम्मच (शाहा०)। दे०—तामिया। [गुर+दन < *गुड]

गुरदम—(सं०) लकड़ी की बनी छोलनी, जिससे ऊँच का रस या गुड़ चलाया जाता है (सा०-१)। पर्या०—गुरदन। [गुर + दम < *गुड (?)]



गुरदेल—(सं०) धनुष के आकार की बनी चीज, गुरदम जिसकी प्रत्येक दो रस्सियों की बनी रहती है और बीच में दोनों रस्सियों को बोड़ी दूर तक एक-दूसरे में बुनकर एक स्थान बनाया जाता है, ताकि उस पर गोली रखी जा सके। यह खेतों से चिड़ियाँ आदि भगाने और मारने के काम में आता है। इसकी गोली मिट्टी की बनी होती है (चंपा०-१, भाग०-१, मै०-२)। पर्या०—गुलल। [देशी, दे०—गुलेल]

गुरधवल—(वि०) फल का पकना शुरू होना और मोटा होना (शाहा०-१)। [गुरधवल+ल (प्र०) < गुणधवार, गुणध्यान, गुणार्द्ध, गुणार्थ (?)]

गुरपौर—(सं०) मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें जम जाने के बाद गुड़ रखा जाता है (मै०)। दे०—माट। [गुर+पौर < गुड+पात्र (?)]

गुरमिआ—(सं०) एक प्रकार का परवल, जो गोल और छोटा होता है (चंपा०-१)। [गुरमि+आ (प्र०) < गुर्मा (देशी०)]

गुरला—(सं०) करीब एक हाथ लंबा, खास कर हमली की लकड़ी का बना टुकड़ा, जो डेंडुल (लाटा) के बाँस में दोनों कनखियों के बीच में लगा रहता है। इसके बिना डेंडुल

नहीं चल सकती है। घुरकिल्ली (सा०-१)। [देशी]

गुरहंडी—(सं०) गुड़ रखने का माट (ब० भाग०)। दे०—होद। [गुर+हंडी < गुड़+हंड (क)]

गुरही—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुस् बा गुर < गुड] (२) फसल के बोझों को बाँधने के लिए किसी धांस की ऐंठी हुई रस्सी (शाहा०)। [गुर+ही < *गुण] गुरीच—(सं०) एक प्रकार की लता, जिससे औषध बनाया जाता है। [गुडुची]

गुरुच—(सं०) दे०—गुरीच।

गुम्ही—(सं०)—(मग० ५)। दे०—गुडमी।

गुलजाफरि—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [गुल+जाफरि (फ्रा०)]

गुलजामु—(सं०) एक प्रकार का फल (बर०-१)।

[गुल+जामु < गुल (फ्रा०) + जामु < जामुन=जंबू] गुलजामुन—(सं०)—(१) एक प्रकार के फल का वृक्ष। इसका फल गोल और मोठा होता है (पट०-१)। (२) जामुन का एक भेद, जिसका फल अपेक्षाकृत बड़ा, रसदार और मोठा होता है (मिला०—कठजामुन)। (३) एक प्रकार की मिठाई। [गुल, गुलाब (फ्रा०) + जामुन < *जम्बू]

गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल, जिसका पौधा छोटा तथा फूल गुच्छेदार होता है (मग०-५)।

गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [(गुल+दावरी (फ्रा०)]

गुलफा—(सं०) एक प्रकार का साग (मै०-२)। [देशी, मिला०—गुल्फ]

गुलमिरिच, गोलमिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती, काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च। दे०—मिरिच। [गुल+मिरिच < *गोल+मरीच]

गुलाइची—(सं०) एक प्रकार का फूल। दे०—गुलेंची। [गुल+चीन (फ्रा०)]

गुलाब—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो लाल और गुलाबी रंग का होता है। फूल के वृत्त में और

पीधों में काटे होते हैं। [गुलाब (हिं०), गुलाफ (ने०) (फा०)]

गुलाब मखमल—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुलाब+मखमल]

गुलाबी—(सं०) गुलाबी रंग। (वि०) गुलाबी रंग की वस्तु।

गुलाबी पोई—(सं०) एक प्रकार की लता। इसका पत्ता लाल रंग का होता है तथा इसका

साग बनता है (पट०-१)। [गुलाबी+पोई]

गुलेल—(सं०)-(१) दे०-गुरदेल। (२) दो रस्तियों के योग से बनी हुई वस्तु, जिसपर डेला रखकर फेंका जाता है (द० भाग०, द० मं०, मग०-५, मं०-२, चंपा०)। दे०-डेलमास। [देशी, (संभ०)-गुल + एल < गुल < *गुलिक = (डेला, छोटा टुकड़ा, गोली) एल < √है (फेंकना), गुलगुछ (बेशी०) = ऊपर फेंकना, गुलुछ (बेशी०) = घुमाया हुआ (पा०सं०म०), गुलेल, गुलैस (हिं०), गुलेलि (ने०), गोलेल (कुमा०), गुलेल, गुलेला (पं०), गुलेलि, गुलेलो (सि०) < *गोल + इल्स (?) अथवा ग, ल के साथ उच्चार, वा गुल्ले (फा०) या गोली से प्रभावित—(नेपा०)]

गुलेली—(सं०) घनुप-जैसी बनी हुई वस्तु, जिसमें दो प्रत्यंचा समानांतर रूप में लगी रहती है और दोनों के बीच में थोड़ा-सा सूत से बुना रहता है, जिसपर मिट्टी की छोटी गोली रखकर चलाया जाता है (द० मं०, द० भाग०)। [देशी, (संभ०), गुल + एली < गुलिक < √है]

गुलेली—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [गुल + ऐंच < गुलचीन (फा०)]

गुल्लरि—(सं०) एक प्रकार का फल, गुलर (बर०-१, मं०-२)। [गुल्लर < गुलर]

गुल्ला, गुल्ली—(सं०)-(१) ऊख आदि का उतना बड़ा टुकड़ा, जो मूँह में बसने के लिए लिया जाता है। (द० मं०, भाग०-१, चंपा०, मज०)। (२) ऊख के दो पोरों के बीच का भाग (मग०-५)। [< *गुलिक (संस्क०), < *गुलम (संस्क०) > गुल्ल (प्रा०)]

गुल्ली—(सं०)-(१) लकड़ी की कील या खूँटी,

जिससे कुएँ में लटकनेवाली रस्ती में मोट बाँधा जाता है। दे०-किल्ली। (२)-

(शाहा०)। दे०-गेंडा। (३) कूड़े में आर-पार लगी हुई हुई फट्टी, जिसमें रस्ती बाँधी जाती है। दे०-किल्ली। (४)-(पट०)। दे०-खूँटा। [देशी, मिला०-गुलिक]

(५) दे०-गुल्ला, गुल्ली। (६) बच्चों के 'गुल्ली-डंडा' खेल में प्रयुक्त होनेवाला ३ इंच का लकड़ी का टुकड़ा, जिसे डेढ़ फुट के डंडे से दूर फेंकते हैं। [दे०-गुल्ला]

गुल्ली, गुल्ला—(सं०)। दे०-गुल्ला, गुल्ली। गुल्लरि—(सं०)-(१) एक लसी विशेष (चंपा०-१, बर०-१)। (२) आँख की एक बीमारी, जिसमें आँख के कोनों पर फुन्सी हो जाया करती है। [देशी, < *ग्रीष्मवटी]

गुँडा—(सं०)-(गया, मग०-५)। दे०-गुँडा। [< गुगड, < *गुडक = घुक्ति, चूर्ण

गुँदी—(सं०)-(चंपा०, द०-मं०, बिहा०)। दे०-गुँदी और पंभी। [गुड + ई < *गुडक]

गुदरी—(सं०) सँठी से निकालने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंडल (उ०-पू० मं०, मग०-५)। पर्या०-खुदर (पं०, पं० मं०), कुदारी-उ०-पू० मं०), गुदर, गुदरी (प्र०मं०)। [देशी]

गूमा—(सं०)-(१) एक प्रकार का प्रसिद्ध पीघा, जिसके फल के ऊपर उजला फूल रहता है (चंपा०-१)। पर्या०-गुम्मा (भाग०-१)। (२) नमी के कारण विकृत अन्न, जिसमें एक प्रकार की सड़ी-जैसी गंध और बुरा स्वाद आ जाता है (मग०-५)। [देशी, मिला०-गुलम]

गूर, गुर (सं०)-ऊख के रस से तैयार किया गया दानेदार ठोस मीठा पदार्थ। पर्या०-गुड़, गुड़। [< *गुड, (संस्क०), गुड, गुड (प्रा०), गुड, गुड (हिं०), गुड (ने०), गुल (मरा०), गुर (बं० ओ०), गुरु (सि०), गोला (गु०), गोर (कश्मी०)]

गुलर—(सं०) दे०-गुलरि। गुलरि—(सं०) एक प्रसिद्ध फल, जिसमें संकड़ों बीज होते हैं और पकने के साथ-साथ कीड़े

भी होते हैं। कच्चे की तरकारी भी होती है। पर्या०-गुल्लर, गुल्लर, डुम्लर (भाग०-१)। [गुल्लर (संस्क०), गुल्लर (हिं०), गुल्लर (ने०), गुल्लर (पं०), गुल्लर, गुल्लर, गुल्लरी (गु०)]

गेंठा—(सं०)-(१) पशुओं के बाँधने की रस्ती (द० भाग०)। दे०-पगहा। (२) दोरों के बाँधने की घुंड़ीदार रस्ती (मं०-१)। [< ग्रंथिक, < ग्रंथक]

गेंठी—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१)। [देशी]

गेंडू—(सं०)-(१) ऊख के ऊपर का पत्तियों-सहित भाग (द०-पं० शाहा०)। (२) बारे के लिए काटा गया ऊपर का हरा भाग (चंपा०-शाहा०)। दे०-अंगेड़ा। (३) चीनी मिल में डाले जाने के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (हरि०)। पर्या०-गेंडू, पगाडू (री०)। [< *अंगेरक < *अग्रकांड, गंड (संस्क०) = जोड़, गंड (पा०) = डंडल, गंड (प्रा०) = ऊख का पोर, गेंडा (हिं०), गन्ना (हिं०, पं०) = ऊख, गन्नी (सि०) = श्वार की मोठी डाँटी]

गेंडूझीला—(सं०)-शाहा०)। दे०-अंगेड़ीहा। [गेंडू + झोला < अंगेरक वा अग्रकांड + झोला, झिलना (हिं०) < श्लक्ष्ण]

गेंडूल—(कि०)-(१) गेंडूना, पानी आदि को रोकने के लिए बाँध बाँधना। (२) किसी स्थान या वस्तु की सुरक्षा के लिए घेरना। [गेंडू + ल (प्र०) < गेंडू < *गंड, खंड]

गेंडूवहिया—(सं०)-(उ०-पं०)। दे०-अंगेड़ीहा। [गेंडू + वहिया < *अंगेरक < *गंड, < अग्रकांड + वहिया (बेशी०)]

गेंडूवाही—(सं०)-(१) धान की खेती में मेड़ के टूटने पर उसकी पुनः परम्पत करने की प्रक्रिया (मग०-५)। (२) ऊख को काटने और उसकी पत्तियों को छीलने की प्रक्रिया (चंपा०)।

गेंडूकरल—(कि०) ऊख का टुकड़ा करना (उ०-पं०)। दे०-छोलल। [गेंडू + कर + ल (प्र०) < *अंगेरक, < *अग्रकांड + करल, करना (हिं०) < √कृ]

गेंडू, गेंडी—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (पं०)। पर्या०-गेंडी (चंपा०), टोना, टोनी (प्र०, मग०-५)। गुल्ली (शाहा०,

मग०-५), गेंडूडा (पट०, मग०-५, पट०-१), बीहन (बर०, मग०, मग०-५)। [< *खंड, गंड, < *अंगेरक, < अग्रकांड, < *ग्रंथि]—

गेंडूझरी—(सं०)-(गया)। दे०-कियारी। [गेंडू + झरी < *खंड, < गंड]

गेंडूवल—(कि०) गेंडूल कि० की प्र०। गेंडू-वाना, घेरवाना। दे०-गेंडूल।

गेंडूकाटा—(सं०)-(पं०)। दे०-कानू। [गेंडू + काटा < *खंड, < *ग्रंथि, < अंगेरक, < *कांड, काटा < काटल (बिहा०), काटना (हिं०) < √कृ]

गेंडूयार—(सं०)-(१) कोल्हू के लिए ऊख के टुकड़े काटने का घर या स्थान। पर्या०-गेंडूयारी (पं०), टोनीयारी (प्र०), टोनी-यासी (उ०-पं० मं०), टोनीयाद (द० भाग०)। (२) दे०-गेंडूयारी (२)। [गेंडू + ड्यार < *कांड, < *ग्रंथि, < *खंड, < *अंगेरक < *गंड]

गेंडूयारी—(सं०) (१)-(पं०)। दे०-गेंडू-यार। (२) ऊख काटने (टोना करने) के पहले उसे रखने के लिए बना हुआ गड्ढा। पर्या०-गेंडूयार (पं०)। [गेंडू + ड्यार + ई < *खंड, ग्रंथि, कांड; ड्यारी (प्र०) < वेदार]

गेंडू, गेंडा—(सं०)-(१)-(पं०, बिहा०, हरि०) दे०-गेंडा। (२) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ियाँ। आजकल लोहे के कोल्हू होने पर मसूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है, न कि काटकर (पं०, प्र० मं०, चंपा०, मग०-५, मं०-२, आज०)। पर्या०-टोनी (पट०, गया, प्र०), अंगारी (द०-पं० शाहा०)। (३) चीनी-मिल में डालने के लिए काटी गई ऊख की टुकड़ियाँ (री०, बिहा०, हरि०)। [गेंडू + ई < *खंड, < *कांड, < *ग्रंथि, गंड]

गेंडूआवा—(सं०) कुएँ की बीवाल को बनाने के लिए प्रयुक्त वह डेंड, जिसका एक मूल छोटा और दूसरा चौड़ा होता है (चंपा०, मग०-५, मं०-५)। दे०-मुरजमुली।



गेंडूआवा

[देशी, मिला०—गंड, खंड]

गेंदा—(सं०) दे०—गेना।

गेंदारी—(सं०) हरे रंग का एक साग (पट०-१)। पर्या०—गेन्हारी, गेन्हरी (भोज०), गेन्हारि (सं०-३, भाग०-१, मग०-५)। [देशी, (संभ०) < *ग्रंघ]

गेंहड़ि—(सं०) मवेशियों का समूह [गेंहड़ि < *ग्रन्थि वा ग्रहण (संस्क०), गेण्डण (प्रा०)]

गेंहड़ियाला—(सं०) घूम-घूम कर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (बं० सं०)। दे०—फेरहा। [गेंहड़ि + वाला (प्रा०), गेंहड़ि < ग्रन्थि वा ग्रहण (संस्क०), गेण्डण (प्रा०), मिला०—गेड़ही, गेढ़ी (बिहा०)=चरवाहों का झुंड]

गेटकीपर—(सं०) चीनी-मिल का दरवान (बिह०)

[गेट + कीपर (अं०)]

गेटकेन—(सं०) वह ऊख, जिसकी तौल मिल के अंदर होती है। [गेट + केन (अं०)]। टि०—चीनी-मिल में दो प्रकार से ऊख लाये जाते हैं। एक तो स्थानीय किसान बेलगाड़ियों या टुकों पर लादकर मिल में ऊख पहुँचा देते हैं। दूसरा वह, जो दूरस्थ स्थानों से रेलगाड़ियों के द्वारा आता है। किसानों द्वारा लाया गया ऊख मिल में तोला जाता है, उसे 'गेटकेन' कहते हैं और दूरस्थ स्थानों से लाये जानेवाले ऊख के लिए स्थान-स्थान पर मिल की ओर से तोलने और वहाँ से मिल में भेजने की व्यवस्था रहती है, उसे 'आउटकेन' कहते हैं (बिह०, री०, हरि०)।

गेटपास—(सं०) चीनी-मिल के अंदर प्रवेश करने या अंदर से कोई वस्तु बाहर लाने का अनुमति-पत्र (बिह०, री०, हरि०)। [गेट + पास (अं०)]

गेटबावू—(सं०) चीनी-मिल के द्वार पर नियुक्त कर्मचारी, जो सज्द्वरों के आने-जाने के समय का लेखा-जोखा रखता है और उनकी उपस्थिति लिखा करता है (बिह०, री०, हरि०)। पर्या०—हाजिरी बावू (भोज०)। [गेट (अं०) + बावू (हि०)]

गेठिया—(सं०)—(१) दे०—ग्राखा। (२) लैनी (सुरती) का बाँधा हुआ बड़ा बंडल।

गेड़हुरुहा—(सं०) अनाज के खेत में उगने-वाली एक प्रकार की घास (उ०-प०)। पर्या०—गढ़री (उ० सं०), गेढ़री (मग०-५)।

[देशी, मिला०—ग्वेधुक]

गेड़ही, गेढ़ी—(सं०) गाँव भर के ठोरो को चरानेवाले चरवाहों का समूह (सं०-१)।

[देशी, मिला०—ग्रंथि]

गेड़ी—(सं०), ऊख का छोटा टुकड़ा (चंपा०-१, सं०-२)। [< *अगरी, < *कांड, < *खंड, ग्रंथि] गेड़ियार—(सं०)—(प०)। दे०—गेंड़ियारी। [गंड + इयार, < *अगरी, < *कांड, < *खंड, < *ग्रंथि]

गेड़ुआ—(सं०)—(१) केले के पौधों के छिलके (डफउर) में गूँथे हुए फूल की माला (चंपा०-१)। (२) विवाह के समय कन्या और वर तथा उनके माँ-बाप के ललाट में बाँधा जानेवाला छोटा मोर। पर्या०—पटमौरी (मग०-५), पटमउर (अग्रज)। (३) शारी [देशी]

गेढ़री—(सं०)—(मग०-५)। दे०—गेड़हुरुहा। गेढ़ी—(सं०)। दे०—गेड़ही।

गेन्हारि—(सं०)—(बर०-१)। दे०—गेन्हारी।

गेना—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो पीले या नारंगी रंग का होता है। इसके कई प्रकार होते हैं—एकहरा, दोहरा, हजार। पर्या०—गेंदा। [गेंदा (हि०), मिला०—गेंदुक, संभ०—साट०]

गेन्हरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध साग, जिसकी तरकारी होती है (भोज०, चंपा०)। पर्या०—गेन्हारि, गेन्हारी (पू० सं०, मग०-५, सं०-५, भाग०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्क०)=एक प्रकार का पौधा]

गेन्हारी—(सं०)—(पू० सं०, सं०-५, मग०-५, भाग०-१)। दे०—गेन्हरी। पर्या०—गेन्हारि (बर०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्क०)]

गेरू—(सं०)—(१) लाल मिट्टी (गं० ब०)। दे०—ललकी मिट्टी। (२) हल्के लाल रंग की पहाड़ी मिट्टी, जिससे मकान और दूसरी चीजें रंगी जाती हैं। साधु-संन्यासियों का कपड़ा भी इसी रंग में रंगा जाता है। [< *गैरिक, गेरूक]

गेरूका (पा०), गेरुया, गेरुया (प्रा०), गेरू (कसमी०), गेरू (कुमा०), गेरू (ने०), गेरू (हि०), गेरी, गेरु (प०), गेरु माटी (अस०), गेरी (बं०), गेरु (ओ०), गेरु (गु०), गेरू मरा०]

गेरुआ—(सं०)—(१) ऊख की जड़ को काटने वाला एक कीड़ा (प०)। [देशी, मिला०—गैरिक] (२) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लपटाई गई रस्सी (द०-प० सं०)। दे०—मोजर। (३) दे०—गेरू। [गेंडल (बिहा०), गेंडना (हि०)]

गेरुई—(सं०) फसल में पैदा होनेवाला एक रोग, जिससे पौधा सूखकर लाल और बाल का रंग काला हो जाता है। यह रोग जाड़े में तथा वर्षा अथवा पुरब्या हवा के कारण अधिक होता है (उ०, द०-प०, चंपा०)। —“नीचे ओद ऊपर बदराई; घाघ कहें गेरुई अब घाई।” —(घाघ)=नीचे जमीन भीगी हो और ऊपर बादल लगे हों, तो घाघ कहते हैं कि उस समय फसल में गेरुई कीड़ा लगेगा। [देशी, मिला०—गैरिक]

गेलहंटा—(सं०) बंगन का एक भेद, जो गोल होता है (बं० सं०)। दे०—बंगन। पर्या०—गोलहंटा (मग०-५)। [गोल + हंटा < गोल + भंटा]



गेलहंटा

गेलहनी—(सं०) *पाँच फालों का बना एक तरह का हल, जो मोल की खेती में काम आता है (सा०)। दे०—पचकरिया। [देशी]

गेलहा—(सं०)—(१) ऊख के पौधे की जड़ से निकलनेवाला नया पौधा (चंपा०-१, हरि०)। पर्या०—गोभी (री०), पनपा, खूँटी (बिह०, सं०-२)। (२) एक प्रकार का फल, जो कपड़ा चूतने या कागज को चिकना करने के काम में आता है (चंपा०-१, मग०-५)। पर्या०—गेल्ही (सं०-२)। [देशी]

गेल्ही—(सं०) दे०—गेल्हा।

गेहुँआ—(सं०) एक प्रकार का जनेर, जिसके एक वृत्त में दो दाने लगते हैं। [गेहुँ + आँ < गेहुँ]

गेहुमा—(सं०) एक प्रकार का भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृत्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूँजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है (सा०)। दे०—जनेर। [गेहुँ म + आ (प्रा०), गेहुँम, गेहुँम (बिहा०), गेहुँ (हि०) < *गोधुनक] गेहुँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ या रक्ताभ होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (गं० उ०, आज०)। पर्या०—गहुम (पू० बिहा०), गोहुँ (प०), गोहुम (गं० ब०, उ०-पू० सं०) मंडा गया। [गोयूम (संस्क०), गोहुम (प्रा०), गेहुँ (हि०), गंदुम (फ्रा०), गिन्न (रोमा०), गिहु (अर०), गोम, गोमु (बर०), गहुँ (प० पहा०), गिऊँह (कुमा०), गोम (बं०) गहुम (ओ०), गेहुँ (सि०), गहुँ (गु०), घउँ (गु०), गहुँ (परा०), गोयूम (सिहा०)]

गेंची—(सं०) दे०—गेंडजी।

गैता—(सं०)—(१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी बाहर करने का पात्र (गं० ब०, कहीं-कहीं, मग०-५)। दे०—चलना। (२) दे०—गाता। (३) कड़ी मिट्टी खोदने के लिए लोहे का बना लंबा नोकिला फावड़ा। [देशी, मिला०—*खनित > खंता]



गैता

गैवरा—(सं०) गोओं के रहने का मकान (उ०-पू० सं०)। दे०—गोसार। [गे + वरा < *गोवृह] गैना—(वि०) छोटा (बोना) बेल (पट०-४, मग०-५)। दे०—नाटा। [देशी]

गैवार—(सं०) गाय चरानेवाला, चरवाहा (बर०-१), पर्या०—गैवरवाहा (सं०-२), गँवार (चंपा०), घीरे (द० भाग०)। [गै + वार (प्रा०) < गो + वार < वृ] (संभ०)]

गैया—(सं०) बै०—गाय।

गेरमजरुआ आम—(सं०) वह जमीन, जिसपर जमींदार का अधिकार रहता है, लेकिन उसके व्यवहार करने का अधिकार सभी असाधियों का

का होता है। जैसे—रस्ता, डगर आदि।
 [गैर + मजहन्ना + आम (क्रा०)]
 गैरमजहन्ना खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर मालिक (जमींदार) का अधिकार रहता है।
 [गैर + मजहन्ना < खास (क्रा०)]
 गैरमोहसी—(सं०) वह कास्तकारी जमीन, जिसपर मोहसी हक नहीं मिला हो। पर्या०—
 पाही (पट०, गया), खरिदगी (शाहा०), हाल
 उपारजित (उ०-पु० मं०)। [गैर + मोहसी (क्रा०)]
 गैरवाहा—(सं०)—(मं०-२)। दे०—गैवार।
 [गैर + वाहा; मिला०—गैवार]
 गैवार—(सं०)—(चपा०) दे०—गैबाह।
 गैबाह—(सं०) बीबों को चरानेवाला मनुष्य
 (उ०-पु० मं०)। दे०—चरबाह। [गै + वाह
 (प्र०), गो + वाह < वह (संभ०)]
 गोइजी—(सं०) एक प्रकार की मछली, जिसका
 मुँह और पूँछ पतली होती है (शाहा०-१)।
 पर्या०—गईची (पट०-४, चपा०, मग०-५),
 गइँचा (चपा०, मं०-२), गैँची (भाग०)।
 [देशी, मिला०—गंडक]
 गोंगरा—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की
 तरकारी। यह हरे रंग और लंबे आकार की
 होती है। (पट०-१)। पर्या०—परोर, नेनुआ,
 तोइई, तोरई, चिउड़ा (चपा०, मग०-५,
 पट०-४)। [देशी, महाकोशातकी, हस्तिघोषा
 (संस्क०), नेनुआ, बड़ी तोरई, घिया तोरई,
 चिउरा, घेवा (हिं०), हस्तिघोषा, घुँघुल (बं०)
 घीसाले, घोसाला (मरा०), घीसोड़ा (पु०),
 तुप्पिरी (क०), तरडि (सो०)]
 गोँझी—(सं०)—(ब० भाग०, पट०-४)। दे०—
 आँझ। [मिला०—गोँ जो = मंजोर (पा० स० मं०)]
 गोँड़ी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का
 बना हुआ और घूप में सूखकर तैयार हुआ
 लंबा नाद (ब० मं०, मग०-५)। दे०—चरन।
 [देशी, मिला०—गोण, गोणी (संस्क०) =
 बौरा, एक प्रकार की घास]
 गोँद—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि।
 दे०—गोँइ। [गो + द < ग्राम + आद्य
 वा गो < गृह < *गृथ]
 गोँदा—(सं०)। दे०—गोँइ।

गोँत—(सं०) गाय का पेशाब (चपा०-१,
 मं०-२)। [गो + ओत < ऊँत < मूँत < मुत्त
 < मूत्र, गोमूत्र (संस्क०), < गोमुत्ति (प्रा०)]
 गोँदौरा—(सं०)—(प०)। दे०—ख़ादर।
 [देशी, संम०—गो + दौरा < *गोमय + दौरा]
 गोआ—(सं०)—(१)—(पु०)। दे०—ख़ादर।
 [गोमय * > गोअय > गोआ] (२) लाठी
 का मोटा अंतिम छोर (ब० मं०)। दे०—
 हुरा। [देशी, मिला०—गुल्फ (संस्क०),
 गोफ (प्रा०)] (३)—(उ०-पु० मं०)।
 दे०—ख़ादर। [< *गोमय]
 गोआ पटाओल—(मुहा०) ऊख के बोनो पर
 सिचाई किये बिना ही उसके बीज पर खाद (सड़ी
 पत्ती, घास आदि) देना (उ०-पु० मं०)। दे०—
 खदियाओल। [गोआ + पटा + आओल (प्र०)]
 गोआम—(सं०)—(१) नदी, नहर आदि में बाँध
 बाँधने के लिए लगाये गये मनुष्य (पट०, गया,
 मग०-५, पट०-४)। पर्या०—गोसाम (मग०-
 ५)। (२) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों
 द्वारा जमींदारों को समर्पित स्व-सेवा (पट०,
 गया, ब० मं०)। पर्या०—गोहार। [देशी]
 गोआस—(सं०) मवेशियों के रहने का स्थान,
 गोष्ठ (उ०-पु० मं०, चपा०)। दे०—बयान।
 [देशी, मिला०—गो + आस < गो + आस
 < *आस वा वास]
 गोइठा—(सं०) दे०—गोयँठा।
 गोएँइ—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि,
 जिसमें गाँव की गंदगी, सड़ी-गली खाद आदि
 पानी के बहाव के साथ जाया करती है। पर्या०—
 गोएँड़ा, गोँदा, गोँदा, बाघ, कोदार, कोरार
 (पट०, प०), डिहाँस (शाहा०, पट०, गया),
 घरबारी (पट०, ब० मं०), बाड़ी (ब० भाग०)।
 [मिला०—गोँद]
 गोएँड़ा—(सं०)। दे०—गोएँइ। [मिला०—गोँद]
 गोक्कुलफूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक
 प्रकार का घान (गया)। [गोक्कुल + फूल
 < गोक्कुल + फुल्ल (?)]
 गोखुलसार—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार
 का घान (ब० भाग०)। [गोखुल + सार
 < *गोक्कुलशालि]

गोखुल—(सं०)—(१) घान की फसल को हानि
 पहुँचानेवाली एक काटेदार घास (प० मं०,
 पट०, गया, ब० मं०, पट०-४, मग०-५, मं०-२,
 चपा०)। पर्या०—गोरखुल। (२) ऊसर वा
 परती जमीन में होनेवाली और जमीन पर
 फैलने वाली एक काटेदार घास, जिसकी
 फलियों पर टेढ़े काँटे होते हैं। [< *गोखुल]
 गोचर—(सं०) चरागाह।
 गोचारि—(सं०) सुरक्षित चरागाह (बर०-१)।
 [गो + चारि < *गोचर]
 गोछी—(सं०) घान की पहली रोपनी के समय में
 कीड़े-मकोड़ों से घान की रक्षा करनेवाले
 देवता की मंदिरा, दूध, भूँजा और तेल से
 पूजने की एक रीति (ब० भाग०)। [देशी]
 गोजइ—(सं०) गँहें और जो की मिली हुई
 फसल; गँहें-जो आदि मिला हुआ अनाज
 (पट०-१, चपा०, मग०-५, बाज०)। [गो + जइ
 < गोहस + जइ < *गोधम + यव]
 गोजी—(सं०) पतली लाठी (चपा०-१) [गो + ज
 + ई (प्र०), < *गो + अज < *अज]
 गोठ—(सं०)—(१) पीले या काले-नीले वर्ण का
 गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे कड़वा तेल
 निकलता है (पु० मं०, बर०-१)। दे०—
 सरसों। (२) व्यक्ति, वस्तु, खंड। [देशी,
 मिला०—गुटिका (संस्क०) = गोटी, गोष (हिं०,
 प०) = टुकड़ा; गोटी, गोटा (हिं०) = कपड़े
 पर लगाई जानेवाली सुनहली या उजली
 वस्तु, किनारी। गोटा (प०), गोटी (ने०) =
 टुकड़ा, गोटा (ने०) = प्रतिवस्तु; गोटा
 (बं०) = अविवक्षित गोठ (अस०) = परिणाम,
 हकार, गोटा (सो०) = एक, गोटी (सि०) तंबाकू
 का गोला; गोटी (पु०) चाँदी का गोला,
 गोटी (मरा०) गोल पत्थर]
 गोटा, गोटा—(सं०) मकई के मुट्टे में से निकला
 हुआ अनाज। [देशी, मिला०—गुटिका]
 गोटा—(सं०)—(१) बीज (ब० भाग०)।
 दे०—बीया। (२) दे०—गोट। (३) दे०—
 गोट-२। (४) साड़ी में लगाई जानेवाली
 एक प्रकार की किनारी। [देशी, मिला०
 —गुटिका]

गोटाएल—(कि०) मकई, जनेर आदि फसल की
 बाल का दूढ़ (अन्न के रूप में) होना (सा०, प०
 मं०, चपा०, मग०-५, पट०-४)। दे०—
 हबसाएल। [गोटा + आएल (प्र०)
 < आय, (संस्क० ना० घा० प्र०), गोटा
 < *गुटिका]
 गोटी—(सं०)—(१) अफीम की टिकिया। (२)
 नील की टिकिया। (३) मिट्टी, पत्थर या
 लकड़ी आदि का छोटा गोल टुकड़ा, जिससे बच्चे
 गोटी का खेल खेलते हैं। गोटी देखोल—
 (मुहा०) = संपत्ति के बँटवारे में गोटी से निर्णय
 करना (मग०-५)।—गोटी बैठावल (मुहा०
 चपा०-१) दे०—गोटी देंओल। अपना काम
 बनाना। [< *गुटिका]
 गोटीघर—(सं०) नील की टिकिया सुलाने का
 घर। [गोटी + घर—मिला०—गुटिकागृह]
 गोटी देखोल—(मुहा०) दे०—गोटी।
 गोटी बैठावल—(मुहा०) दे०—गोटी।
 गोटी—(सं०)—(१) पीले या काले-नीले
 वर्ण का गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे
 कड़वा तेल निकलता है (ब० भाग०)। दे०—
 सरसों। (२) दे०—गोट-२। [मिला०
 —गुटिका]
 गोठउर—(सं०) दे०—गोठर।
 गोठउल—(सं०) गोयठों के रखने का घर।
 [< गोष्ठ + कुल]
 गोठी—(सं०) साफ की हुई रई का डेर।
 [< गोष्ठी, गोष्ठ]
 गोठर—(सं०) गोयठों का डेर (मग०-५,
 भाग०-१)। [गोठ + ठर, गोर < गोइड़ा,
 < गोविष्ठा, (१); उर < पूर वा कुल]
 गोइ—(सं०) मनुष्य, मवेशी या किसी जन्तु का
 पैर। [गोइ < *गोड्ड (प्रा०), गुर (रोमा०),
 गोइ (ने०, कुमा०), गोर (अस०) = पैड़ का
 तना, गोइ (बं०), गोइ (ओ०), गोइ पिंडा
 (ओ०) = बड़िया। गोइ (हिं०), गोइ (प०)
 = घटने। गोइ (ल०), गोइ (सि०)]
 गोड़पौठा—(सं०) कुएँ के आर-पार रखा गया
 लकड़ी का तख्ता, जिस पर खड़ा होकर पानी
 निकाला जाता है (ब०-पु० मं०)। पर्या०—

पौठा (पट०-४) । दे०—परियाठा । [गोड़ + पौठा < प्रोष्ठ (संस्कृत०), पौष्ठ (प्रा०) = बँध, स्तूल । गोड़ < *गोड्ड (प्रा०)]

गोड़पौर—(सं०) मोट खींचनेवाले बंटों के लिए कुएं के पास बना हुआ बालू मार्ग (ब० मं०) ।
दे०—गोदर । [गोड़ + पौर, पौर < पौरा < प्रकौली < *प्रतेली]



गोड़रा—(सं०) एक मछली-विशेष । इसके कई पैर होते हैं (शाहा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) । [गोड़ + रा (प्र०) < गोड़ < *गोड्ड (प्रा०)]

गोड़न—(क्रि०)—(१) चरते हुए पशुओं को इकट्ठा करना (चंपा०-१) । (२) भूमि को कुदाल या खुरपी आदि से कोड़ना । [गोड़ + ल (प्र०) मिला०—गोर < √गुरी (उद्यमने = उठाना) वा √गुण्ड, √गुण्ड (= डकना = घेरना), गोड़ना, गोड़ना (हि०), गोड़नु (ने०) = खोदना, घामरात निकालना, खेत आदि को साफ करना । गोड़णा (पं०) = खोदना, गोड़ू (पं०, सि०), गोड़ण (ल०), गोड़वुं (गु०)]

गोड़ा—(सं०)—(१) वह आधार, जिसपर अन्ना-गार (कोठी, बखारी आदि) अवस्थित रहता है । पर्या०—बैसना (ब०-पू० मं०), बैसक (पू० मं०, ब० मं०), खूरा (पट०), ओटा (शाहा०) । (२) गंदासी के फलक का नुकीला अंग, जो बंट के अंदर रहता है (गं०-उ०-५०) । दे०—खुरा । (३) बरतन के नीचे लगा छोटा आधार । (४) किवाड़ के नीचे लगा लकड़ी का लंबा टुकड़ा । (५) व्यक्ति या कोई एक वस्तु । दे०—गोट-२ [गोड़ + आ < गोड़ (देशी), < *गोड्ड (प्रा०)]

गोड़ाहत—(सं०)—(१) गांव में पहरा देनेवाला दुसाध । (२) जमींदारी में काम करनेवाला निम्न स्तर का नोकर, जो समय पर गांव के लोगों को इकट्ठा होने की सूचना दिया करता है । [देशी]

गोड़ानी—(सं०)—(१) पशुओं का भागना रोकने

के लिए उनके अगले दोनों पैरों को बांधने की रस्सी (ब० भाग०) । दे०—पैड़ । पर्या०—छान (पट०-४, मं०-५, चंपा०) । (२) स्त्रियों या बच्चों के पैरों में पहना जानेवाला चांदी का बना आभूषण ।



गोड़ानी

[गोड़ + आनी (प्र०) < गोड्ड (प्रा०)]
गोड़ी—(सं०) मिट्टी या पकी ईंटों का बना हुआ नाछा-जंसा स्थान, जिसमें मवेशियों के खाने के लिए चारा रखा जाता है और जिसके दोनों ओर खूंटों में मवेशी बंधे रहते हैं (मं०-१) ।
[देशी, मिला०—गोणी]
गोड़ीलत्ती—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१), [गोड़ी + लत्ती (देशी)]
गोड़ैत—(सं०)—(१) गांव की ओर से नियुक्त गांव में पहरा देनेवाला व्यक्ति । पर्या०—कोत-वाल, चौकीदार । (२) दे०—गोड़ाहत । [गोड़ + ऐत (प्र०)—जैसे लट्ठ + ऐत = लठैत । गोड़ = गोड़ल, < अगोरल, अगोरना (हि०)]
गोड़ैतक मूठ—(सं०) चौकीदार की किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (उ०-पू० मं०) । दे०—चौकीदारी । [गोड़ैत + क (बिभ०) + मूठ]
गोड़ैती—(सं०)—(१) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (ब०-पू० मं०, चंपा०, पट०-४) । दे०—चौकीदारी । (२) गोड़ाहत को मिलनेवाला पारिश्रमिक । [गोड़ैत + ई]
गोतल—(क्रि०) मवेशियों के खाने के लिए पानी में घास, दाना, खल्ली आदि मिलाना (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मग०-१) । [गोत + ल (प्र०); मिला० गोतः (प्र०)]
गोधार—(सं०)—(१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अस्वाच्छ) घास-मुसा आदि (पट०, गया, बं०-पू०, मग०-५, पट०-४) । दे०—लथेर ।



गोड़ी

(२) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का बंटल (उ०-प०) । पर्या०—लथेर (प०, उ०-प० मं०), निघास (चंपा०, उ०-पू० मं०) निघेस (ब०-पू० मं०), डाँटी (गं०-ब० चंपा०, [गो + थार (संभ०) < *गो + स्तार]

गोधना—(सं०) एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० मं०) । [गो + घना < गोघन (?)]

गोन—(सं०)—(१) मवेशियों की पीठ पर डोने के लिए रखा हुआ बोरा (शाहा०) । दे०—आला । कहा०—“बैल न कूदे कूदे गोन, एह तमासा देखे कौन ।” = बैल नहीं कूदता है; उसकी पीठ पर रखा गोन कूदता है । इस तमासे को कौन देखे । अर्थात् मनुष्य नहीं, मनुष्य का धनमद उसके सर पर नाचता है । (२) दो रस्तियों को बाँटकर बनाई गई रस्सी (गया, ब०-पू०) । दे०—गून । (३) वह पतली मजबूत बँटी हुई रस्सी, जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं । (४) मोद । [< *गुण्ड, < *गोण]



गोन

गोनबरा—(सं०) वह स्थान, जहाँ घर का बूहारन, राख, गोबर आदि फेंका जाता है (पू० चंपा०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-५, भाग०-१) । [गोन + अउरा, गोन < गोमय । अउरा (प्र०) वा < आवत्ते, कूट, पूर]

गोनर—(सं०) घर के पास जमा की गई खाद की राशि (पू० मं०) । दे०—ढेरी । पर्या०—गनोर (पट०-४), गनौरा (भाग०) । लोको०—‘गोआरक गोबर दुहुदिस चिकन’ (सं०) = खाला की खाद-राशि दोनों ओर चिकनी होती है । [गोमय, गोमल]

गोनरौरा—(सं०) खाद, कड़ा (ब०-पू० मं०) । दे०—खावर । [गोनर + औरा < गोमय, गोमल + कूट, आवत्ते, पूर]

गोपालभोग—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [गोपाल + भोग]

गोपी—(सं०)—(१) एक प्रकार की पीली मिट्टी, जो चंदन के काम में लाई जाती है । (२) वह आम, जो चिपटा होकर समय के पूर्व पक जाता है

(चंपा० (१) । गोपी (+ चन्दन), गोपि-चंदन (ने०)]

गोफा—(सं०)—(१) पीधों की कोपल (चंपा०-१) । (२) लाठी के हुंर में लगी हुई लोहे की टोपी । [< *गुम्फ वा < *गुप्त]

गोब—(सं०) मरे हुए धान के पीधे के स्थान में दूसरे पीधे की रोपनी (बर०-१) । [गोब < गोबन < गोमल < गर्भ]

गोबर—(सं०)—(१) (सा०-१) । दे०—खादर । [< *गोमय, < *गोमल] (२) गायवा भैंस का मल (बिहा०, भाज०) । [गोबर < *गोमल; टर्नर के मतानुसार < गोवर्धः (संस्कृत०), गोवर, गोव्वर (प्रा०), गोवर (ने०, कुमा०, मल०, बं०), गोव्वर (ओ०), गोवर (हि०, प०), गोर (गु०) = खोटे की चूर । गोवर (मरा०) = सूखा गोबर]

गोबरचुननी—(सं०)—(मग०-५, चंपा०, पट०-४) दे०—गोबरबिननी ।

गोबर पाँचे—(सं०) सावन वदी पंचमी की शेव-नाग की पूजा करने का एक उत्सव (पट०, गया०) । पर्या०—बेहरा पाँचे (ब० भाग०) नाग-पाँचे (मग०-५, पट०-४), लखपाँचे (चंपा०) । टि०—इस दिन मित्रयाँ गोबर से घरों के चारों ओर रेखा खींचती हैं और दरवाजे के दोनों तरफ चौकोर मंडल तथा साँप के मुँह का आकार बनाती हैं । [गोबर + पाँचे < गोबर-पंचमी, गोमल-पञ्चमी]

गोबरबिननी—(सं०) खेतों या मैदान में मवेशियों के पीछे-पीछे चलकर गोबर बटोरनेवाली स्त्रियाँ (शाहा०-१, चंपा०-२, मग०-५) । पर्या०—गोबर चुननी (मग०-५, चंपा०, पट०-४) । [गोबर + बिननी । बिननी < बीनल (बिहा०), बिनना (हि०) < √बिचिर् (‘व्यक्तीकरण’ = स्पष्ट करना, पृथक् करना, उठाना, धा० रूप-विभक्ति), बितो ।—वि + √चि (लंपा०)]

गोबराएल—(वि०)—(१) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी है । दे०—खदोड़ खेत । (२) मस्ती में आकर पशुओं का आपस में लड़ना-भिड़ना (मग०-५) । [गोबर + आएल (प्र०) < गोमय, गोभल, गोबर-]

गोबराल—(क्रि०) खेत में गोबर की खाद देना (बर०-१) । [गोबर+आएल (प्र०) < गोमय, गोमल, गोबर]

गोबरौरा—(सं०) पान में लगनेवाला एक रोग (प० सै०, प०) । [गोबर+औरा (प्र०) < *उत्थ (?)]

गोबल—(क्रि०) फसल के बीज के भरने पर उस स्थान पर पुनः दूसरा बीज रोपना । पर्या०—डोभल (चं०), गोब, डोभनी [गोब+ल (प्र०) < गोव < गोम < *गर्म (संस्कृ०), गव्य, गोव्य (प्रा०)]

गोभल—(क्रि०) दे०—गोबल ।

गोभी—(सं०)—(१) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे की हानि पहुँचती है (प० सै०, री०) । दे०—दोज । (२) फसल में लगनेवाला एक रोग, जो भीषण वायु गोभी के प्रभाव से होता है और जिससे पौधे में छोटे-छोटे अंकुर निकल आते हैं, जिस कारण वह कमजोर पड़ जाता है । (३) वह ऊख, जिसमें सखः अंकुर निकला हो (अन्यत्र, स० उ०, स०-२, पट०-४, मग०-५) । दे०—पुआरी । (४) एक तरकारी, कोबी । [< *गुम्फ, * < गोजिहा]

गोमाम—(सं०)—(मग०-५) । दे०—गोशाम ।

गोयँठा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ गोलाकार चिपटा या लंबा पिंड, जो धूप में सुखा लिया जाता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, सै०-२) । पर्या०—चिपरी (भाग०), गोइठा (चं०) । [गोयँ+ठा < *गोमय+इष्ट, गो+विष्ठा]

गोयठा—(सं०) दे०—गोहरा, गोयँठा ।

गोयँड़ा—(सं०)—(शाहा०-१, चं०) । दे०—गोएँड़ा । [गोयँ+ड़ा]

गोरंटी—(सं०) कुछ पीली-उजली मिट्टी (ब० भाग०) । दे०—गोरिअट्टा । [गोर+पटी < गोर+मिट्टी < *गौरमृत्तिका]

गोरखिया—(सं०)—(१) गोशों को चरानेवाला मनुष्य (मग०-५) । दे०—चरवाहा । (२) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बेलों

को अवकाश देने के लिए रखे गये अतिरिक्त बेलों को देखनेवाला लड़का । दे०—अनवाह ।

[गो+रखिया < *गौरक्षक]

गोरखिरवा—(सं०) वह बेल, जो न बहुत लाल हो और न बहुत उजला (पट०-१) । [गोर+खिरवा < गोर+क्षीर (?)]

गोरखुल—(सं०) घान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक कटिदार घास (प०) । दे०—गोखुला । [गोखुरक]

गोरथारो—(सं०) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ घास-भूसा आदि (द० भाग०) । दे०—लथेर । [गोर+थारो < गोरु+थारो < गो+स्तार]

गोरल—(क्रि०) किसी कच्चे फल को पकने के लिए भूसा, अन्न आदि में इस तरह रखना कि गर्मी के कारण वह पक जाय (चं०-१, सै०-२) । [< *गु (निरर्थक=नीचे रखना)]

गोरपौर—(सं०)—(१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बेल घूमता है (सा०) । पर्या०—पौदर (चं०, शाहा०), पौर या पैरी (सं० उ०, कहीं-कहीं, पट०, गया, ब० भाग०), बही (पट०), बड़हरा (ब० भुं०) । [गोर+पौर < गो+प्रतोली, गोड़ (शैली) प्रतोली] । (२) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर पानी पटाने के समय सैन चलाया जाता है । पर्या०—पौधा (प०), सैनार (ब० भाग०) । [गोर+पौर]

गोरपौरी—(सं०) ढँकी के पछुए के नीचे का गड्ढा । पर्या०—गत्ती (ब० भाग०, पट०-४, मग०-५) । [गोर+पौरी < गोड़+प्रतोली, प्रोष्ठ]

गोरवा—(सं०) वह बेल, जिसका रंग गुँजे की तरह लाल हो (पट०-१) । [गोर+वा < *गौर, < *गोल]

गोरस—(सं०) दूध, दही, घी आदि । [गो+रस < *गोरस (संस्कृ०), गोरस (पा०, प्रा०), गुल्स (कश्म०), गोरस (हिं०), सगोर, ने० कुमा०), गोरस (अस०, बं०)=दही; गोरस (गु०), गोरस (मरा०)]

गोरा—(सं०)—काश्तकारी भूमि का एक प्रकार । टि०—इसमें सीमा-निर्धारण के साथ-साथ एक निश्चित कर (राजस्व) दिया जाता है, किंतु

भूमि-परिमाण का निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है । सामान्य तौर से मौलिक प्रबंध-पत्र (Original Settlement) में बाँकी गई भूमि के अधिक होने पर भी उसके कर में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है । जमींदार की स्वीकृति के बिना खरीदी-वैची जा सकती है । [देशी]

गोरिअट्टा—(सं०) पीली या उजली बिकनी मिट्टी । पर्या०—गोरंटी (ब० भाग०) । [गोर+इअट्टा < *गौर+मृत्तिका]

गोरिआ—(सं०) ग्वाला-जाति का एक भेड़, ये प्रायः गिरे होते हैं । [संभ०—< *गौर वा < ग्वार < ग्वार < *गोपाल]

गोरी केवाल—(सं०) हल्के रंग की मिट्टी (ब०-पू० स०, मग०-५) । [गोरी+केवाल+गौरी केवाल]

गोदुआ—(वि०) (१) भूते आदि में गोरकर या ऊपर से गरमी पहुँचाकर पकाया हुआ आम आदि फल (सं०-१, चं०-१) । पर्या०—पलुआ (चं०-१) । (२) उवाल लेने के बाद धूप में आमा सुखाया हुआ घान । [गोर+उआ < गोदल (बिहा०) < *गु, गोरना (हिं०)]

गोरू—(सं०)—(१) भेंस को छोड़कर अन्य सभी सोंगवाले पालतू मवेशी (बर०-१) । (२) पालतू मवेशी । पर्या०—गायगोरू, धूरहाँगर (पट०, गया) । (३)—(चं०) । दे०—गाय । [गो+रू (प्र०) < *गो, < *गोरूप (संस्कृ०), गोरूप (पा०)=बैल, गुरूप, गोरू (रोमा०), गोरू (प० पहा०), गोरू (कुमा०), गोरू (ने०), गोरू (अस०, बं०, धो०), गोरू (हिं०, पं०), गोरू (मरा०), गेरिया (सिहा०)=बैल । गेरि (सिहा०)=गाय]

गोरुवारी—(सं०) बैल-भेंस को खिलाने का काम (शाहा०) । [गोरू+वारी < गो+रू (प्र०) वा < गोरूप+वार+ई (प्र०)]

गोरंटिया पथरौटी—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई कुछ लाल मिट्टी । [गोरंटिया+पथरौटी < गोर+अंटिया+पथर+औटी < *गौर+मृत्तिका+प्रस्तर+वटी]

गोरैया—(सं०) एक कल्पित देवता, जो प्रायः गोईसों के देवता माने जाते हैं । कहीं-कहीं किसानों के दरवाजों पर भी इनका पिंड बना होता है (पट०-४, मग०-५, चं०) ।

गोलंबर—(वि०) गोल-गोल आकार का । [गोलंबर < गोल+बर (प्र०)]

गोलंबर कदुआ—(सं०) वह कदू, जिसका आकार गोल होता है (पट०-१) । [गोलंबर+कदुआ]

गोलंबर लेंवो—(सं०) गोल आकार का नींबू (पट०-१) । [गोलंबर+लेंवो]

गोलंबर—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले कुएँ का सोदा गया बड़ा गोल ढाँचा (गया) । दे०—दवड़ । [गोलंबर < गोल]

गोल—(सं०)—(१) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (द०-प० शाहा०) । दे०—दवड़ । [गोल] (२) (वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (बर०-१) । पर्या०—गोला (भाग०) । [< *गौर, (संभ०) < *गोला = (मैनसिल, यह धातु गेरू की तरह लाल होती है)]

गोल—(सं०)—(१) गायों का समूह (सा०-१, मग०-५) । दे०—दोर । (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग (चं०-१, मग०-५, सै०-२) । (३)—(वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (चं०-१) । [गौर, गोला = (मैनसिल) = एक प्रकार की लाल धातु]

गोलकी—(सं०) काली मिर्च (सं०-१, पट०-४, मग०-५) । (२)—(वि०) गोल आकार की वस्तु । (२) लाल रंग की गाय आदि । [गोलक+ई < गोलक, मिर्च < मरीच]

गोलगाल—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (शेष शाहा०, पट०-४, मग०-५) । दे०—दवड़ । [गोल+गाल (अनु० शब्द) < गोल]

गोलवा—(वि०)—(१) लाल रंग का पशु (मग०-५) । दे०—गोल । (२) एक प्रकार का खट्टा साग, नोनिया साग । (मग०-५) । [गौर, गोला (=मैनसिल)]

गोलमंटा—(सं०) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैंगन। [गोल + मंटा < गोल, मंटा (वेशी) वा < वृत्ताक]
 गोलमिरिच, गुलमिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीली गोल काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है; काली मिर्च। दे०—मिरिच। पर्या०—मरीच (बर०-१), मरिच (बं०)। [गोल + मिरिच < गोल मरीच]
 गोलरी—(सं०) रबी की बाल का पका हुआ टुकड़ा, जो पीटने-साड़ने पर भी बनाव के बंध के साथ रह जाता है। पर्या०—गोलुआँ (बग०-५)। [देशी]
 गोला—(वि०)—(१) पीलापन लिये हुए लाल रंग का मवेशी। दे०—गोल। [< *गौर < *गोला (मैनसिल=एक लाल रंग की प्रसिद्ध चाबु)] (२) (सं०) एक प्रकार की कपास (मुं०)। [गोला=लाल रंग]
 गोलावा—(सं०)—(१) एक प्रकार का साग। इसे कुलफ का साग भी कहते हैं (पट०, गया, सा०, पट०-१)। दे०—खुरफा। (२) किवाड़ों में ठोंकी जानेवाली गोल कील, जिसकी ऊपर-वाली टोपी छत्राकार और थोले होती है (पट०-४, मग०-५)। [देशी]
 गोली—(सं०)—(१) गुड़ रखने का बड़ा बरतन, बड़ा कुंडा (मुं०-१)। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग की गाय आदि मादा मवेशी। (३) अन्न आदि रखने के लिए गोलाकार छोटी कोठी पर्या०—जबरा (गया, बं०)। [गोल + ई < *गोलक]
 गोलौर—(सं०)—(१) ऊँच का रस उबालने और गुड़ बनाने का घर (शाहा०)। दे०—गुडौर। [गोल + और < *गुड + वाट] (२) ऊँच परने तथा गुड़ बनाने का स्थान (शाहा०)। दे०—कोलुआर।
 गोवार—(सं०) दे—गवार।
 गोसासा—(सं०)—(१) गीबों के रहने का मकान। दे०—गोवार। (२) गीबों के रहने का सार्वजनिक स्थान, जहाँ अपंग गाय, बैल आदि रखे जाते हैं। पिजरापोल। [गो + सासा < *गोशाला]

गोहट—(सं०) मंड को कोड़ना या छांटना (बं०, सा०-१)। आरि छाँटल (मुहा०) = मंड को छाँटकर उसपर मिट्टी डालना, मुहा०—गोहटा फेंकना (पट०-४, मग०-५)। [देशी]
 गोहमा—(सं०) छाँटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का घान (द० भाग०)। [गोहम + आ (साबु० प्र०) < *गोहूम < *गोघूम]
 गोहमाठी—(सं०)—(१) गेहूँ का खेत (पट०-४)। (२) अनाज निकालने के बाद बचा गेहूँ का ढंठल। [गोह + माठी < गोहूम + माठी < गोघूम + मृत्तिका]
 गोहरा—(सं०) बलाबन के लिए गोबर का बनाया हुआ लंबा टुकड़ा, जो घूप में सुला लिया जाता है। पर्या०—धपुआ, गोयठा, गोयँठा (पट०-४)। [गो + हरा < हल्ल, हल्ल (हि० श० सा०)]
 गोहराएल—(वि०) शृङ्ग में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाता (द० मुं०)। दे०—निकासल। [गोहर + आएल (प्र०) < *गो + हर]
 गोहरौर—(सं०) गोठे का ढेर (शाहा०-१)। दे०—गेठौर। [गोहरा + और (प्र०)]
 गोहान—(सं०) वह जमीन, जिसमें गाँव का गंवा पानी बहकर जाता है (शाहा०)। [गोह + आन (प्र०) वा आन < स्थान, गोह < गुह < *गुह < *गोष्ठ]
 गोहार—(सं०)—(१) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों के द्वारा जमींदार को समर्पित स्वधेवा। दे०—गोबाम। (२) सम्मिलित रूप से हल्ला करना। (३) लड़ने के लिए इकट्ठा हुआ मनुष्यों का समूह (पट०-४, मग०-५)। (४) प्रार्थना करना। [देशी]
 गोहाल—(सं०) गीबों के रहने का मकान (प्र०, बर०-१, मं०-२)। दे०—गोसार। [गो + हाल < *गोशाल]
 गोहूम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैत्री अनाज, जो पीताम (बादामी) वर्ण का होता है और जिसका बाटा खाया जाता है (मं०-२०, उ०-पू० मं०,

पट०-४, मग०-५)। दे०—गेहूँ। [गोघूम (संस्क०), गोहूम (प्रा०)]
 गोहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताम (बादामी) वर्ण का होता है और जिसका बाटा खाया जाता है (प०, पट०-४, मग०-५)। दे०—गेहूँ। [गोघूम]
 गोआँ—(सं०)—(१) गाँव का स्वामी, जमींदार (शाहा०)। दे०—जिमिंदार। (२) एक गाँव का रहनेवाला (भाग०, दर०)। [गो + आँ (प्र०) < ग्राम। मिला०—ग्रामणी]
 गोआँजी—(सं०)—(१) एक प्रकार का जलीय शींगुर, जो पत्ते की नाव में बैठकर इधर-उधर बहता हुआ घान के पोथों को खाता चलता है (प० मं०, पट०, गया)। [गुच्छ (?)] (२) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—घसना। (३) पोथों का छोटा बंकुर, जो जड़ से बंधा पोथे के टूटने पर गिर पड़ से निकलता है। (४) पोथों की एक मूठा से छोटी परिमित राशि। [देशी]
 गोआँजी—(सं०) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—घसना। [देशी]
 गोआँदी—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (पट०-४, मग०-५)। दे०—गोएँड़। [गोआँ + दी; दे०—गोआँ]
 गोआँत—(सं०) पशुओं का मूत्र। पर्या०—गौत, मूत (प०), गोआँत (बं०)। [गो + आँत < *गो + मूत्र]
 गोआँजी—(सं०) उखाड़कर रोपने योग्य घान के पोथे। लेल = घान का रोपा समाप्त या प्रारंभ करना। —के नहाइल = खेत में रोपा होते ही वर्षा के पानी से पोथी का नहाना। [गुच्छ]
 गोठि—(सं०) सुखा हुआ गोबर (उ०-पू० मं०)। दे०—उमारा [< *गोष्ठ < *गोष्ठ]
 गोत—(सं०)—(१) दे०—गौत। [गौ + त < *गो + मूत्र] (२) बघान में एक साथ बांधकर पशुओं को दिया जानेवाला चारा (गया, बं०)। दे०—गवत। (३) पशुओं का बस (पट०-४, मग०-५, बं०)। [गो + ओत < गवाय]

गौतदेल—(मुहा०) पशुओं को खिलाना, गवत देना (पट०, गया, पट०-४, मग०-५)। दे०—सानो-पानी करल। [गौत + देल]
 गौतहा—(सं०)—(१) (पट०)। दे०—गवत। (२) गौत या गवत देनेवाला व्यक्ति। (३) बरसाती फसल, जिसे पशुओं को खिलते हैं। [गौ + ओतहा < गवाय]
 गौर—(सं०)—(उ०-पू० मं०)। दे०—ओसर [गो]
 गौरिआ—(सं०) एक प्रकार का केला, जो मसोले आकार का और मोटा होता है (बं०-०-१)। [देशी]
 गौरिआ मालभोग—(सं०) एक अग्रहनी घान, जो सफेद और नोक पर थोड़ा-सा काला होता है (सा०-१)। [गौरिया + मालभोग]
 गौरिया—(सं०)—(१) चीना का एक भेद (सा०)। पर्या०—रकसा (सा०)। (२) एक प्रकार का नींबू (बर०-१)। (३) एक प्रकार का केला (बर०-१, बं० तथा अन्य०)। [देशी, संम० < *गौर]
 गौरी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना और घूप में सुखाया हुआ लंबा नाव (गया)। दे०—बरन। [मिला०—गोय, गोयणी]
 गौरीसंकर—(सं०) एक शाक-विशेष। इसका पत्ता गुलाबी और लाल रंग का होता है (पट०-१)।
 गौसार—(सं०) गीबों के रहने का मकान। पर्या०—गोसासा, गोहाल (प्र०), गैघरा (उ०-पू० मं०), दरखोल (द०-पू० शाहा०) दोगाह (पट०, गया, सा०, प०)। [गौ + सार < *गोशाल]
 गौसिघी—(वि०) वह बंड, जिसके दोनों सींग बीच में बाकर जुड़ते हैं (द०-पू० मं०)। दे०—सिंग जुड़ा। [गौ + सिंघ < *गो + शृंग]
 ग्वार—(सं०)—(१) गाय अरानेवाला व्यक्ति। (२) गहौर; एक जाति-विशेष। [व + आर < गो + आर < गो + पाल, गोपाल (प्र०)]



गौसिघी

घ

घँघरी—(सं०) चने और ज्वार की बाल में लगने वाला एक कीड़ा (शाहा०)। पर्या०—घोंघरी, सरका (भाग०-१), घघरी, घँघरा (पट०-४)। घइला—(सं०) दे०—चैला।
घघरा लेंबो—(सं०) बड़ा-बड़ा, करीब एक-एक सेर तक का फलनेवाला नींबू। इसका छिलका मोटा होता है और भीतर में फाँक रहती है (पट०-१)। पर्या०—गागर-नीमो, गागल नीमो (चंपा, शाहा०)। [घघरा+लेंबो]
घघरी—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड़ा (गड़दा)। (ब० भाग०, भाग०-१)। पर्या०—घाई (सं०, ब० भाग०, भाग०-१), खड्दा (ब० मं०), खड्दा (कहीं-कहीं), खड्दा (पट०-४)। [देशी, मिला० घघर (संस्क०), घाघर (प्रा०)=घघर शब्द, खोखला गला, बड़ारी]
घटवड़—(सं०) अनाज आदि का घटना-बड़ना। मूल्य का उतार-चढ़ाव। [घट+वड़, घट-वड़ (हिं०), घट-वड़ (ने०)]
घटल—(क्रि०) घटना, कम होना। (वि०) घटा हुआ। घटल-बड़ल (मौ०)—घटा-बड़ा, कम-बेह। [घट+ल (प्र०) < घट < घट्ट (प्रा०) = गिरना, गाठ (बरबी), गट्टन, गोट्ट (कवम०) = अपर्याप्त; घट (प० पहा०) = छोटा, थोड़ा, घटखो (कुमा०), घटनु (ने०), घटना (हिं०), घटिवा (अस०), घाटा (बं०), घटणा (पं०), घटणा (ल०), घटणा (सि०), घटनु (गु०), घाटणे (मरा०)]
घटही—(सं०) बड़ नाव, जो घाट पर रहती है। [घट+ही (प्र०) < घाट < घट्ट] (वि०) निम्न श्रेणी का, घटिया। [घट+ही (प्र०) < घट < घटल]
घटावल—(क्रि०) घटल किया का प्रे०। घटाना, कम करना। अनाज आदि का मूल्य घटाना। [घट+आवल (प्र०) < घट < *घट्ट (प्रा०), घटाना (हिं०), घटाउनु (ने०), घटखो (कुमा०), घटाइवा (अस०), घटाउणा (पं०), घटाइणु (सि०), घटाइवु (गु०), घटाविणे (मरा०)]

घटिया—(वि०) निम्न स्तर की वस्तु। निम्न श्रेणी का अनाज आदि। पर्या०—घटिहा।
घटिहन—(सं०)-(१) निम्न प्रकार का सस्ता बनाव; ऐसा कोई जन्म, जो पीछे जाने पर अधिक पानी सोखता है और शीघ्रता से पच नहीं पाता। पर्या०—घटीहन। (२) चैती अनाज (भाग०-१)। [घट+इ+हन, घटना (हिं०), हन < हान < भ्रान्त्य, वा घट+इहन (प्र०)]
घटिहा—(वि०) दे०—घटिया।
घटीहन—(सं०) दे०—घटिहन। [घटी+हन]
घड़ा—(सं०) दे०—चैला। [घड़ा < *घट्ट, *घट्टक (संस्क०), घट्टक (प्रा०), घडग, घडग (प्रा०), घड़ा (हिं०, बं०-पं०), घार (अस०)=हाड़ी, घड़ी (सि०), लडो (गु०), घडा (मरा०)]
घड़ारी—(सं०)-(१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०)। पर्या०—गड़ारी (भाग०-१)। दे०—कियारी। [घट्टा, कृष्ट] (२) कुएं पर लगे खंभों की दो काबियों के बीच में पड़ी धुरी पर नाचने-वाली चिरनी (प०)। पर्या०—गड़ारी (उ०-प०) बं० मं०), चिरनी (चंपा०, ब०-प० मं०, पट०, ब०-मं०, पट०-४), गड़दा घड़ारी-२ (ब०-प० शाहा०), घुरनी (पट०), मकरा (चंपा०, ब०-प०, भाग०-१)। [घघर]
घन—(सं०)-(१) किसी चीज का घना रहना (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घना (पट०-४)। (२) घनी बोआई। पर्या०—गाढ़, गाढ़ा, सँजोर (गं० उ०), घन बोअल (मुहा०)=अनाज का घना बोना। (३) लोहारों का बड़ा हथौड़ा। [घन (संस्क०), घन (प्रा०), घण (प्रा०), घन (हिं०), घन् (ने०), गन (कवम०)=लकड़ी का बल्ला, घणा (कुमा०), घणा (पं०), घण (गु०), घणा (मरा०)]
घनगिरह—(सं०) घनी गिरहोंवाला बाँस (चंपा०-१, भाग०-१)। [घन+गिरह < घन+ग्रंथि]



घनबहा—(सं०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊँच लगानेवाला (ब० भाग०, ब० मं०, भाग०-१) दे०—मोरेवाह। [घन+बहा < घानी+बहा (प्र०) अथवा < बहू, घानी < घाटन (संस्क०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]
घनबाह—(सं०) दे०—घनबहा (पट०, गया)। [घाटन (संस्क०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]
घनबाहा—(सं०) ऊँच को पेरते समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी। कभी-कभी यह आदमी बँल भी हाँकता है (ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—मोरवाह। [घन+बाहा < घानी+बाहा < घानवाह]
घनबोअल—(मुहा०) अनाज का घना बोना। दे०—घन।
घमहौरी—(सं०)-(१) एक प्रकार का फल (बर०-१)। (२) गर्मी के दिनों में शरीर में होने-वाला एक चर्म रोग, जिसमें चमड़े पर फुंसियाँ हो जाया करती हैं। [देशी, घमह+औरी < ग्रीष्मवटी (?)]
घर—(सं०)-(१) ऊँच या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊँच पीसा जाता है (चंपा०)। दे०—खान। टि०—आवकल ऊँच का कोल्हू तेल-कोल्हू-जैसा नहीं होता है, लोहे के तीन सिलिंडरों का बना होता है। (२) मनुष्य के निवास करने का स्थान। (३) कोठरी। [< *गृह, घर (प्रा०, प्रा०), घर (हिं०, पं०, ल०, अस०, प्रो०), घर (सि०), घर (गु०, मरा०)। < *गृहोरो (भारो०)=आग, गर्मी—ठनैर]
घर करल—(मुहा०)-(१) अल या किसी औजार का अपने स्थान पर स्थिर हो जाना। (२) किसी बीमारी का जल्द नहीं छूटना (चंपा०-१)। (३) घर कर लेना, स्थिर होना। (४) किसी स्त्री का परपुरुष से स्याह कर लेना (चंपा०)। [घर+करल]
घरगैया—(सं०) घर में पँदा हुई तथा पाली-पोसी हुई गाय (शाहा०-१, भाग०-१)। [घर+गैया]
घरदुआर—(सं०) दे०—घरबार।

घरबार—(सं०) गृहस्थी, परिवार। [घर+बार < *गृह+द्वार वा < *गृह-परिवार, घरबार (हिं०, पं०), घरवार (ने०), घरबार (सि०), घरवार (गु०), घरवार (मरा०)]
घरबारी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (भाग०-१)। दे०—गोएँड़। (२) घर में रहनेवाला गृहस्थ, न कि संन्यासी। (३) घरबार का कार्य। [घर+बारी < *गृहवाटिका (?), गृह+वार]
घरमुँहा—(वि०) घर की ओर तेजी से जाने-वाला बँल, गाय आदि पशु (चंपा०-१, भाग०)। [घर+मुँहा < *गृहमुख]
घाँटी—(सं०) मवेशी की गर्दन में बाँधी जाने-वाली घंटी (चंपा०-१, भाग०-१)। [< घण्टी, < घण्टिका (संस्क०), घंटीआ (प्रा०) घंटी, (हिं०), घाँड़ों (ने०), घानो (कुमा०) घंडा घाँटी (पं०), घंड (ल०), घंडो (सि०) घाँट (मरा०)]
घाई—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड़दा (ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—घघरी। [घाई < खाई < *खात (?)]
घाघ—(सं०)-(१) पूर्वकाल का प्रसिद्ध अविष्य-दर्शी कवि। (२) किसी कार्य में अति निपुण व्यक्ति।
घाट—(सं०)-(१) नदी, तालाब आदि का वह स्थान, जहाँ से मनुष्य या जानवर पंख या नाव आदि से पार करते हैं अथवा जहाँ से व्यापार की वस्तुएँ पार की जाती हैं अथवा स्नान करने तथा कपड़ा धोने का स्थान। (२) हल, हेंगा आदि में बनाया गया खड्दा (पट०-४) (वि०) वजन में कम (चंपा०)। [घट्ट (संस्क०), घट्ट (प्रा०), गाठ (कवम०), घाट (हिं०, कुमा०, ने०, पं०, अस०, बं०, प्रो०), घाटु (सि०), घाट (गु०, मरा०), संम०—< घाटा (संस्क०),—ठनैर]



घात—(सं०) (१) चतुराई और गुप्त रूप से किसी वस्तु की प्राप्ति का प्रयास। इसका प्रयोग शत्रुता, ईर्ष्या और कभी-कभी उचित स्पर्धा में भी होता है। घात लगावल, घात में बैठल (मुहा०) = किसी वस्तु अथवा सफलता की प्राप्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करना, ताक में बैठना। [घात]

घात में बैठल—(मुहा०) दे०—घात।

घात लगावल—(मुहा०) दे०—घात।

घान, घानि—(सं०)। दे०—घानी।

घानी—(सं०) (१) ऊल की काटी हुई टुकड़ियों का वह परिमाण, जो कोल्हू में एक बार में पेरा जा सके। (२) कोल्हू, जता आदि में एक बार दिया जानेवाला अन्न का परिमाण (बिहा०, बाज०)। [घान, घाटन (संस्क०), घायण (प्रा०), घाली (हि०), घान् (ने०), घाली (बं०) = तेल का कोल्हू]

घाम—(सं०) (१) घूप। (२) शरीर से निकला हुआ पसीना (भाग०-१)। [काम < *कर्म]

घाव—(सं०) अनुप्य या पशु-पक्षी के शरीर में उत्पन्न ग्न अथवा शस्त्र से लगा बाधात। [< *घात (संस्क०), घात (पा०), घात्र (प्रा०), घाव (हि०), घाउ (ने०), घाउ (कुमा०), घा (अस०, बं०, ओ०), का, घाउ (पं०), गाउ (सि०), घा, घाव (गु०), घाव, घाय (मरा०)]

घास—(सं०) तृण। खेत में बनाव के अलावा स्वयं उत्पन्न होनेवाले दूसरे पौधे। पर्या०—घासपात, दुमदौंदर (ब०-पं०), घू (बं०), तिरिण (पट०-४, मग०-५)। [घास (संस्क०), घास (पा०, प्रा०), घास (हि०), घाँस (ने०), खस (रोमा०), घास (बरबो), गस (कदम०), गास (ब० पहा०), घास (कुमा०), घाँह (अस०), घास (बं०), घास (ओ०), घाह (पं०, ल०), गाहु (सि०), कास (गु०), कास (मरा०)]

घिचड़ा—(सं०)-(बं०)। दे०—घिचरा, घिचरा।

घिचरा—(सं०) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (बं०)। पर्या०—घिचड़ा (बं०), नेनुआँ, तरोई, परोर, परोल (बं०); चेरा (बर०)।

घिचड़ा—(सं०) वह आम, जिसके खाने में घी के जैसा स्वाद हो (पट०-१)। पर्या०—घिआही (मग०-५), घिउआ (बं०)। (बि०) घी-जैसा स्वादवाली वस्तु। [घिअ+ हवा (प्र०) < *घृत]

घिआही—(सं०)-(मग०-५)। दे०—घिअहवा।

घिआही कदुआ—(सं०) वह कदुह, जिसका स्वाद घी-जैसा हो और जो काफी चिकना हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [घिआ+ ही (प्र०)+कदुआ]

घिउआ—(सं०)-(बं०)। दे०—घिअहवा।

घिउआ—(सं०) दे०—घिउरा, घेवड़ा।

घिउरा—(सं०)-(१) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (बं०)। पर्या०—घिउड़ा, घिउरा, घिउड़ा (बं०)।

घियातरोई—(सं०) दे०—घेवड़ा।

घिरनी—(सं०) खंभे की दो कानियों के बीच पड़ी घुरी पर नाचनेवाली गढ़ारी (पट०, बं०, गया, ब०-पं०, बं०, बं०, पट०-४, मग०-५)। दे०—घड़ा। [अहरी, घूर्णन, घूर्ण (?)]

घिवड़ा—(सं०) गुणानुसार आम का एक भेद (बर०-१)। [कित+हा (साधु० प्र०) < की < घृत]

घुँघनी—(सं०)-(१) मट्टे की अथपकी भूमी हुई बाल (गं० ब०)। दे०—होरहा। (२) बना, मटर या किसी अन्न को भिगोर तथा तेल या घी में तलकर बनाया गया भोज्य पदार्थ। [कू+कनी < *घृत+कीर्ण < √घृ (अरण्योपयो) (?)]

घुँडी—(सं०)-(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढंकी के मूसल से घान कटा जाता है (पट०)। दे०—बोखरी। (२) मवेशियों के बाँधने की रस्सी या कड़े। (३) जोशान आदि गहनों में छोर पर बनी हुई गोल, नोकदार गाँठ। [मिला०—कण्डिनी = बोखर, कण्डिमुदुल्लय]

घुच्चा—(सं०) फल, बनाव आदि फलों का गुच्छा। [गुच्छ]

घुनल—(कि०) किसी वस्तु में घुन लगना।

पर्या०—घुनाएल। (बि०) घुन लगा हुआ (शाहा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घुनाएल (बं०)। [घुन+ल (प्र०) < घुन < घुण]

घुनाएल—(कि०)-(बं०)। दे०—घुनल।

घुमाव—(सं०)-(१) जलप्रवाह के मार्ग का मोड़ (बं०, उ० पू० नं०, भाग०-१)। दे०—मोरानी। (२) खेत की मेड़ का मोड़। (३) हेंगा या हल की जोत का मोड़। (४) रास्ते आदि का मोड़। [< √घूर्ण (संस्क०), घुम्म (प्रा०), घुमना (हि०)]

घुमावल—(कि०) घुमल कि० का प्र०। घुमाना, गाड़ी-हल के बल आदि को एक तरफ घुमाना। [< घूर्ण (= घूर्णयति ?) (संस्क०), घुम्म (प्रा०), घुमाना (हि०), घुमण्या (पं०), घुमाहणु (सि०)]

घुरकटटा—(सं०) ऊल की खड़ी फसल को काटने-वाला (ब० भाग०)। दे०—अंगेड़ीहा। पर्या०—खुटकटा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुर+कटा < घूर < कूरा < कूट < कृत्]

घुरघुरा—(सं०)-(१) एक कीड़ा-विलेप। (२) एक बीमारी-विलेप (कंठमाला) (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुरघुर]

घुरनी—(सं०) खंभे की दो कानियों के बीच की घुरी पर नाचनेवाली घिरनी (पट०)। दे०—घड़ा। [अहरी, घूर्ण (?)]

घुरी—(सं०) दोनी की वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी में ह में बाँधी जाती है (पट०, गया)। पर्या०—मेंहौरी (पट०, गया, पट०-४, मग०-५), डोड़ा (ब० भाग०)। [देशी, मिला०—अन्ध्र > घुडी]

घुरौड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—घूर।

घुलल—(कि०)-(१) तरल पदार्थ में किसी दूसरी वस्तु का मिलना। (२) आम आदि फलों का पककर मलायम होना। (बि०) मिला हुआ, घुला हुआ। [घुल+ल (प्र०)]

घुसावल—(बि०) घुसल कि० का प्र०—घुसाना, प्रवेश कराना।

घूआ—(सं०) भूट्टे के ऊपर का केशों-जैसा गुच्छा (ब०-पं० शाहा०)। दे०—भूआ।

पर्या०—मोच (भाग०-१), मोचा (बं०)। (बि०) वह व्यक्ति, जो दूसरे की बातें सुनकर पी जाया करता है, कुछ बोलता नहीं (पट०-४)।

घून—(सं०) अन्न और लकड़ी को खानेवाला एक कीड़ा। [घुण]

घूनल—(कि०) दे०—घुनल।

घूमल—(कि०) घुमाना, चक्कर काटना, गाड़ी या हल के बल को एक तरफ घुमाना। [< √घूर्ण (?) , घुम्म (प्रा०), घुमना (हि०), घुम्नु (ने०), घुम्नो (कुमा०), घुमाइवा (अस०), घुमा (बं०), घुमाइवा (ओ०), घुमण्या (पं०)]

घूर—(सं०)-(१) भूमि को खोदकर बनाया गया छोटा गढ़ा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि को जलाकर जाड़े में ग्रामीण लोग आग तापते हैं। पर्या०—कौर, कौड़ (पं०), घुरौड़ा (पट०-४)। लोको०—“घर जरय हय, घूर बुताव” —किसी का घर जल रहा हो और वह घूर बुझावे, अर्थात् बड़ी विपत्ति के प्रति लापरवाह होकर छोटे खतरे को दूर करने के लिए सचेष्टता दिखलाना। (२) खाद का गढ़ा (बिह०, बाज०)। पर्या०—खाद के गड़हा, खादर के गड़हा। (३) खाद (गं० ब०-पं०)। दे०—खादर। [कूट]

घूर काटल—(कि०) ऊल काटना (ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—छोलल। [घूर+काटल (प्र०)]

घूरी—(सं०) कारखाने में गन्ने को काटकर छोटा करने का औजार (सा०-१)। पर्या०—बघरिया (पट०-४)। [देशी]

घूस—(सं०) किसी वस्तु की प्राप्ति अथवा कार्य की सफलता के लिए संबंध व्यक्ति को अनुचित तौर पर दिया जानेवाला द्रव्य। [गुह्याशय (हि० श० सा०)]

घूसल—(कि०) घुसना, प्रवेश करना, किसी नुकीली चीज का अंदर जाना। [घूस+ल (प्र०), घूस, घूसना (हि०), घुसणा (पं०), घुस्तु (ने०), घुसवुं (गु०), घुसणे (मरा०)]

घेंच—(सं०)-(१) जल में उपजनेवाला एक प्रकार का पौधा, जिसका उजला बंटल गरीब लोग खाते हैं। (२) गरदन। [देशी]

चेकुआर—(सं०) एक प्रसिद्ध औषधीय पौधा, चूतकुमारी । [चे+कुआर < कि+कुमार < *घृतकुमारी (संस्क०), कीकुमार (हि०)]
 घेरल—(कि०) घेरना, बाड़ करना, किसी वस्तु की रक्षा के लिए चारों ओर बाड़ लगाना ।
 [घेर+ल (प्र०) < घेर, घेरना (हि०), घेरिवा (ओ०), घेरा (बं०), घेर (अस०) = परिस्थित, घेरणा (पं०), घेरणु (ति०), घेरवु (गु०), घेरणे (मरा०), संम० < *किरति—टर्नर]
 घेरा—(सं०)—(१) नेवारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (चंपा०, सं०) : दे०—घेरान । (२) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ । दे०—नवान । (३) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (सं०) । दे०—घेरान । (४) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए धारा के इस पार से उस पार तक बांधा गया बांध (उ०-प०, भाग०-१) । दे०—बांध । (५) खेत, फुलवारी या घास के खेत को सुरक्षित रखने के लिए बांस, दीवाल आदि से घिरा स्थान (पट०-४, मग०-५) । [घेरल (बिहा०), घेरना (हि०) < ग्रह < √ग्रह] (६) (बर०) । दे०—चिउरा ।

घेरान—(सं०)—(१) नेवारी या जलावन आदि के रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (पं० सं०, सा०, चंपा०) । पर्या०—घोरान (शाहा०), घेरा, डाठ (चंपा०, सं०), डाठ (पू०), पखट (पं०) । (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०) । पर्या०—घेरानी (उ०-प०), वारी, बेंद (सं०), घोरान (पं०-६), घेरा (सं०), छांपा (बं० मु०), हिराँत (चंपा०, पट०-४, मग०-५, सं०-२) । [ग्रहण]
 घेरानी—(सं०) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०, भाग०-१) । दे०—घेरान । [ग्रहणी]

घेराबल—(कि०) घेरल कि० का प्रे० । घेराना, बाड़ लगवाना । [घेरा+आवल (प्र०) < घेर, घेराना (हि०), घेरान (बं०) घेराइवा (ओ०)]
 घेवड़ा—(सं०) तरौई की जाति का एक फल, जिसकी तरकारी बनती है । दे०—तरौई ।

पर्या०—चिउड़ा, चिउड़ा चिउरा, चिउड़ा, नेनुआ, परोर, परोल (मं० इ०), तरौई, घेरा (बर०) । [घि+वरा < घी+वड़ा < घृतपूर (संभाष्य)] चिउड़ा, चिउरा (बिहा०), घेवड़ा, घिया तोरई, वड़ी तोरई, नेनुआ (हि०), मझ-कोशातकी, हस्तिघोषा (संस्क०), हस्तिघोषा, घुंघुल, दुंदुल, घुंघुल (बं०), घीसाले, घीसाला (मरा०), गलका, घीसोड़ा (गु०), अरहारे, तुप्पी (क०), एनुगवीर, पुखावीरकाया (ते०), तरउ (ओ०), सियार (का०)]

घेला—(सं०)—(१) वह बरतन, जिसमें ऊँच के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (उ०-पू० सं०, भाग०-१) । दे०—नाद । (२) कुएँ से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना घड़ा (पट०-४, मग०-५, चंपा०, सं०-२) । दे०—घड़का । [< *घट, घटी, < *घटीर]



घंका

घोंघर—(बि०) आगे की ओर निकलकर घूमने हुए सींगोंवाला बैल (गया, भाग०-१) । दे०—घोंघा । [देशी—मिला०—घोंघ = मध्य-वर्ती अवकाश (ओ० बि० हि०), घुंघराख (हि०), < घुमटना < घूर्णन]

घोंघरा—(बि०)—(१) घं० मु०, भाग०-१, पट०) । दे०—घोंघर ।

घोंघरी—(सं०) बने और पवार की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा । दे०—बेंघरी । [देशी, घोंघा (हि०)]

घोंघा—(सं०)—(१) वर्षा से बचने के लिए ताड़ के पत्तों की बुनी हुई एक प्रकार की बरसाती, जो सिर से लटकती हुई होती है (गया, मग०-५) [घोंघा < घोंघा < गुण्ड (?)] (२) खंछ-जाति का एक छोटा जलजन्तु, जिसके बाह्यकोष से चूना बनता है (भाग०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, सं०-२) । पर्या०—पठा, पेंठा । (३) (सं०)—(पू० सं०) । दे०—घोंघा । [घोंघ (ओ० बि० हि०)]

घोंघाड़ी, घोंघारी—(सं०) छोटी जाति का घोंघा ।

घोंघी—(सं०) वर्षा से कपड़ा बचाने के लिए कंबल के ऊपर के छोर को बांधकर बनाई गई ओढ़नी (इ०-प० शाहा०, भाग०-१) । दे०—घोंघी । [घोंघी < घोघ < गुण्ड (?)]



घोंघी

घोंघवा—(बि०) आगे की ओर निकलकर घूमने हुए सींगोंवाला बैल (शाहा०) । दे०—घोंघा । [घोंघ+वा (गुच्छ)]

घोंघा—(बि०) आगे की ओर निकलकर घूमने हुए सींगोंवाला बैल (मं० उ०, पट०, इ० भाग०, भाग०-१) । पर्या०—घोंघा (पू० सं०), घोंघवा (शाहा०), घोंघर (गया), घोंघरा (पट०), घोंघरा (इ० मु०, पट०-४) । (२) (सं०) दूध दूहने के लिए मिट्टी की बड़ी कटिया (शाहा०) । [गुच्छ]

घोंघी—(बि०) आगे की ओर मुड़े सींगोंवाला बैल या दूसरा मवेशी (बिहा०, भाग०) । यह उत्तम श्रेणी का सामा जाता है । 'घोंघी देखे बोहि पार, बंली खोले येहि पार ।'—घाघ = घोंघी नल को उस पार देखकर नदी के इसी पार से (रूपये की) बंली खोल देनी चाहिए । [देशी, मिला०—कुंचित (= घूमा हुआ)]

घोंपल—(कि०) चुभाना, घुसेड़ना (मु०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, सं०-२) । [< √घुम् (संचलने), √घुप् (गती)]

घोंपा—(बि०) (१) (पू० सं०) । दे०—घोंपा । (२) बाजरे का रूईदार फूल (इ०-प० शाहा०) । पर्या०—जावा (बं० मु०), फुलको (बं० सांग०) । [चूप]

घोंघाड़ी—(सं०) बलगाड़ी पर रखने के लिए बांस, चटाई आदि का बना पर्दा (मु०-१, भाग०-१) । [घोंघ+ली < गुण्डन]

घोंघसा—(सं०) दाना-सहित भूसा (चंपा०-१) । [देशी]

घोंघाड़ी—(सं०) एक प्रकार का घान (चंपा०-१) । [देशी]

घोंघी—(सं०)—(१)—(चंपा०, भाग०-१, संता०) दे०—घोंघी । पर्या०—घोंघी (इ०-प० शाहा०), चुकी (पट०, उ०-पू० सं०) । [घोंघ+

ई < घोघ < गुण्ड] (२) ताड़ के पत्ते या कंबल आदि की बनी लंबी बरसाती या ओढ़नी (मु०-१, भाग०-१) । [घोंघ+ई]

घोंघजई—(सं०) घोंघे के खाने का एक चारा, जो बी से मिलता-जुलता होता है (पट०-१) ।

पर्या०—जई । [घोंघ+जई]

घोंघसीन—(सं०) वह बैल, जिसका सीमा घोंघे की तरह हो (पट०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५) । [घोंघ+सीन < घोंघा+सीना]

घोंघा—(सं०) सवारी करने का एक प्रसिद्ध घोषाया मवेशी । [घोंघा < *घोटक (संस्क०), घोटक (पा०), घोंघु (भा०), घोंघा (हि०, ने०, पं०, बं०, ओ०), घोंघी (ति०), घोंघो (गु०), घोंघा (मरा०)]

घोरई—(सं०) मोट के मुँह के फंले और खुले रहने के लिए, धारदार कटियों से बंधी हुई टेढ़ी लकड़ी । पर्या०—घोरानी । [देशी]

घोरल—(कि०)—(१) घोरना, मिलाना । जलादि द्रव पदार्थ से किसी वस्तु को तरल करना । (२) खटिया आदि को रस्सी से बुनना । [घोर+ल (प्र०) < घोर < *घोल (संस्क०), < *घोट < √घुट (परिवर्तने), √घृ (अरण, सेके छावने)]

घोरान—(सं०) नेवारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (शाहा०, संता०) । दे०—घेरान । (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मं० इ०) । दे०—घेरान । (३) भूसा आदि रखने के लिए चाँग (खंगेला) जंसा बड़ा टोकरा (बं० भाग०) । [ग्रहण]

घोरानी—(सं०) । दे०—घोरई ।

घोंका—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०-१, मग०-५) । [देशी]

घोंद—(सं०) (१) फलों का गुच्छा (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, सं०-२) । (२) वह ताड़, जिससे साल-भर ताड़ी निकले । (३) केलों का गुच्छा । [गुत्स]



घोंद

घोंर—(सं०)—(१) वह ताड़ का पेड़, जिससे बरसात में ताड़ी निकलती है । [देशी, मिला० √घृ (अरण-चूना)] (२) फलों का गुच्छा (चंपा०-१) । (३) केल के फल का पूरा गुच्छा । [गुत्स]

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	१९	कँकरीली	ककड़ीली
१	१	२१	दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०)	(बिहा०, आज०)। दे०-अँकड़ाह
१	२-३	२	हँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़।	अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। पर्या०-हँकड़ी।
१	२	२७	[अँकर+ई० < अँकरा, दे०-अँकटा]	[अँकर+ई(प०) < अँकरा]
२	१	१६ के बाद	..	अँकुर (सं०)-(भाग०-१) दे०-अँकुदा।
२	१	२६ के बाद	..	अँकुस (सं०)दे०-अँकुसी-२।
२	२	३७	अँचिवत् [सूआ	अँचिवत्। सूआ
३	१	१८	अँगवँग	अँगवँग
३	१	३२	अँगरवाह	अँगरवाह
३	१	३४	अँगार	अँगर
३	२	३२	[अग्रकांड-वा, (अँगेड़ी+हा)]	[अँगेड़ी+हा < अग्रकांड+वाह]
३	२	३७	द० मु०	द० मु०
४	१	१८	(चंग०-मुँ १०-१,	[चंग०-१, मुँ०-१,
४	२	११	दे०-अँजोरिया [अँजोरिया]	[अँजोरिया,
५	२	२५	रँडी	रँडी।
५	२	३७	अँचकी रात्रि	अँचकी = रात्रि
५	२	३९	गंडादार	गंडादार।
५	२	२५	बैलो	बैलों
६	१	२९	ढार ढाल	ढार < ढाल
६	१	३९	उष	उष्
६	२	२	पट०-४)	पट०-४)।
६	२	१२	ई >	ई <
६	१	१६	छराही	पया०-छराही
६	२	२५	(भाग-१) दे०-पाँजा	(भाग०-१)। दे०-पाँजा।
७	१	३	करता है। (द०-पू० मै०)	करता है (द०-पू० मै०)।
७	१	२१	(अ+काल)	(अ+काल)
७	१	३६	उत्खनन उत्खनन	उत्खनन
७	२	४०	दे०-अखेना	दे०-अखेना

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	६	(आ०)	(आज०)
७	२	२	(द० मुँ)	(द० मुँ)
७	१	१४	(द० भाग०) दे०—फाजिल	(द० भाग०) । दे०—फाजिल ।
७	१	३५	(१)	(?)
७	१	३९	(१)	(?)
७	१	१९	साओख	साओख
७	१	२०	(प०), कमियाँ	(प०), कमियई, कमिया
७	१	२१	लगुआजन	लगुआजन (सामा०) =
१०	१	११	अग्रबलि	अग्रबलि
१०	२	२९	वार । अगोरनिहार	वार ।
११	१	२	अओढ़	अओढ़
११	१	१२	अओढ़	अओढ़
११	२	६	बर्तनः—	बरतन
११	२	१५	(स०)	(सं०)
११	२	२६	की	का
११	२	२६	(मुँ—१)	—(मुँ—१)
१२	१	१६	ओढ़पुष्प	ओढ़पुष्प
१२	१	२१	अड	अड
१२	१	२५	(अढ़ाई) अर्द्ध+दि	अढ़ाई (= अर्द्ध+दि)
१३	२	६	अघ	[अघ
१३	२	१०	अघ	[अघ
१४	२	१४	(चरवाहा)	(चर+वाहा)
१५	२	२९	छुटहा	छुटहा<
१६	१	२७	अन्वी [अ+नई	अन्वी । [अ+नई<
१६	१	२८	बीज,	बीज<
१६	२	९	[अववाव]	[अववाव
१७	१	१२	(वँ)	(वँ)
१७	२		अड़तीसवीं पंक्ति उनचालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी ।	
१९	१	३५	ऊर उपठा	ऊर उठा
१९	२	१४	[अ+गला]	[अ+लगा]
२०	२	१४	दानवाली	दानवाली
२२	२	१२	अंदाज	अंदाज
२२	२	१५	वृत्त	वृत्त

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२	२५	[मिला०	;मिला०
२३	१	३६	(वि०,	(विह०,
२३	२	२८	गाँडासी	गाँडासी
२३	२	३६	अर्धदि	अर्धदि
२४	२	१	(स०)	(सं०)
२५	१	२८	लोको	लोको०
२६	१	२२	है । (पर० १)	है (पट०—१) ।
२६	१	३४	इकट	[इकट
२६	१	३५	(मो० वि० डि०) ।	(मो० वि० डि०)]
२६	१	३९	सरकंडा]	सरकंडा
२६	२	१७	(अ०) [(अ०)]
२७	१	७	(म०)	(मगा०),
२७	१	३७	(पा०)	(पा०)
२७	२	५	(पा०)	(पा०)
२८	१	१२	मिला०	मिला०
२८	१	१३	√कम	√कम्
३०	१	११] उच	[उच
३०	२	३२	गबैन	बैगन
३३	१	३	(स०)	(सं०)
३३	२	२०	का—	का
३४	१	१४	हुआ (सं०);	हुआ । (सं०)
३४	१	३१	जानेवाली की	जानेवाली
३४	१	३२	धारावाहिक	की धारावाहिक
३५	१	१२	(?)],	(?)]
३५	२	१	मि०	मिज्ञा०
३७	१	१५	[केतारी	केतारी
४२	२	२१	(शा०—१)	(शाहा०—१)
४२	२	३४	आँकड़ ।	आँकड़
४३	१	९	(सा०, शाहा०)	(सा०, शाहा०),
४३	२	१७	() सरकंडा,	(३) सरकंडा
४३	२	२३	धूँवा	धूँवा
४४	२	३८	कैता	[कैता
४४	२	३९	(संस्क०) ।	(संस्क०)]

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५	२	१२	तम्बाक	तम्बाकू
४५	२	३८	पट०-१-४	पट०-१, पट०-४,
४७	१	२८	गहरी	गहरा
४७	२	७	पर्या	पर्या०
४९	१	२४	करना)	करना
४९	१	२५	हुआ	हुआ)
४९	१	१०	संभ०	संभ०
५२	२	९	✓कृती कृती	✓कृती
५३	१	१	कदवा	[कदवा
५३	२	८	संभ०	संभ०
५४	२	छठी पंक्ति के बाद जोड़िए		कनखजूरा (सं०) दे०-कनगोजर ।
५४	२	२२	के	का
५४	२	३३	कनबोहा (चंपा०)	कनवाहा (चंपा) ।
५५	१	१०	उ० वि०)	(उ० वि०)
५५	१	१५	दे—	दे०
५७	शीर्ष	टिप्पणी—	कपास—कबूलियत	कपास फूटल—कबूलियत
५७	२	२८	(गं उ०)	(गं उ०) ।
५८	१	६	डाली) । [डाली)—
५८	१	२५	कास्टेबुल्लो	कास्टेबुल्लो
५८	२	३	ममरिशाल	कमारिशाल
५८	१	१२	कमारिक	कमारिक
५८	२	३१	सार०,	सा०,
५८	२	३३	(प्रा०) गडा (हिं)	(प्रा०), गडा (हिं)
५८	२	४०	माथी	माथी
५९	१	८	कर्मन्	< कर्मन्
५९	१	१३	अजिता	अजित ।
५९	१	१८	अगवाङ	अगवङ
६०	२	२०	(विहा०)	(विहा०)
६०	२	२५	काला	काला ।
६१	२	१५	(मिगोना संभ०	मिगाना संभ०
६१	२	४०	(१)-(सं०)	(सं०)-(१)
६२	१	४०	किनारा]	किनारा
६२	२	१४-१५	आज०) [कराह+ई] (२)	आज०) । (२) दे०—कराह ।
			दे०-कराह (अल्पा०	[कराह+ई (अल्पा०

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१	२०	विहा०,	विहा०,
६४	१	३०	(सं०)	(सं०)
६५	१	२०	(संक्र०)	(संक्र०)
६६	२	१४	रात ।	रातल
६६	२	१६	टा	कंटा
६६	२	२५	सी	रस्सी
६६	२	३२	कि०)	(कि०)
६७	१	२९	घस	घास
६७	२	३४	(सं०)	(सं०)
६८	१	३	अश	अंश
६८	१	५	अत	अंत
६८	१	१३	हाँवने	हाँकने
६८	१	२२	जिरा	जिष
६८	१	३४	कदो	कादो
६८	२	१८	तल	ताल
६९	१	६	पवाह	पकवाह
६९	१	२५	(शहा०)	(शाहा०)
६९	१	३०	घन	घान
७२	२	९	कुँआ	कुँआँ
७६	१	३१	(वँ)	(वँ०),
७७	१	२९	का	को
७७	२	३६	पं० खूह, (पं० कं०)	खूह (पं०, ल०),
८०	२	९	✓कविक, * ✓कविका	< कविक, * < कविका
८०	२	२४	कवाला	केवाला
८१	१	९	का	की
८१	१	१२	क+सौर	के+सौर
८२	१	८	(वँ)	(वँ),
८२	२	१	काहरी	कोहरी
८३	२	१६	(विहा०)	(विहा०),
८४	१	३३	(सं०)	(सं०)
८६	१	४	(सँ०)	(सँ०)
८६	२	३	(सं०)	(सं०)
८७	१	५	(मुँ०)	(मुँ०-१) ।

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१	८	व्यक्तिमत	व्यक्तिगत
८८	१	१५	(मु०-१,	(मु०-१,
८९	१	२८	कौर जाएल	कौरा जाएल
९२	२	३६	मेदि०	मेदि०
९३	२	२३	खत्रा	खत्ता
९३	२	२४	खाद्	खाद
९४	१	३३	प्रा०),	पा०),
९५	२	२१	माड	माडू
९६	२	३२	बाँस	बाँस
९७	१	१९	वैसन	वैसन
९७	१	२०	तम्बाकू	तम्बाकू]
९७	२	३०	का बन	का
१००	शीर्ष टिप्पणी—	खाँड़ी	खाँड़ी	
१०१	१	२०	(प्रा०)	(पा०)
१०१	२	१५	विहा०	विहा०
१०२	२	१८	जमीन । चमड़ा	जमीन ।
१०२	२	१६	ॐ खल्ल	ॐ खल्ल
१०३	शीर्ष टिप्पणी—	खिचड़ी खिल्लत	खादिन-खिल्लत	
१०३	"	२१	< सीद	ॐ सीद
१०३	२	६	एफ	एफ
१०३	२	१६	कटल<	कटल
१०४	१	३५	खील	[खील
१०६	१	२५	आट	आटे
१०७	१	१६	ठीका]	ठीका
१०७	२	२५	मिट्टी	मिट्टी
१०७	२	१६	,नः	पुनः
१०७	२	१६	(अकुर)	(अंकुर)
१०८	१	१८	खेखला	खेखला
१०६	२	२१	(व०)	(व०)
१११	१	२५	१)	(१)
१११	१	२८	(मु०-१)	(मु०-१) ।
११२	१	६	मछली ।	मछली]
११२	२	७	लेने	लेने

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	२	२८	त्रि०	क्रि०
११२	२	२६	करवाना	करवाना ।
११३	१	१७	गँडा	गंडा
११३	१	२०	गँडादार	गंडादार
११४	१	४	काब ना	का बना
११४	१	२३	(शाहा०-१)	(शाहा०) ।
११५	१	३१	डि०बी,	डि०भी ।
११५	२	१९	बीचो	बीचो
११६	१	२	(मो० वि० डि०)	(मो० वि० डि०)]
११७	१	११	[(१)	(१)
११७	२	२	गोआ	पर्या०—गोआ
११७	२	४	पर्या०—गदही	गदही
११७	२	३५	गु०)	गु०)]
११८	१	६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	१	३६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	२	८	पत्र मिला०	मिला०—
११८	२	१०	या	।
११८	२	१६	चंपा० । देव	(चंपा०) । दे०
११८	२	२०	लए	एल
११९	१	२४	बीचो-बीच	बीचो-बीच
११९	१	३०	घास-फूस । गरदेल,	घास । गरदेल
११९	१	३२	गरदेल	गर निकालना ।
१२०	१	६	पू० मै०)	पू० मै०),
१२०	१	२२	(देशी)	(देशी)
१२०	१	२६	बीचो-बीच	बीचो-बीच
१२०	१	२८	गर	[गर
१२०	१	३१	(गर	[गर
१२०	१	३२	(आज०)	(आज०)]
१२०	२	२१	(नेपा०)	(नेपा०)]
१२०	२	२७	✓गल +	✓गल ।
१२०	२	२८	पिच् गालयति	गालयति
१२०	२	२८	गाले	गालेई,
१२१	१	२१	जमींदारी	जमींदारी

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	२	३८	(दँ०),	(वँ०),
१२४	१	२	(साख्य)	(संस्क०)
१२६	२	२५	(२) — (वि०)	(२) — दे० — गुमल (वि०)
१२६	२	२५	हुई (गुमल)	हुई ।
१२८	१	१५	√ईर	√ईर्
१२८	१	२६	√ईर	√ईर्
१२८	२	४	लगी हुई हुई	लगी हुई
१२८	२	१७	चूर्ण	चूर्ण]
१३१	२	११	(पं०)	(प०)
१३१	२	३५	√वृ]	√वृ
१३३	१	२५	गोग	गोट
१३३	१	३१	(सि०)	(सि०) =
१३३	१	३२	(गु०)	(गु०) =
१३३	१	३३	(मरा०)	(मरा०) =
१३३	२	१९	गोटो	गोटो
१३३	२	३१	(१)	(?)
१३४	२	३३	जसे	जैसे
१३५	२	१	(चंपा० (१) ।	(चंपा० — १) । [
१३५	२	१४	(हिं०, प०),	(हिं०, पं०),
१३७	१	१५	केवाल +	केवाल <
१३८	२	४	फँकना	फँकल
१३९	१	३१	लेल =	— लेल =
१३९	२	१६	गौरिया	गौरिया
१४०	१	२६	घुटना	घटना
१४०	२	१५	लडो	घडो
१४२	१	२४	का,	घा,
१४२	२	२४	किव	घिव
१४२	२	२४	< की	< घी
१४४	१	२	< कि	< घि
१४४	१	३	कीकुमार	घीकुमार
१४४	१	९	घरणो	घेरणो
१४४	१	६	किरति	घिरती
१४४	१	२७	पखट	परवट
१४४	१	३८	(वँ०)	(वँ०),

कृषि-कोश

सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-४